अहिंसा के अछूते पहलु

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा और शान्ति – इन दोनों को विभक्त नहीं किया जा सकता। अहिंसा शान्ति है और शान्ति अहिंसा है। दोनों में तादात्म्य संबंध है। प्रस्तुत ग्रंथ में अहिंसा के शान्त्यात्मक पक्ष का भी स्पर्श किया गया है। आज का आदमी विश्व शान्ति की बात बहुत सोचता है पर इस सचाई को विस्मृत कर देता है कि मानसिक शान्ति के बिना विश्व शांन्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि हम मानसिक अशान्ति की समस्या का समाधान खोज लें तो वैश्विक अशान्ति की समस्या स्वतः सुलझ जाए।

समस्या दो प्रकार की होती है – भौतिक और मानसिक। भौतिक समस्या का समाधान पदार्थ की संतुलित व्यवस्था के द्वारा ही हो सकता है। मानसिक समस्या का समाधान चेतना के स्तर पर ही संभव है।

भौतिक समस्या का समाधान अध्यात्म में खोजना और मानसिक समस्या का समाधान पदार्थ में खोजना मानवीय चिन्तन की सबसे बडी भूल है और इस भूल को हम दोहराते चले जा रहे हैं। इसीलिए समस्या का सही समाधान नहीं हो रहा है।

अणुव्रत मानसिक शान्ति का प्रयोग है। इसलिए वह अहिंसा का व्यावहारिक दर्शन है। प्रस्तुत ग्रंथ में उस व्यावहारिक दर्शन का एक अनुशीलन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा के अछूते पहलु

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादक
मुनि दुलहराज/मुनि धनंजय

आर्थिक सौजन्य : श्री मालचन्द छोरिया एवं श्रीमती मनसुखी देवी छोरिया
द्वारा पो० किशनगंज, जिला पूर्णिया (बिहार)

प्रथम संस्करण : जनवरी; १९८९

मूल्य : अठारह रुपये/प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर (राज०)
मुद्रक : जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं-३४१३०६ ।

AHIMSA KE ACHHOOTE PAHLU
Yuvacharya Mahaprajna
Rs. 18.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

मानवीय सभ्यता और संस्कृति का उच्चतम विकास बिन्दु है—अहिंसा। हिंसा जीवन यात्रा के साथ जुड़ी हुई है पर वह जीवन के विकास का अंग नहीं है। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है, इसलिए वह हर क्षेत्र में विकास की यात्रा करता है। सामाजिक स्तर पर भी अहिंसा एक विकास है। अध्यात्म के स्तर पर वह सर्वोच्च विकास है। समाज की आचार-संहिता अहिंसा के बिना पल्लवित नहीं हो सकती। अध्यात्म की आचार-संहिता उसके बिना बन ही नहीं सकती। अध्यात्म का पहला बिन्दु अहिंसा है और चरम बिन्दु भी अहिंसा है।

अहिंसा का मूल्यांकन हुआ, प्रवचन भी हुआ। उसका आचरण कम हुआ है। अंतरंग परिष्कार के बिना उसका आचरण सम्भव नहीं बनता। हिंसा के लिए शरीर, मन और वाणी—तीनों की अपनी-अपनी प्रक्रिया है। अहिंसा के लिए भी इन तीनों की प्रक्रिया होती है। बहुत लोग मन को ही हिंसा का हेतु मानते हैं। यह एकांगी मनन है। हिंसा के लिए शरीर के अवयव भी उतने ही उत्तरदायी हैं जितना मन। प्रस्तुत पुस्तक में हिंसा में योग देने वाले शारीरिक अवयवों, जैव रासायनिक प्रक्रियाओं और नाड़ीतंत्रीय गति-विधियों का भी विमर्श किया गया है। अहिंसा का चिंतन करते समय इन पहलुओं पर ध्यान देना इस वैज्ञानिक युग में अनिवार्य है।

अहिंसा और शांति—इन दोनों को विभक्त नहीं किया जा सकता। अहिंसा शान्ति है और शान्ति अहिंसा है। दोनों में तादात्म्य संबंध है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अहिंसा के शान्त्यात्मक पक्ष का भी स्पर्श किया गया है। आज का आदमी विश्वशांति की बात बहुत सोचता है पर इस सचाई को विस्मृत कर देता है कि मानसिक शांति के बिना विश्वशांति की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि हम मानसिक अशांति की समस्या का समाधान खोज लें तो वैश्विक अशांति की समस्या स्वतः सुलझ जाए।

समस्या दो प्रकार की होती है—भौतिक और मानसिक। भौतिक समस्या का समाधान पदार्थ की संतुलित व्यवस्था के द्वारा ही हो सकता है। मानसिक समस्या का समाधान चेतना के स्तर पर ही सम्भव है।

भौतिक समस्या का समाधान अध्यात्म में खोजना और मानसिक समस्या का समाधान पदार्थ में खोजना मानवीय चिंतन की सबसे बड़ी भूल है और इस भूल को हम दोहराते चले जा रहे हैं। इसीलिए समस्या का सही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान नहीं हो रहा है।

अणुव्रत मानसिक शांति का प्रयोग है। इसलिए वह अहिंसा का व्यावहारिक दर्शन है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उस व्यावहारिक दर्शन का एक अनुशीलन है।

आचार्यश्री तुलसी ने अहिंसा और शांति के क्षेत्र में एक नया अभियान शुरू किया है। उस अभियान का अवगाहन करने में प्रस्तुत पुस्तक एक सेतु बनेगी।

इसके सम्पादन में मुनि दुलहराज और मुनि धनंजय कुमार ने अपनी शक्ति और श्रम का नियोजन किया है, इसीलिए यह अध्ययन के लिए सुलभ बन पाई है।

१-१-८६
बीदासर

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

• **अहिंसा के अछूते पहलू**

१. हमारी जीवन-शैली और अहिंसा
२. हिंसा की जड़ १०
३. अहिंसा और ध्यान १६
४. अहिंसा और आहार ३०
५. अहिंसा और आसन ३८
६. अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण ४६
७. अहिंसा और अभय ५६

• **अहिंसा और शांति**

८. सामाजिक जीवन की समस्या और सह-अस्तित्व ६५
९. आर्थिक जीवन और सापेक्षता ७५
१०. वैचारिक जीवन और समन्वय ८५
११. सामुदायिक जीवन और सहिष्णुता ९३
१२. मानसिक स्वास्थ्य ९७
१३. भावात्मक स्वास्थ्य १०८
१४. सही निदान : सही चिकित्सा ११८

• **नैतिकता : नया सन्दर्भ**

१५. इच्छा और नैतिकता १२९
१६. नैतिकता और अचेतन मन १३५
१७. नैतिकता और मन के खेल १४४
१८. नैतिकता और संयम १५२
१९. नैतिकता और व्यवहार १५९
२०. सत्य और मानसिक शांति १६८
२१. ध्यान और अलौकिक चेतना १७७
२२. नये जीवन का निर्माण १८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा के अछूते पहलू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. हमारी जीवन-शैली और अहिंसा

अनुत्तरित प्रश्न

एक प्रश्न पैदा हुआ कि मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ ? उसके पुरखे आपस में मिलजुल कर रहना सीख गए थे। प्राइमेट कुल के नर-वानर आपस में मिलजुल कर रहते थे। उनसे पहले स्तनधारी प्राणी आपस में मिल-जुलकर रहना सीख चुके थे। जब आपस में सब मिलकर रहते थे तो फिर मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ ? यह एक प्रश्न है और है अनुत्तरित प्रश्न। इस पर काफी खोज हुई है, पर इसका समाधान हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जीता है और मिल-जुलकर रहता है। सामाजिक जीवन का अर्थ है संबंध का जीवन। अनेक संबंध स्थापित हुए हैं। संबंधों के अनेक आधार हैं। मनुष्य में काम है, इसलिए उसने परिवार बनाया है। उसने अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए परिवार का गठन किया है, संबंध स्थापित किया है। उसमें स्नेह है इसलिए अपने मित्रों का वर्ग तैयार किया है। उसमें अहं है, अतः विशिष्टता का चयन किया है। ये सारे संबंध उपयोगिता के आधार पर बने। आपस में मिलजुल कर रहते हैं, इतने मात्र से अहिंसा की कल्पना कर लेना शायद संगत बात नहीं है। इन सारे संबंधों से व्यावहारिक अहिंसा फलित हुई है। एक आदमी दूसरे आदमी को नहीं सताता। पड़ौसी पडौसी को नहीं सताता। परिवार का आदमी परिवार को नहीं सताता। क्या यह अहिंसा है ? अगर अहिंसा है तो थोड़ी स्वार्थ की पूर्ति न होने पर पता लगे कि क्या होता है ? कैसा रंग खिलता है ?

स्वार्थ से जुड़ी अहिंसा

पति और पत्नी का स्वार्थ जुड़ा हुआ है। पति पत्नी को नहीं सताता और पत्नी पति को नहीं सताती। किन्तु जहां स्वार्थ की टक्कर होती है वहां पति-पत्नी में भी झगड़ा हो जाता है। भाई भाई को नहीं सताता किंतु जहां स्वार्थ की टक्कर होती है वहां वे झगड़े पर उतारु हो जाते हैं। ऐसी अनेक घटनाएं मिलती हैं कि पति पत्नी को मार देता है और पत्नी पति को मार देती है।

यदि साथ में रहने को अहिंसा मान लें तो हिंसा की बात हो ही नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती। यह व्यावहारिक अहिंसा है। यानी अहिंसा का एक व्यावहारिक प्रयोग है, पारमार्थिक नहीं। व्यावहारिक अहिंसा के पीछे स्वार्थ जुड़ा हुआ होता है। उसमें स्वार्थ निहित होता है। स्वार्थ पर आधारित अहिंसा वास्तविक नहीं होती। एक दूसरे को नहीं सताना, एक दूसरे को चोट नहीं पहुंचाना और एक दूसरे को नहीं नकारना—यह स्वार्थ पर आधारित होता है। यह वास्तविक अहिंसा नहीं होती, किंतु व्यावहारिक कही जा सकती है। यह हमारे संबंधों पर निर्भर करती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसका यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि वह अहिंसक समाज का समर्थक है। अहिंसा को उसने मात्र अपनी उपयोगिता के स्तर पर स्वीकार किया है। जब काम प्रबल होता है, अहं प्रबल होता है, हिंसा उसके लिए वर्जनीय नहीं रहती।

व्यावहारिक अहिंसा

भगवान ऋषभ के दो पुत्र भरत और बाहुबली का अहं टकराया और महायुद्ध शुरू हो गया। भरत ने दूत भेजा कि बाहुबली उसकी आज्ञा स्वीकार करे। दूत गया और भरत का निवेदन सामने रखा। बाहुबली का अहं जाग उठा। उसने कहा—मेरी भुजा में प्रबल पराक्रम है। मैं किसी की आज्ञा को शिरोधार्य नहीं करूंगा। उसने दूत की बात ठुकरा दी और युद्ध शुरू हो गया। लंबा युद्ध भाई-भाई में चला। यह क्यों हुआ? अहिंसा का संबंध नहीं था। भाई का संबंध अहिंसा का संबंध नहीं होता। वह स्वार्थ, उपयोगिता और काम-प्रेरित संबंध होता है। उसके पीछे ममत्व की प्रेरणा थी। उसके पीछे प्रेरणा थी उपयोगिता की। जैसे ही ममत्व और उपयोगिता में टकराहट आई, अहिंसा हिंसा में बदल गई। व्यावहारिक अहिंसा उपयोगिता या स्वार्थ-प्रेरित अहिंसा है। इस स्थिति में यह प्रश्न पैदा होता है कि मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ, मुझे लगता है—यह प्रश्न ही मूलतः सही नहीं है। यह एक भ्रान्त धारणा से उपजा हुआ प्रश्न है। यदि हमारी धारणा सही हो तो यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता।

आज के सारे समाज की जीवन-शैली व्यावहारिक अहिंसा से प्रभावित जीवन-शैली है। इसीलिए जब कभी हिंसा भड़क उठती है एक समाज में, एक जाति में, एक संप्रदाय में और एक परिवार में तब जहां-तहां हिंसा की चिनगारियां उछलती नजर आती हैं। हमारे जीवन की शैली जब तक व्यावहारिक अहिंसा से प्रभावित रहेगी तब तक ऐसा होता रहेगा। अहिंसा पर अनुसंधान करने वाले लोगों ने इस प्रश्न को उपस्थित किया है। मुझे लगता है, उन्होंने परमार्थ की अहिंसा को समझा नहीं है। केवल व्यावहारिक अहिंसा के आधार पर यह प्रश्न पैदा किया और यह मान लिया कि समाज का विकास अहिंसा के आधार पर हुआ है। अगर अहिंसा नहीं होती तो मिलजुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर नहीं रहते। यह बात ठीक है कि मिलजुल कर रहना भी एक विशेष प्रयोग है। ऐसे भी प्राणी हैं जो मिलजुल कर रहना नहीं जानते, प्रयोग करना नहीं जानते। हिंस्र पशु कभी अपना समाज नहीं बनाते तो दूसरा वर्ग ऐसा है, जो मिलजुल कर रहना जानता है और अपना समाज बना लेता है, एक दूसरे का सहयोग करता है। यह अहिंसा की भूमिका नहीं है।

हिंसा का भाव आकस्मिक नहीं

मनुष्य में हिंसा का जन्म हुआ है। वह आकस्मिक नहीं है। उसके पीछे अनेक कारण हैं। जब तक पारमार्थिक अहिंसा का विकास समाज में नहीं होगा, हमारी जीवन-शैली पारमार्थिक अहिंसा, वास्तविक अहिंसा से प्रभावित नहीं होगी तब तक समाज में चल रही हिंसा को कम नहीं किया जा सकेगा। हमें इस सत्य को समझना है कि पारमार्थिक अहिंसा क्या है? वास्तविक अहिंसा क्या है जिससे हम जीवन की शैली को प्रभावित करना चाहते हैं और वर्तमान जीवन की शैली को बदलना चाहते हैं? पारमार्थिक अहिंसा का आधार है— आत्मा। सब आत्माओं की समानता। जैसी मेरी आत्मा वैसी ही हर प्राणी की आत्मा। न केवल मनुष्य की आत्मा, पर हर प्राणी की आत्मा वैसी ही है जैसी की मेरी है। यह आत्मा की समानता का सिद्धांत ही पारमार्थिक अहिंसा का आधार बन सकता है। जैसी सुख-दुःख की अनुभूति मेरी है वैसी ही सब प्राणियों की है। इसलिए मुझे किसी भी प्राणी को दुःख नहीं देना चाहिए, सताना नहीं चाहिए, किसी का अधिकार नहीं छीनना चाहिए और किसी को मारना नहीं चाहिए। यह चेतना जब तक नहीं जाग जाती, तब तक पारमार्थिक अहिंसा का विकास नहीं होता। जब तक उस अहिंसा का विकास नहीं होता तब तक समाज में जो छीना-झपटी, लूट-खसौट, मार-धाड़ चल रही है, एक दूसरे पर प्रहार और कष्ट देने का व्यवहार चल रहा है, उसे बंद तो किया ही नहीं जा सकता, कम भी नहीं किया जा सकता।

मूल्यांकन का दृष्टिकोण

तैमूरलंग क्रूर शासक था। वह अत्याचारी था। उसे विश्वास था कि मैं अपनी क्रूरता के द्वारा, कठोर दण्ड के द्वारा प्रजा को बदल दूंगा। उसने इस सचाई को नहीं समझा कि आदमी कठोरता से नहीं बदलता। जब तक उसका हृदय नहीं बदल जाता, जब तक मस्तिष्कीय परिवर्तन नहीं होता, तब तक वह बदलता नहीं है। उसका हिंसा में विश्वास था, क्रूरता में विश्वास था, दंड में विश्वास था और उसने वैसे ही प्रयोग किए। बहुत लोगों को सताया। मारना मामूली बात थी उसके लिए। एक बार उसके सामने दो गुलामों को पेश किया गया। मौत की सजा सुना दी। तीसरा जो बंदी बना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर लाया गया, वह था कवि अहमद। तैमूरलंग ने पूछा—तुम तो कवि हो, मूल्यांकन करना जानते हो, बताओ, जिन दो गुलामों को फांसी दी है उनका मूल्य कितना ? कवि अहमद बोला—पांच-पांच सौ अशर्फियां। तैमूरलंग मूड में था, आगे पूछ बैठा, बताओ, मेरा मूल्य कितना ? अब इस बात का ऐसे क्रूर शासक के सामने उत्तर देना कठिन था। पर वह भी कवि था, कवि-हृदय था, सत्य को खोजने का प्रयत्न करने वाला था। उसने कहा—आपका मूल्य है केवल पचीस अशर्फियां। शासक यह सुनकर क्रोध से जल उठा। गुलाम का मूल्य तो पांच सौ अशर्फियां और मेरा मूल्य मात्र पचीस अशर्फियां ! जल-भुन गया, पर करे क्या ? कवि से कहा, इतने बड़े कवि बने हो पर इतना भी नहीं जानते कि पचीस अशर्फियों का मूल्य तो मेरी पोशाक का होगा। कवि ने कहा, मैंने बिलकुल ठीक कहा है। आपकी पोशाक का मूल्य ही मैंने बताया है। तैमूर ने पूछा—मेरा मूल्य क्या कुछ भी नहीं है ? कवि ने कहा, बिल-कुल नहीं। जो आदमी क्रूर है, जिसमें दया नहीं और जो किसी को अपने समान समझता नहीं, जिसमें कोई सहानुभूति की भावना नहीं, जिसमें कोई न्याय नहीं, उस आदमी का दुनियां में कोई मूल्य नहीं होता। आप निश्चित मानें मैंने आपका मूल्य जीरो आंका है, आपकी पोशाक का मूल्य ही पचीस अशर्फियां आंका है। आपका कोई मूल्य नहीं है।

पारमार्थिक अहिंसा

हमारा मूल्यांकन का एक दृष्टिकोण है। जो व्यक्ति परमार्थ की भूमिका पर मूल्य आंकता है वह बाहरी बात का मूल्य बहुत कम आंकता है। उसकी दृष्टि में मूल्य होता है अन्तर् की वृत्तियों का। वह देखता है कि व्यक्ति की आन्तरिक वृत्तियां कैसी हैं ? उसकी भूमिका कैसी है ? उसने किस भूमिका पर काम शुरू किया है ? अहिंसा के बारे में हम बहुत कम सोचते हैं, बात बहुत करते हैं। इसलिए करते हैं कि अहिंसा के बिना समाज सुख और शांति से जी नहीं सकता। समाज को जरूरत है अहिंसा की, इसलिए कि वह सुख से जी सके। समाज को जरूरत है अहिंसा की, इसलिए कि वह शांति के साथ जी सके, स्वस्थ रह सके। व्यावहारिक अहिंसा के आधार पर हमने इस जरूरत का अनुभव किया किन्तु हमारी एक भूल रह गई। हमने पारमार्थिक अहिंसा की ओर बहुत कम ध्यान दिया। आत्मा की समानानुभूति और समानता के बिन्दु का कम से कम हमने स्पर्श किया है।

दूसरे पक्ष को भी देखें

प्रेक्षा-ध्यान का एक सूत्र है—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का। साधक को कहा गया—"संपिक्खए अप्पगमप्पएणं"—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो। इसका अर्थ क्या है ? यह परमार्थ की ओर संकेत करता है। केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ पर ही आधारित जीवन-शैली की ओर मत देखो, केवल उपयोगिता के आधार पर जीवन-शैली की ओर ही मत देखो, जीवन का एक दूसरा पहलू है। उसे भी देखना सीखो। हमने दूसरे पहलू को देखना कभी सीखा नहीं। एक आंख ही हमारी काम करती है। हम एक पहलू को ही जानते हैं, देखते हैं, पहचानते हैं। जीवन का दूसरा पक्ष भी है जो बराबर का पक्ष है, पर हमारी आंख सदा मूंदी की मूंदी रहती है। हमने सही अर्थ नहीं समझा अहिंसा का, हमने ध्यान ही नहीं दिया इस पर।

एक छोटी-सी कहानी है। दामाद ससुराल में गया। गांव का व्यक्ति था और ससुराल शहर में था। गांव में तो रोटियां बड़ी-बड़ी बनाते हैं और शहर में रोटी-फुलके छोटे बनाते हैं। वह जब खाने को बैठा तो पूरी की पूरी रोटी का एक-एक ग्रास लेने लगा। सब हंसने लगे। उसकी पत्नी भी बैठी थी। उसने सोचा—बड़ा भद्दा लगेगा कि कितना अनजान है, गंवार है, कुछ जानता ही नहीं है। पूरी की पूरी रोटी का एक ही ग्रास लेता है, एक ही कौर लेता है। उसने सोचा कि क्या करें? पुराना जमाना था। इतने लोगों के बीच में कहना भी अच्छा नहीं लगता। उसने संकेत से और इशारे से समझाना शुरू किया। दो अंगुली से संकेत दिया कि दो-दो टुकड़े करके खाओ, पूरी रोटी एक साथ मत खाओ। उसने संकेत को ठीक समझा नहीं। सोचा, शायद यहां की परंपरा है कि एक-एक रोटी खाना ठीक नहीं है। उसने दो-दो खाना शुरू कर दिया। एक के बजाय दो रोटियां एक साथ चलने लगीं। लोग हंसने लगे। पत्नी ने लज्जा से मुंह ढक लिया।

अहिंसा का संकेत

हमने भी अहिंसा के संकेत को समझा नहीं। अहिंसा का संकेत है—दोनों पक्षों को देखो। एक ही पक्ष को मत देखो, दोनों को देखो। व्यवहार को देखते हो तो परमार्थ को भी देखो। दूसरे को देखते हो तो अपने आपको भी देखो। इस संकेत को हम नहीं समझ पाए। जो एक पक्ष था व्यवहार को देखना, दूसरे को देखना, इससे हम व्यवहार में अधिक चले गए और दूसरे को अधिक देखने लग गए। हम स्वयं अपना विश्लेषण करें। हम पूरे दिन दूसरे को देखते हैं कि दूसरा क्या करता है, दूसरा हमारे लिए क्या कर रहा है। कोई भी गलती होती है तो आदमी अपने आपको बचा लेता है, गलती दूसरे पर आरोपित करता है। उसने ऐसा कर दिया है। रसोई में घी का बर्तन पड़ा है। बहू चली, ठोकर लगी और घी ढुल गया। सास बोली, अंधी है, देखकर नहीं चलती। घी को नीचे गिरा दिया? यह दूसरे पर दोषारोपण हो गया। दो-चार दिनों के बाद वहीं बर्तन पड़ा था। सास जा रही थी, ठोकर लगी और घी नीचे गिर गया। तत्काल सास बोली, कितने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेवकूफ लोग हैं, रास्ते का ध्यान ही नहीं रखते, बर्तन को बीच में रख देते हैं। यह दोषारोपण भी हुआ दूसरे पर। अपने आपको आदमी बचा लेता है। इस बचाने वाली वृत्ति ने सचमुच अहिंसा की कब्र खोद दी। जाने-अनजाने इस व्यावहारिक अहिंसा की धारणा ने पारमार्थिक अहिंसा की अन्त्येष्टि कर दी। हमने उसको भुला दिया।

आज हम सारे समाज का विश्लेषण करें, प्रत्येक व्यक्ति का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि पारमार्थिक अहिंसा के लिए चिन्तन का कोई अवकाश नहीं है। दूसरे पहलू के लिए, दूसरे पक्ष के लिए हमने सारी खिड़कियां और सारे दरवाजे बंद कर दिए हैं। केवल व्यवहार की बात चल रही है। और हमारा प्रश्न भी है कि मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ? व्यवहार की भूमिका पर चलते-चलते अगर हिंसा का जन्म नहीं होगा तो और कब होगा? कैसे वाली बात हमारे सामने क्यों आती है? हमें इन दो शब्दों—व्यवहार और परमार्थ पर विशेष ध्यान देना है। यदि हमारा ध्यान इन पर केन्द्रित होगा तो मनोवैज्ञानिकों, प्राणी-वैज्ञानिकों और आनुवंशिकी वैज्ञानिकों द्वारा उठाया गया यह प्रश्न समाधान पा सकेगा। हिंसा के बीज कोई बाहर नहीं हैं। हिंसा का जन्म आज नहीं हुआ है। हिंसा का जन्म पहले से ही हो चुका है। इस व्यवहार की अहिंसा ने हिंसा के प्रश्न पर आवरण डाल दिया है। जब भाई-भाई बड़े स्नेह के साथ रहते हैं, पति-पत्नी बड़े स्नेह के साथ रहते हैं, एक बड़े नगर में हजारों-हजारों, लाखों-लाखों लोग बड़े स्नेह और प्यार के साथ रहते हैं, तो हम एक भ्रान्ति में चले जाते हैं कि कितनी अहिंसा है! कोई हिंसा ही नहीं है। यह भ्रान्ति जब टूटती है तब प्रश्न पैदा होता है कि हिंसा का जन्म कैसे हुआ?

हम भ्रान्ति में जी रहे हैं। यह अहिंसा नहीं है। न भाई-भाई में अहिंसा है और न पिता-पुत्र में अहिंसा है, न पड़ोसी-पड़ोसी में अहिंसा है और न बृहत्तर लगने वाले समाज में अहिंसा है। मात्र एक उपयोगिता का धागा है। वह धागा है, तब तक ठीक चलता है। जब धागा टूटता है तो हिंसा भड़क उठती है। राजनीति में मित्रता का अर्थ है—स्वार्थों का सामंजस्य। जब तक स्वार्थ नहीं टकराते, तब तक मित्रता। स्वार्थ टकराया, फिर युद्ध तैयार। मित्रता होती नहीं है। वास्तविक मित्रता नहीं होती राजनीति में और समाज में। इसलिए अहिंसा के प्रश्न पर बहुत गंभीरता से विचार करना आवश्यक है।

अहिंसा का मूल आधार

मैं मानता हूं, ध्यान का अभ्यास इस परमार्थ की दिशा में एक प्रस्थान है। ध्यान का अर्थ है अपने आपको देखना। अपने आपको देखने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ है अहिंसा के मूल आधार को देखना, मूल आधार को खोजना। जब तक हम अपने आपको नहीं देखेंगे तब तक अहिंसा के मूल आधार को नहीं खोज पाएंगे। हमारी अहिंसा की खोज अधूरी रहेगी और वह कभी पूरी नहीं होगी।

हमें सीखना है अपने आपको देखना। आज एक कठिनाई है कि ध्यान को हमने ठीक अर्थ में शायद समझा नहीं है। अगर ठीक अर्थ में समझते तो पढ़ना जितना अनिवार्य मानते हैं, ध्यान को उससे ज्यादा अनिवार्य मानते।

आज एक पिता के सामने लड़के को पढ़ाने की अनिवार्यता है, अपनी लड़की को पढ़ाने की अनिवार्यता है। वे समझते हैं कि लड़का नहीं पढ़ेगा तो पैसा नहीं कमा पाएगा। जीविका ठीक नहीं चलेगी। लड़की नहीं पढ़ती है तो अच्छा वर या अच्छा घर नहीं मिलेगा। पढ़ाई की अनिवार्यता है। ध्यान की कोई अनिवार्यता नहीं है। व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला आदमी हर बात का मूल्यांकन व्यवहार के स्तर पर करता है। परमार्थ की उसे कोई चिन्ता नहीं है। परमार्थ उसके लिए अनिवार्य नहीं बनता। कितना अच्छा होता कि हमारी दोनों आंखें बराबर खुली होतीं। हमारे मस्तिष्क के दोनों पटल बराबर सक्रिय होते। हमारे दोनों हाथ बराबर काम करते।

अपना पता जानें

कहा जाता है—एक बार धर्मराज के दरबार में तीन आदमी लाए गए। एक व्यापारी था, एक साहूकार था और एक चोर था। तीनों पहुंचे। धर्मराज ने उन तीनों का लेखा-जोखा किया और कहा—हो सकता है कि मैं तुम तीनों को फिर से मनुष्य लोक में भेज दूं। पर जाने से पहले तुम अपनी अन्तिम इच्छा बता दो—तुम क्या चाहते हो? व्यापारी बोला, भगवन्! मैं और कुछ नहीं चाहता, बस, यही चाहता हूं कि मेरे गोदाम माल से भरे रहें। सब चीजों के भाव बढ़े-चढ़े रहें, बस और कुछ नहीं। साहूकार से पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उसने कहा—मैं और कुछ नहीं चाहता, बस, मेरी तिजोरियां रुपयों से भरी रहे। चोर से पूछा—तुम क्या चाहते हो? उसने कहा—मैं कुछ नहीं चाहता, ये दोनों बड़े लोभी और स्वार्थी हैं। मैं तो बस इतना चाहता हूं कि इन दोनों का पता आप मुझे बता दें।

चोर पता चाहता है और कुछ नहीं चाहता। पता मिल जाए तो फिर और कुछ भी आवश्यक नहीं है। हमें भी अपना पता जान लेना है।

मूल को पकड़ें

पारमार्थिक अहिंसा की खोज वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर नहीं हो सकती, इतिहास के आधार पर भी नहीं हो सकती, आनुवंशिकी विद्या के आधार पर भी शायद नहीं हो सकती। वह हो सकती है अपनी अन्तरात्मा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसंधान से। मैं क्या हूं ? मेरे भीतर क्या है ? किन वृत्तियों के स्तर पर मैं जी रहा हूं ? कौन-कौन-सी वृत्तियां हिंसा को उभार रही हैं ? क्या उन वृत्तियों का शमन किया जा सकता है ? जब तक यह आध्यात्मिक विश्लेषण नहीं होगा, अहिंसा की खोज संभव नहीं बन पाएगी, क्योंकि हिंसा और अहिंसा का प्रश्न हमारे अन्तःकरण से जुड़ा हुआ है, बाहर से भी जुड़ा हुआ है। बाहर से नहीं जुड़ा हुआ है, ऐसा मुझे नहीं लगता किंतु मूल में भीतर से जुड़ा हुआ है। मूल नीचे होता है और शाखाएं ऊपर होती हैं। किंतु उलट गया। शाखाएं नीचे चली गईं और मूल ऊपर आ गया। आज शाखाएं हमें मूल लग रही हैं। शाखाएं कभी मूल नहीं हो सकतीं। मूल हो सकती है जड़। जो जड़ की बात है वह है मनुष्य की वृत्तियां। हमने केवल परिस्थितियों को मान लिया। आज का सारा चिंतन परिस्थिति के आधार पर चल रहा है। किसी भी समाज-विज्ञानी से पूछो, किसी भी अर्थशास्त्री से पूछो या किसी मनोविज्ञानी से पूछो कि हिंसा का मूल क्या है ? हिंसा की जड़ क्या है ? यही उत्तर मिलेगा कि वातावरण, परिस्थिति का चक्र। यही मूल है, जड़ है। जैसी परिस्थिति, जैसा वातावरण वैसा ही आदमी बनता है और वैसा ही आचरण करता है। हमारे व्यवहार का निर्धारण जो परिस्थिति के आधार पर होने लगा है, इसका अर्थ है— जो मूल था वह तो ऊपर आ गया और जो शाखाएं थीं वे नीचे चली गईं। मूल शाखा बन गया और शाखा मूल बन गया। यह एक भ्रम पैदा हुआ है। इस भ्रम को तोड़ना है।

आवश्यक है संतुलन

जब तक यह भ्रम नहीं टूटेगा, आंख साफ नहीं होगी, धुन्धलाहट कम नहीं होगी, तब तक वास्तविक सत्य को नहीं देख पाएंगे।

ध्यान का प्रयोग उस भ्रम को तोड़ने का प्रयास है। जैसे-जैसे व्यक्ति अपने भीतर की गहराइयों में जाता है वैसे-वैसे कुछ नई सचाईयां सामने आती हैं। और वे सचाइयां, जिनकी शायद वैज्ञानिक व्याख्या न की जा सके। क्या आप सोचते हैं कि इन सब की वैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है ? ऐसा सोचेंगे तो बहुत बड़ा भ्रम होगा। कुछ सचाइयां हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या हो सकती है। बहुत सारी सचाइयां हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती, पर वे सत्य हैं। अनेक स्थितियां हैं, जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकती, किंतु घटना घटित होती है। क्या हम घटना को झूठा मान लें ? व्याख्या नहीं हो सकती इसलिए क्या घटना को अवास्तविक मान लें ? घटना सामने घटित हो रही है, उसे हम कैसे अस्वीकार करेंगे, चाहे हम व्याख्या दे सकें, न दे सकें ? अपने भीतर की बहुत सारी घटनाओं की व्याख्या शायद न कर सकें, किन्तु वे सचाइयां हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनमें कोई संदेह नहीं। और वे सचाइयां हमारे सामने प्रगट होती जाती हैं। हम अपने भीतर को देखने का सावधान प्रयोग करें, सचेष्ट प्रयोग करें, गहराई में जाकर अपने आपको देखें, जीवन में एक संतुलन बनाएं, दोनों पक्षों को बराबर बनाएं। व्यावहारिक पक्ष के बिना हमारा काम नहीं चलता। उसे चलने दें, किंतु उसके साथ-साथ पारमार्थिक पक्ष को भी उजागर करें। जिस दिन व्यावहारिक अहिंसा और पारमार्थिक अहिंसा—इन दोनों का संतुलन बनेगा उस दिन 'मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ' इसका उत्तर दिया जा सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. हिंसा की जड़

मूल और पत्र—ये पेड़ के दो अंग हैं। इनके आधार पर हमारी मानसिक वृत्तियों को समझाने का प्रयत्न किया गया। जड़ वह होती है जहां से सारा विकास होता है। पत्ता वृक्ष का एक विकास है। वह स्थायी तत्त्व नहीं है। पत्ता आता है और चला जाता है। बसंत आता है, पत्ते आ जाते हैं। पतझड़ आता है, पत्ते चले जाते हैं किंतु जड़ स्थायी रहती है। जब तक जड़ है, तब तक पेड़ है। जड़ समाप्त तो पेड़ समाप्त, पत्ते समाप्त और सब कुछ समाप्त।

एक है जड़ की बात और एक है पत्तों की बात। पत्तों की बात बहुत छोटी बात होती है। उसका बहुत ज्यादा मूल्य नहीं होता। जड़ की बात का बहुत बड़ा मूल्य होता है। इसीलिए आदमी हर विषय में खोजता है कि इसकी जड़ कहां है? इसका मूल आधार क्या है? जब तक मूल का पता नहीं चलता, आदमी को संतोष नहीं होता। हिंसा के बारे में भी आज यह प्रश्न पूछा जा रहा है और इस पर काफी चिंतन चल रहा है कि हिंसा का मूल क्या है? हिंसा की जड़ क्या है? उस जड़ को हमें पकड़ना है। हमारे सामने भी प्रश्न है कि हिंसा की जड़ कहां है? इस पर अनेक क्षेत्रों के लोगों ने अनेक विचार प्रकट किए हैं।

विभिन्न मत : विभिन्न दृष्टिकोण

विज्ञान की एक शाखा है आनुवंशिकी विज्ञान। आनुवंशिकी वैज्ञानिक बतलाते हैं—हमारे सारे व्यक्तित्व का निर्माण जीन के द्वारा होता है। वे हमारे संस्कार-सूत्र हैं और उनके द्वारा सारा निर्धारण होता है। हिंसा की जड़ है जीन। जीन आनुवंशिक है। वह माता-पिता के द्वारा प्राप्त होने वाला है। इसलिए उसमें हमारा कोई वश नहीं है। अनुवंश से प्राप्त, विरासत में प्राप्त संस्कार है, इसलिए मनुष्य जाति को हिंसा को भोगना है और हिंसा के परिणामों को भोगना है। उसे छोड़ने का कोई उपाय नहीं है। यह मत है आनुवंशिकी वैज्ञानिकों का।

जीन वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं। वे हिंसा की जड़ कहीं दूसरी जगह खोजते हैं। मनोवैज्ञानिक भी इससे सहमत नहीं हैं। रसायन वैज्ञानिकों का और मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हिंसा की जड़ मौलिक मनोवृत्ति है। मनोविज्ञान में मौलिक मनोवृत्तियों के अनेक वर्गीकरण हैं। उनमें युद्ध को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाभाविक मनोवृत्ति माना गया है। हिंसा, संघर्ष और युद्ध मनुष्य की सहज वृत्ति है, मौलिक मनोवृत्ति है। उनके अनुसार हिंसा की जड़ है मौलिक मनोवृत्ति।

परिवेश वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं। वे मानते हैं कि हिंसा की जड़ है वातावरण, परिवेश। जिस प्रकार का वातावरण होता है, आदमी वैसा ही बनता है। हमारे वातावरण में हिंसा के तत्त्व विद्यमान् हैं। ऐसी परिस्थिति मिलती है कि एक बच्चा प्रारम्भ से ही अपराध में चला जाता है, हिंसा करने लग जाता है। सारे समाज का वातावरण और परिवेश ही ऐसा है, जहां हिंसा सीखने को मिलती है। हिंसा की मूल जड़ है परिवेश।

दार्शनिकों ने इन सबसे हटकर कहा—हिंसा की जड़ है कर्म। आदमी का जैसा कर्म-संस्कार होता है, वह वैसा ही बन जाता है।

विमर्श समस्या का

नाना प्रकार के मत हैं। जो जिस विषय का वैज्ञानिक है, जिस विषय का तार्किक है, दार्शनिक है, उस प्रकार का मत है। नाना मतों से भरा हुआ है यह हमारा संसार। कोई एक मार्ग नहीं है। अलग-अलग रास्ते हैं। इन सब मतों पर विचार करें तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि ये सारे एकांगी दृष्टि-कोण हैं। सर्वांगीण किसी को नहीं कहा जा सकता। असत्य भी नहीं कहा जा सकता। जीन भी एक कारण बनता है। परिवेश भी एक कारण बनता है। मौलिक मनोवृत्ति भी एक कारण बनती है। कर्म भी एक कारण बनता है। ये अनेक घटक हैं जो मिलकर घटना का निर्माण करते हैं। एक घटना के लिए कोई भी एक सर्वथा उत्तरदायी नहीं है। सबका योग मिलता है तो इस प्रकार की घटना घटित होती है।

हमें सर्वांगीण दृष्टि से विचार करना है। हिंसा की जड़ जीन में भी है, परिवेश में भी है, मौलिक मनोवृत्ति में भी है। ये सब यदि एक-एक हैं तो किसी में भी नहीं है और सब मिल जाते हैं तो सब में है। पौधे के उगने में बीज एक कारण है, किंतु कोरा बीज है और ऊर्वरा भूमि नहीं है और भूमि ऊर्वरा है बीज भी है, पर पानी नहीं है तो पौधा नहीं उगेगा। पानी भी है, पर न धूप है और न हवा है, तो पौधा नहीं उगेगा। सारी सामग्री चाहिए। एक से कोई काम नहीं बनता। घटकों का समवाय होता है। अनेक मिलते हैं तब एक कार्य निष्पन्न होता है। हिंसा एक घटना है और हिंसा एक कार्य है। वह तब कार्य बनता है जब अनेक घटक मिल जाते हैं।

उत्तरदायी कौन ?

हम और थोड़ा चिंतन करें। अगर हिंसा की जड़ जीन में मान लें तो फिर ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर शांति के प्रयत्नों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की कोई आवश्यकता नहीं है। साधना की कोई आवश्यकता नहीं है। माना जाता है कि जो जीनगत है, आनुवंशिक है, उसे बदला नहीं जाता। हिंसा हमारे जीन में है, उसे बदला नहीं जा सकता। फिर क्या जरूरत है ध्यान करने की? क्या जरूरत है तपस्या करने की? क्या जरूरत है शांति के प्रयत्नों की? कोई जरूरत नहीं है। अगर ऐसा मान लें तो फिर हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना है और यही सोचना है कि ऐसा होना है और हमें ऐसे भोगना है। हमारे पास इसका कोई उपचार नहीं है।

यदि हिंसा की जड़ मौलिक मनोवृत्ति है तो भी यही कठिनाई है। मनोवृत्ति को बदलना मनोविज्ञान के क्षेत्र में असंभव जैसा है। जैसे जीन पर हमारा कोई वश नहीं है, मौलिक मनोवृत्ति पर भी हमारा कोई वश नहीं है। अगर हम मौलिक मनोवृत्ति को जड़ मान लें तो कोई प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ अपने भाग्य को कोसते रहें और नियति की ओर झांकते रहें। अगर मात्र परिवेश ही हिंसा का कारण है तो बहुत बार ऐसा होता है कि परिवेश बदल देने पर भी आदमी की वृत्ति बदलती नहीं है। हिंसा की बात बदलती नहीं है। यदि हिंसा का कर्म से संबन्ध है तो वहां भी यह समस्या आ सकती है कि हम ऐसा क्यों करें? कर्म तो बदला नहीं जा सकता। यह माना जाता है कि जैसा भाग्य में लिखा है, आदमी को भोगना है। जैसा कर्म किया है आदमी को भोगना है, किए हुए कर्म को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। समस्या है और निराशावाद है। हम निराश होकर बैठ जाएं, कुछ भी करने की जरूरत नहीं हैं।

आशा की एक किरण

कर्मवाद का एक सिद्धांत है कि कर्म भुगतना पड़ता है, पर साथ ही साथ यह भी सिद्धांत है कि कर्म को बदला भी जा सकता है। यही आशा की एक किरण हमारे सामने आयी है। जरूरी नहीं है कि जो किया है उसे वैसा ही भुगतना पड़ेगा। उसे बदला जा सकता है, यह एक दार्शनिक सिद्धांत है। इसके संदर्भ में क्या हम लौटकर नहीं देख सकते? जीन को भी बदला जा सकता है। मौलिक मनोवृत्ति को भी बदला जा सकता है। परिवेश को भी बदला जा सकता है। यह परिवर्तन की बात हमारे सामने आती है। परिवर्तन का सूत्र हमारे हाथ लगता है तो एक नई आशा फिर जाग जाती है कि हम बदल सकते हैं और हिंसा को बदला जा सकता है।

परिवर्तन का सूत्र : अहिंसा का विकास

बदलने का सूत्र है—अहिंसा का विकास। हमारे भीतर हिंसा और अहिंसा—दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। कोरी हिंसा की जड़ ही हमारे भीतर विद्यमान नहीं है। अहिंसा की जड़ भी हमारे भीतर विद्यमान है दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे भीतर हैं हिंसा और अहिंसा । हमारी जो मस्तिष्कीय प्रणाली है, उसमें दो प्रणालियां हैं। एक प्रणाली है कि गुस्सा करो, क्रोध करो, क्योंकि स्थिति से निपटना है। दूसरी प्रणाली यह भी है कि अभी मत करो, थोड़ा रुको। हमें रोकती भी है। क्रोध आने की प्रणाली हमारे मस्तिष्क में है तो क्रोध पर नियन्त्रण पाने की प्रणाली भी हमारे मस्तिष्क में है। एक प्रणाली कहती है, लड़ो, झगड़ो, गुस्सा करो तो दूसरी कहती है कि अभी मत करो, जरा रुको, देखो, कुछ ठहरो। एक उकसाती है तो दूसरी रोकती है। दोनों प्रणालियां हमारे भीतर विद्यमान हैं। युद्ध और शांति, हिंसा और अहिंसा—दोनों हमारे भीतर विद्यमान हैं। केवल हिंसा की जड़ ही हमारे भीतर विद्यमान नहीं है, अहिंसा की जड़ भी हमारे भीतर है। स्वर्ग और नरक दोनों—हमारे भीतर हैं।

स्वर्ग : नरक

चीन का एक दार्शनिक था नानूसीजी। उनके पास एक सेनापति आया। बहुत नाम सुना था दार्शनिक का। प्रसिद्ध सन्त था। आकर बोला, मेरे प्रश्न का उत्तर दें? क्या प्रश्न है तुम्हारा? उसने कहा, स्वर्ग क्या है और नरक क्या है? सेनापति था, योद्धा था। योद्धा की बोली अलग प्रकार की होती है और भावना भी अलग प्रकार की होती है। बड़ी तेज भाषा में कहा, जल्दी मेरे प्रश्न का उत्तर दें। संत ने सोचा—बड़ा अजीब आदमी है। आया है जिज्ञासा को लेकर और बोल रहा है लड़ने के मूड में। बड़ा विचित्र आदमी है। संत भी बड़े विचित्र थे। नानूसीजी ने कहा, क्या तुम सेनापति हो। उसने कहा, तुम्हें दीख नहीं रहा है? संत ने कहा, दीख रहा है। तुम सेनापति हो, पर तुम्हारी सूरत तो है भिखारी जैसी। इतना सुनते ही उबल पड़ा सेनापति। वह बोला—दीखता नहीं, तलवार है मेरे हाथ में। संत बोले—अच्छा, तलवार भी रखते हो? पर इसके धार है या नहीं है? उसने तलवार म्यान से बाहर निकाली। सन्त बोले, धार तो है। क्या तुम मेरा सिर काट सकते हो? वह और अधिक गुस्से में उबल पड़ा। इतना उबल पड़ा कि आपा खो बैठा। संत बोले, सेनापति! तुम जानना चाहते थे कि स्वर्ग क्या है और नरक क्या है? यह है नरक। यह है तुम्हारे एक प्रश्न का उत्तर। इतना सुनते ही सेनापति शांत हो गया। सारा गुस्सा समाप्त हो गया। वह झुका और संत के पैरों में गिर पड़ा।

संत ने उसे उठाते हुए कहा—सेनापति! यह है स्वर्ग। यह है तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर। यह स्वर्ग और नरक कहीं बाहर नहीं है, हमारे भीतर है।

ध्यान : अहिंसा को जगाने का प्रयोग

हिंसा और अहिंसा—दोनों मनुष्य के भीतर हैं। हिंसा की जड़ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे भीतर विद्यमान है और अहिंसा की जड़ भी हमारे भीतर विद्यमान है। किसको पकड़ना है और किसे विकसित करना है, यह सोचना है। इस स्थिति में वातावरण पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। यह एक बिन्दु है जहां परिवेश का मूल्यांकन करना है, वातावरण का मूल्यांकन करना है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष—दोनों हमारे भीतर विद्यमान हैं। प्रकाश और अंधकार—दोनों हमारे भीतर विद्यमान हैं। दोनों का अस्तित्व है, पर किसको जगाना है और किसको सुलाना है। प्रश्न है जगाने और सुलाने का।

ध्यान का प्रयोग इसीलिए है कि हम अहिंसा को जगा सकें और हिंसा को सुला सकें। एक को जगाना और एक को सुलाना। ध्यान का अर्थ है जागरूकता, जगाना। हर आदमी जागरूक है। कौन आदमी जागरूक नहीं है? यदि पैसा कमाने का प्रश्न है तो आधी रात में भी आदमी जागरूक है। नींद में भी यदि कोई संवाद दे दे कि पांच लाख रुपयों का मुनाफा हो रहा है तो बिलकुल जागरूक है। नींद में भी सुन लेता है। अगर स्वप्न आए तो भी जागरूक है।

हिंसा का मूल सूत्र

हमें जिस जागरूकता का विकास करना है, वह है अपने प्रति जागरूक होना। पदार्थ के प्रति हम बहुत जागरूक हैं, पर अपने प्रति जागरूक नहीं हैं। ध्यान का प्रयोजन है अपने प्रति जागरूक होना। आदमी अपने प्रति सोया रहता है, दूसरे के प्रति जागता है। इसको थोड़ा बदल देना है। यदि पदार्थ के प्रति जागरूक हो तो थोड़े अपने प्रति भी जागरूक बनो। यह है जागरूकता का विकास। अपने प्रति जब जागरूकता का विकास होता है तो अहिंसा का विकास होता है। अपने प्रति जागने का अर्थ है अहिंसा और अपने प्रति सोने का अर्थ है हिंसा। इसे हम उलट कर कह दें कि पदार्थ के प्रति जागने का अर्थ है हिंसा और पदार्थ के प्रति सोने का अर्थ है अहिंसा। अहिंसा की कोई लम्बी-चौड़ी परिभाषा नहीं है। जब आदमी अपने प्रति जागता है तब ममत्व का धागा टूटता है, अहिंसा का विकास होता है। जब आदमी अपने प्रति सोने लगता है तब ममत्व का धागा फैलता है, हिंसा बढ़ जाती है। हिंसा का बहुत बड़ा सूत्र है—ममत्व।

वातावरण सुधारें

हमने चार प्रमुख वादों का विश्लेषण किया—जीनवाद, मौलिकवृत्ति-वाद, परिवेशवाद और कर्मवाद। इन चारों के समन्वय और समवाय के बाद जो निष्कर्ष हमारे सामने आया वह यह है कि हमें सबसे पहले ध्यान परिवेश पर ही देना है, क्योंकि वह सबसे पहले हमारे सामने आता है। जो सबसे पहले हमारे सामने आता है उस पर पहले ध्यान देना होता है। हम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवेश को कैसे अच्छा बनाएं, वातावरण को कैसे अच्छा बनाएं, परिस्थिति को कैसे अच्छा बनाएं, इस बात पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

एक बच्चा टी. वी. देखने बैठा, सिनेमा देखने बैठा, समाचार पत्र पढ़ने बैठा और वे सारी घटनाएं जो हिंसा को उत्तेजना देने वाली हैं, चोरी, लूटखसोट, मारकाट, अपराध आदि को वह देखता है तो क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि उससे अहिंसा का विकास होगा? कभी संभव नहीं लगता। वह बच्चा निश्चित ही हिंसोन्मुखी बन जाता है। उसके कच्चे दिमाग पर निश्चित ही इतना प्रभाव पड़ता है कि वह जाने-अनजाने हिंसा की ओर दौड़ने लग जाता है। आज एक प्रश्न है कि समाज में इतने अपराध क्यों है? शायद इस प्रश्न पर गंभीरता से चिंतन नहीं किया गया, इसका समाधान गंभीरता से नहीं खोजा गया कि अपराध क्यों बढ़ रहे हैं? हिंसा क्यों बढ़ रही है? आतंक क्यों बढ़ रहा है? अगर कारण खोजा जाए तो बहुत साफ है कि मनुष्य को जितनी हिंसा की घटनाएं, चर्चाएं और वार्ताएं सुनने को मिलती हैं उसकी तुलना में अहिंसा का एक अंश भी देखने-सुनने को नहीं मिलता।

सारा वातावरण हिंसा का है। प्रश्न उठता है कि आज प्रतिष्ठा किसको मिल रही है? समाचार पत्रों में मुख्यतया किसके समाचार छप रहे हैं सूर्खियों में? सारे समाचार पत्र हिंसा, बलात्कार, लूटखसोट के समाचारों से भरे पड़े हैं। व्यक्ति देखता है कि हजार प्रयत्न करने पर भी समाचार पत्र में कभी नाम नहीं आता है और चोरी-डकैती की, सारे समाचार पत्रों में उसी की तूती बजने लग जाती है। किसका मन नहीं ललचाता? यह तो बहुत अच्छा तरीका है प्रसिद्ध होने का। एक पूरा वातावरण जो मिल रहा है, परिवेश जो मिल रहा है, वह अपराध को बढ़ाने वाला है, घटाने वाला बिलकुल नहीं लगता। क्या आवश्यकता है कि बुरी बातों को और बुरी घटनाओं को संक्रामक बनाया जाए? हर बात का प्रसारण जरूरी है क्या? प्राचीन काल में तो एक नीति का सूत्र था—बुरी बात को फैलाना नहीं चाहिए। एक आदमी दूसरे की बुराई करता है तो दूसरा कहता है—भाई! इससे क्या लाभ होगा? इसे यहीं रहने दो, आगे मत कहो। आज तो ऐसा लगता है कि हमारे संवाददाताओं को, समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को कोई ऐसी घटना मिलती है तो उसे जल्दी प्रकाशित कर देना चाहते हैं। यदि कल पत्र निकलने वाला है तो उसके लिए सांध्य-संस्करण और निकाल देंगे। क्या इस परिस्थिति और वातावरण में हम कल्पना करें कि हिंसा नहीं बढ़ेगी और अपराध नहीं बढ़ेंगे? इसलिए हमें सबसे पहले ध्यान देना है अपने परिवेश पर, अपने वातावरण पर। हमने अपने चारों ओर किस प्रकार के वातावरण का निर्माण कर रखा है? वह जब तक नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदलेगा, हिंसा को उत्तेजना देने वाली जो घटनाएं और निमित्त हैं, उभरेंगे और हिंसा उभरेगी। मैं नहीं मानता कि परिवेश बदलने से सब कुछ बदल जाएगा। जड़ की बात पर भी हमें जाना होगा, मूल तक जाना होगा। बाधक तत्त्वों का भी विचार करना होगा कि अहिंसा में बाधक तत्त्व कौन से हैं? साधक और बाधक तत्त्वों का विमर्श करना होगा। एक तत्त्व है उसको सिद्ध करने वाला और एक है उसमें बाधा डालने वाला। आज हिंसा के साधक तत्त्व ज्यादा हैं। काम, क्रोध, लोभ, भय, संदेह—ये सब हिंसा के साधक तत्त्व हैं। हिंसा का एकमात्र बाधक तत्त्व है अध्यात्म, आत्मा का ज्ञान, आत्मानुभूति, समानानुभूति। उस पर हमारा ध्यान कम जाता है। साधक तत्त्व चारों ओर बिखरे पड़े हैं। अहिंसा के बाधक तत्त्व तो बहुत हैं। ये बाधा डालते हैं। अहिंसा का विकास होने में कठिनाई होती है।

अहिंसा के बाधक तत्त्व

एक घटना के द्वारा इस बात का विश्लेषण करें। एक संन्यासी ने प्रसन्न होकर एक व्यक्ति को पारसमणि दे दी। पारसमणि वह होती है जो लोहे को सोना बना देती है। संन्यासी ने कहा—छह महीने की अवधि है, जितना सोना बनाना चाहो, बना लेना। मैं ठीक छह माह के बाद आऊंगा और अपनी पारसमणि को ले जाऊंगा। एक अवसर, जिसे स्वर्ण अवसर कहा जाता है, वह सामने था। उस व्यक्ति ने सोचा, अभी तो बहुत समय है। महीने, दो महीने तो ध्यान ही नहीं दिया। फिर ध्यान दिया पर आलस्यवश छह माह निकाल दिए। संन्यासी आ गया, पूछा, कितना सोना बनाया? उसने कहा, कुछ भी नहीं बनाया। संन्यासी ने अपनी पारसमणि ले ली और कहा कि मैं अब अवकाश नहीं दूंगा। अब तुम्हारे पास कोई लोहा हो तो लाओ मैं सोना बना दूंगा। उसने खोजा, गरीब आदमी था, पास में लोहा था ही नहीं। एक सूई पड़ी थी, लाया, पारसमणि से उसे छुआया और वह सोने की हो गई।

सोना बनाने का आदमी के पास साधन था, पर बाधक कितने थे? पहला बाधक तत्त्व था आलस्य, जिसके कारण सोना नहीं बना सका। दूसरा बाधक तत्त्व था लोहा जो मिल नहीं रहा था और तीसरा बाधक तत्त्व था अज्ञान या मूर्च्छा। अज्ञान और मूर्च्छा ने उसे सही निर्णय नहीं लेने दिया। तीन बाधक तत्त्व थे।

जरूरी है समग्र बदलाव

अहिंसा के विकास में भी बाधक तत्त्व काम कर रहे हैं। हम जानते हैं कि अहिंसा एक पारसमणि है जिसके द्वारा लोहे को सोना बनाया जा सकता है। इसके द्वारा समाज में शांति की और अमन चैन की स्थापना की जा सकती है। जो सोने के द्वारा नहीं की जा सकती, उस शांति की स्थापना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा के द्वारा की जा सकती है। इस सचाई को हम जानते हैं। हमारे सामने पारसमणि है। पर बाधक तत्त्व इतना काम कर रहे हैं कि उस पारस-मणि को जानते हुए भी सोना नहीं बना रहे हैं। सारे बाधक तत्त्व वहां काम कर रहे हैं। उनका काम बराबर चल रहा है। कभी कोई प्रश्न सामने आ जाता है, तो कभी कोई प्रश्न सामने आ जाता है।

अहिंसा की बात करें, हिंसा न करें तो हिंसा के बिना व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अहिंसा के विकास में एक अवरोध आ गया। कभी प्रतिपक्ष का प्रश्न सामने आ जाता है कि सामने शत्रु है और अहिंसा की बात की तो क्या होगा ? बहाना सामने आ जाता है। हिन्दुस्तान के सामने पाकिस्तान एक बहाना बन जाता है कि हिन्दुस्तान एकजुट नहीं रहा तो पाकिस्तान आक्रमण कर देगा। पाकिस्तान के सामने हिन्दुस्तान एक बहाना बन जाता है कि पाकिस्तान एकजुट नहीं रहा तो हिन्दुस्तान आक्रमण कर देगा। ये सारे बहाने और सारे बाधक तत्त्व सामने आ जाते हैं। हमें फिर इस प्रश्न पर विचार करना है कि परिवेश को बदलना है और परिवेश के साथ-साथ इन तत्त्वों को भी बदलना है। रुकना नहीं है। मौलिक मनोवृत्ति को भी बदलना है। जीन को भी बदलना है और कर्म को भी बदलना है। यद्यपि आनुवंशिकी वैज्ञानिक बदलने की बात को नहीं मानते। वे कहते हैं—जीन को नहीं बदला जा सकता। मनोवैज्ञानिक भी मौलिक मनोवृत्ति को बदलने की बात को नहीं मानते। कभी मानते हैं तो बड़ी मुश्किल से मानते हैं। किंतु कर्मवाद में यह बात मानी गई कि कर्म को बदला जा सकता है। सब कर्मवादी इस बात को नहीं मानते कि कर्म को बदला जा सकता है। पर कुछ दार्शनिकों ने इस पर गंभीरता से विचार किया कि कर्म को बदला जा सकता है। न बदला जा सके तो फिर साधना और तपस्या सारे बेकार हो जाते हैं, कोई अर्थ नहीं होता। हमारे सामने एक सूत्र आ गया बदलने का, परिवर्तन का। हमें परिवर्तन करना है। जड़ को भी बदलना है और वातावरण को भी बदलना है, परिवेश को भी बदलना है। दोनों को बदलना है। पत्तों को भी बदलना है और मूल को भी बदलना है। हमें बदलना है। वैसा ही नहीं रहना है।

कुम्हार जा रहा था। साथ में बहुत गधे थे। एक कोई मनचला व्यक्ति सामने मिला। बहुत सारे मनचले होते हैं, बहुत सारे मजाकी लोग होते हैं जिन्हें मजाक करने में बड़ा आनंद आता है। उसने कहा, गधे के पिता को नमस्कार। कुम्हार भी बड़ा चालाक और होशियार था। बोला, हजार वर्ष जीओ मेरे बेटे।

अब गधा बने नहीं रहना है। बदलना है, परिवर्तन ला देना है।

संवेदना का सूत्र

बदलने की परिभाषा क्या है ? परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है ? हिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के संस्कार को कैसे बदला जा सकता है ? हिंसा की जड़ पर कैसे प्रहार किया जा सकता है और उसे कैसे बदला जा सकता है ? इस चर्चा में, इस प्रश्न के चिंतन में, सबसे ज्यादा और महत्त्वपूर्ण उपाय है ध्यान। ध्यान के द्वारा हिंसा की जड़ को काटा जा सकता है। धर्म में हिंसा की जड़ को काटने वाले जितने तत्त्व हैं उनमें शिरोमणि है ध्यान। श्वास भी है, स्वाध्याय भी है। अनेक उपाय हैं जो हिंसा की जड़ पर प्रहार करते हैं। पर उन सबसे ज्यादा प्रहारक क्षमता वाला साधन है ध्यान। एक उपमा के द्वारा इस बात को समझाया गया —एक आदमी दो दिन की तपस्या करता है और एक आदमी लगभग ढाई मिनट ध्यान करता है। वह ढाई मिनट का ध्यान दो दिन की तपस्या को पीछे छोड़ देगा। कहां दो दिन भूखे रहना और कहां ढाई मिनट ध्यान करना ! यह शायद बहुत छोटी क्षमता बतलाई गई। ध्यान में इतनी अपार क्षमता है, हमारे चित्त की निर्मलता में इतनी ज्यादा क्षमता है कि शायद हजारों-हजारों वर्ष की तपस्या को एक घड़ी का ध्यान पीछे छोड़ देगा। हमें इसका मूल्यांकन करना है कि अहिंसा का विकास करने के लिए, अपने आपको जानने के लिए, प्राणीमात्र की समानता को समझने के लिए, प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा के सूत्र का, संवेदना के सूत्र का विकास करने के लिए जो शक्तिशाली साधन है वह है ध्यान। ध्यान के द्वारा हम हिंसा की जड़ को भी अच्छी तरह समझ सकतें हैं और अहिंसा की जड़ को भी समझ सकते हैं, हिंसा की जड़ को काट सकते हैं और अहिंसा की जड़ को और अधिक सिंचन दे सकते हैं। इस सारी स्थिति को समझने के बाद जो कुछ किया जा रहा है और जो प्रयत्न चल रहा है, उसका मूल्यांकन अपने आप हो जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अहिंसा और ध्यान

प्रत्येक सामाजिक प्राणी अहिंसा को पसंद करता है। इसलिए कि वह शांति को पसंद करता है। शांति के बिना सुख नहीं। वह सुख को पसन्द करता है। अत: सुख के लिए शांति और शांति के लिए अहिंसा जरूरी है।

हिंसा की जड़े इतनी मजबूत हैं कि उन्हें सहज ही काटा नहीं जा सकता। हिंसा की जड़े इतनी गहरी फैली हुई हैं कि बड़ा मुश्किल हो जाता है उन तक पहुंचना और गहराइयों तक जाना। उनको काटना सरल नहीं हैं, बड़ा कठिन है, किन्तु असंभव नहीं है, संभव है। उसको काटने के उपाय भी हैं। इनमें सबसे बड़ा उपाय है ध्यान। ध्यान के द्वारा इन जड़ों को आसानी से काटा जा सकता है।

ध्यान और अहिंसा का क्या संबंध है? इस पर चिंतन करने से पूर्व इस बात का चिंतन करें कि हिंसा के हेतु क्या हैं? हिंसा की जड़ों को सिंचन देने वाले तत्व कौन हैं? उन्हें जाने बिना जड़ का निर्मूलन नहीं किया जा सकता। हिंसा के जो पोषक और सिंचक तत्त्व हैं उन्हें जानना भी जरूरी है।

हिंसा के पोषक तत्त्व

हिंसा का एक बहुत बड़ा पोषक तत्त्व है—तनाव। वही आदमी हिंसा करता है जो तनाव से ज्यादा ग्रस्त होता है। तनाव के बिना हिंसा संभव नहीं होती। शिथिलीकरण की दशा में कोई आदमी हिंसा नहीं कर सकता। पहले मांसपेशियों में तनाव होता है, मानसिक तनाव होता है, भावनात्मक तनाव होता है और आदमी हिंसा पर उतारु हो जाता है। मूल की दृष्टि से विचार करें तो सबसे बड़ा तनाव भावनात्मक तनाव है, आवेश जनित तनाव है।

तनाव दो प्रकार का होता है आवेशजन्य और अवसादजन्य। क्रोध का तनाव और लोभ का तनाव आवेशजन्य तनाव है। अवसादजन्य तनाव है—निराशा, निष्क्रियता, निठल्लापन। दोनों प्रकार के तनाव आदमी को हिंसा की ओर ले जाते हैं।

बहुत बड़ी हिंसाएं क्रोध के कारण हुई हैं। क्रोध के कारण आदमी आग बबूला होकर दूसरे को मार डालता है, बहुत बड़ी हिंसाएं कर देता है। क्रोध में युद्ध तक की स्थिति आ जाती है। युद्ध एक भयानक घटना है। हिंसा का एक भयानक उदाहरण है। अहंकार के कारण भी बड़ी-बड़ी हिंसाएं हुई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहां भी अहंकार को थोड़ी चोट पहुंचती है, युद्ध की स्थिति बन जाती है।

लड़ाई अहं की

गुजरात का एक प्रदेश है गिरनार। गिरनार राज्य पर बादशाह अपना आधिपत्य जमाना चाहता था। अनेक प्रयत्न किए और आक्रमण किए, पर सफल नहीं हो सका। वहां के शासक राव थे। उनके एक भाई का नाम था जैसाकी। वह इतना पराक्रमी था कि बादशाह की सेना उसके सामने टिक नहीं पाती थी। अनेक प्रयत्न किए पर सफल नहीं हो सका। गिरनार का एक चारण बादशाह के वहां सेवा में जाता था और राव के वहां भी सेवा में जाता था। जब-जब वह चारण वहां आता, राव उसे सम्मानित करता और "शिरोपाव" देता, पगड़ी भी देता, सम्मान करता। एक बार चारण आया तो राव ने उसे शिरोपाव तो दिया पर पगड़ी नहीं दी। चारण बोला, करुणासिन्धु ! मैं जब-जब भी आता हूं आप मुझे पगड़ी भी देते हैं। इस बार नहीं दी। इसका कारण क्या है ? राव ने कहा-तुम वहां जाओगे और बादशाह के सामने झुकोगे। मेरी पगड़ी बादशाह के सामने झुक नहीं सकती। अतः मैं पगड़ी नहीं दे सकता। चारण ने कहा, मैं यह संकल्प करता हूं कि आप द्वारा दी गई पगड़ी झुकेगी नहीं। राव ने पगड़ी दे दी। उसने बांध ली। वह बादशाह के पास गया और जैसे ही बादशाह के सामने झुकने का प्रसंग आया तो उसने पगड़ी को उतारकर हाथ में लिया। बादशाह ने देखा। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा, ऐसा क्यों ? पगड़ी को हाथ में ले लिया और फिर सिर झुकाते हो ? चारण ने कहा, यह पगड़ी झुक नहीं सकती। यह "जैसाकी" द्वारा दी गई पगड़ी है। उन्होंने पगड़ी देते समय मुझे कहा है कि मेरी पगड़ी बादशाह के सामने झुक नहीं सकती। मैंने भी संकल्प लिया है कि इस पगड़ी को बादशाह के सामने नहीं झुकाऊंगा। अतः मैंने ऐसा किया है। यह पगड़ी नहीं झुक सकती, मेरा सिर झुक सकता है।

इस छोटी-सी बात से बादशाह के अहं पर इतनी गहरी चोट हुई कि उसने तत्काल अपनी विशाल सेना लेकर गिरनार पर आक्रमण कर डाला। एक भयंकर युद्ध शुरू हो गया।

कितनी छोटी बात पर हिंसा भड़क उठती है ? कितनी छोटी बात पर युद्ध शुरू हो जाता है ? कुछ भी लेना-देना नहीं था, पर अहं पर थोड़ी सी चोट हुई और एक युद्ध प्रारम्भ हो गया। क्रोध का आवेश, अहंकार का आवेश, लोभ का आवेश—ये आवेश आदमी को हिंसा की ओर ले जाते हैं। ये हिंसा के सबसे बड़े सहायक और पोषक तत्त्व हैं।

अवसादजन्य तनाव और हिंसा

अवसादजन्य तनाव भी हिंसा में ले जाते हैं। आदमी प्रयत्न करता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर सफलता नहीं मिलती। निराश हो जाता है, चारों ओर से निराश हो जाता है। निराश व्यक्ति कभी-कभी अपनी हिंसा की बात भी सोच लेता है। बहुत सारी आत्म-हत्याएं अवसाद के कारण होती हैं। अवसाद जो तनाव पैदा करता है, उसमें मरने के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता। कभी ऊपर से छलांग लगायी और मर गया, कभी जहर की गोलियां खाईं और मर गया, कभी रेल के सामने लेट गया और मर गया। ये सारी हिंसा की बातें अवसादजनित तनाव के कारण आती हैं।

तनावमुक्ति का उपाय : ध्यान

ये दोनों प्रकार के तनाव—आवेशजन्य तनाव और अवसादजन्य तनाव मनुष्य को हिंसा की ओर ले जाते हैं। अब इस बिन्दु पर पहुंच कर हम ध्यान और अहिंसा की बात पर विचार करें। तनाव को मिटाने का सबसे शक्तिशाली साधन है ध्यान। ये जितने तनाव पैदा होते हैं, चाहे मांसपेशियों के तनाव हों, चाहे मानसिक हों या भावनात्मक हों और चाहे अवसादजन्य हों, उन्हें मिटाने का सबसे शक्तिशाली अस्त्र है ध्यान। ध्यान का मुख्य कार्य है व्यक्ति को तनाव से मुक्त करना। भावनात्मक तनाव को मिटाने के लिए ध्यान के सिवाय अन्य बड़ा कोई साधन नहीं है। ध्यान के साथ कायोत्सर्ग और अनुप्रेक्षा—ये सब उसके परिवार में हैं। ये सारे तनाव मुक्ति में काम आते हैं। ध्यान एक शक्तिशाली साधन है—तनाव मुक्ति का। इसलिए हिंसा की जड़ पर प्रहार करने का एक शक्तिशाली साधन है—ध्यान।

तनाव आया, मांशपेशी में तनाव आया। कायोत्सर्ग किया और वह समाप्त। मानसिक तनाव आया, दस मिनट दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोग किया और तनाव समाप्त। इन्द्रिय-संयम मुद्रा का प्रयोग किया और मानसिक तनाव समाप्त। भावनात्मक तनाव आया और दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोग किया, ज्योति केन्द्र पर ध्यान किया और भावनात्मक तनाव समाप्त। अनित्य और एकत्व अनुप्रेक्षा का प्रयोग किया और तनाव समाप्त। तनाव मुक्ति का सबसे बड़ा और शक्तिशाली माध्यम है ध्यान। तनावजनित जितनी हिंसाएं होती हैं उन हिंसाओं को दूर करने का एक सफल प्रयोग हमारे सामने ध्यान होता है। ध्यान और अहिंसा का यह एक पहलू उनके संबंध का एक बिन्दु है।

हिंसा और रसायन

हिंसा का दूसरा तत्त्व है—रासायनिक असंतुलन। हिंसा केवल बाहरी कारणों से ही नहीं होती, उसके भीतरी कारण भी हैं। हमारे भीतर भी हिंसा का कारण है और वह है—रासायनिक असंतुलन। हमारी ग्रन्थियों में जो रसायन बनते हैं, उन रसायनों में जब असंतुलन पैदा हो जाता है तब व्यक्ति हिंसा पर उतारु हो जाता है। सभी अन्तःस्रावी ग्रंथियों का अपना-अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम है। पिच्यूटरी का अलग फंक्शन है, पिनियल का अलग है, थायराइड का अलग है, एड्रीनल का अलग है। सबके अपने-अपने फंक्शन हैं। ये संतुलित काम करते हैं तो व्यक्ति संतुलित रहता है। इनमें असंतुलन हुआ, रासायनिक प्रक्रिया गड़बड़ाई कि आदमी का मस्तिष्क विक्षिप्त-सा हो जाता है और हिंसा की वृत्तियां जाग जाती हैं। ध्यान एक उपाय है रासायनिक संतुलन का। ध्यान के द्वारा रासायनिक संतुलन पैदा किया जा सकता है। चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा इसके लिए सशक्त प्रयोग है। दर्शन केन्द्र पर ध्यान करते हैं तो पिच्यूटरी का स्राव संतुलित हो जाता है। ज्योतिकेन्द्र पर ध्यान करते हैं तो पिनियल का स्राव संतुलित हो जाता है। कंठ पर ध्यान करते हैं, विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान करते हैं तो थायराइड का स्राव संतुलित हो जाता है। तैजसकेन्द्र पर ध्यान करते हैं तो एड्रीनल का स्राव संतुलित हो जाता है। रासायनिक संतुलन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ध्यान।

हर व्यवहार के पीछे रसायन

हमारे भीतर बहुत सारे रसायन हैं। आज के जैव-रासायनिक वैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे एक रसायन काम करता है। आदमी क्रोध करता है तो भी एक रसायन काम करता है, क्रोध का शमन करता है तो भी एक रसायन काम करता है। हमारे हर व्यवहार के पीछे एक प्रकार का रसायन होता है। क्रोध के रसायन को निलंबित करना और शांति के रसायन को उत्तेजित करना, यह ध्यान के द्वारा संभव बनता है।

दो गप्पी मिल गए। एक गप्पी ने गप्प हांकी कि मेरा दादा मरा था तो दस लाख रुपए छोड़कर मरा था। दूसरा गप्पी भी कम नहीं था। उसने कहा—क्या कहते हो? मेरा दादा मरा तो सारी दुनिया को छोड़कर मरा था।

चैतन्यकेन्द्रप्रेक्षा : शक्तिशाली माध्यम

एक उत्तेजक होता है और दूसरा शामक होता है। शामक बात आती है तो उत्तेजना समाप्त हो जाती है। दोनों प्रकार के तत्त्व काम करते हैं। उत्तेजक तत्त्व काम करता है तो शामक तत्त्व भी अपना काम करता है। उत्तेजक तत्त्व आता है तो दूसरा तत्त्व या दूसरी प्रणाली शामक तत्त्व प्रस्तुत कर देती है। दोनों चलते हैं। यदि हम चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का प्रयोग करें तो शामक तत्त्व इतना प्रबल होता है कि दूसरी बात बिलकुल दब जाती है। इस रासायनिक असंतुलन को मिटाने का शक्तिशाली माध्यम है चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा। इसलिए ध्यान और अहिंसा का संबंध हमारी समझ में और गहरा बैठ जाता है। हिंसा का जो प्रबल सहायक तत्त्व है रासायनिक असंतुलन, उसे संतुलित करने का माध्यम है ध्यान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा का कारण : नाड़ीतंत्रीय असंतुलन

तीसरा तत्त्व है—नाड़ी-तन्त्रीय असंतुलन। नाड़ीतन्त्रीय असंतुलन पैदा होते ही आदमी अकारण ही हिंसा पर उतारू हो जाता है। बहुत लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें मारने में मजा आने लगता है। मारने का कोई प्रयोजन नहीं है, न कोई अपराध, न कोई बैर-भाव, न कोई द्वेष और न कोई बदला लेने की भावना, कुछ भी नहीं, बस मारने में मजा आने लग गया। अभी-अभी कुछ व्यक्ति पकड़े गए थे। पुलिस ने पूछताछ की। उन्होंने यही कहा कि मारने में हमें बड़ा मजा आता है।

अभी अभी पाकिस्तान में एक ग्रुप पकड़ा गया है हथौड़ा मार। वे हथौड़े से आदमी को मार डाल हैं। अनेक लोगों को, पचासों लोगों को उन्होंने मार डाला। पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार उनका कोई उद्देश्य नहीं था। बस, उन्हें मारने में मजा आता था। ऐसा क्यों होता है ? यह होता है—नाड़ीतन्त्रीय असंतुलन के कारण, रासायनिक असंतुलन के कारण। मारना उनके लिए आनन्द का और मनोरंजन का विषय बन जाता है।

संतुलन का प्रयोग

नाड़ीतन्त्रीय असंतुलन को मिटाने का महत्त्वपूर्ण उपाय है समवृत्ति श्वास प्रेक्षा। दोनों नथुनों से श्वास, यानी बायें से शुरू करना और दाएं से निकालना और दाए से लेना और बाएं से निकालना। हमें नाड़ी-तंत्र का संतुलन पैदा करना है। उसके दो हिस्से हैं—एक बायां और एक दायां। हठयोग में इसे कहा गया है इडा और पिंगला। बायां हिस्सा इडा है। मेडीकल साइंस की भाषा में कहें तो यह पिंगला सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम है, अनुकंपी नाड़ी तंत्र है और दायां हिस्सा, पेरासिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम है, परानुकंपी नाड़ी तंत्र है। हम समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। दोनों नाड़ी-तंत्रों में संतुलन पैदा हो जाता है। जब हम अन्तर्यात्रा का प्रयोग करते हैं तो केन्द्रीय नाड़ी-तन्त्र में संतुलन पैदा हो जाता है।

नाड़ीतन्त्र के तीन भाग हैं—१. केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र, २. अनुकंपी नाड़ी-तन्त्र और ३. परानुकंपी नाड़ीतन्त्र। इन सबमें एक संतुलन स्थापित हो जाता है अन्तर् श्वास प्रेक्षा के प्रयोग से और समवृत्ति श्वासप्रेक्षा के प्रयोग से। यह संतुलन स्थापित होता है तो हिंसा की भावना अपने आप बन्द हो जाती है।

घृणा से उपजती समस्या

हिंसा का एक बहुत बड़ा माध्यम है निषेधात्मक दृष्टिकोण। दृष्टि-कोण दो प्रकार का होता है—निषेधात्मक और विधायक। नेगेटिव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोजिटिव । सामान्यतया यदि सर्वे किया जाए तो व्यक्ति में निषेधात्मक दृष्टिकोण अधिक मात्रा में मिलता है, विधायक दृष्टिकोण कम मात्रा में मिलता है। निषेधात्मक दृष्टिकोण आदमी को हिंसा की तरफ ले जाता है। घृणा, ईर्ष्या, भय, कामवासना—ये सब निषेधात्मक दृष्टिकोण हैं। घृणा के कारण आज कितनी हिंसा हो रही है ? जितनी जातीय हिंसा है, जितनी रंगगत हिंसा है और जितनी सवर्ण और असवर्ण की हिंसा है, ये सारी हिंसाएं घृणा के आधार पर चल रही हैं। घृणा का एक ऐसा तत्त्व आदमी के भीतर बैठा है कि वह दूसरे से घृणा करता है, दूसरे को छोटा मानता है और अपने आपको बड़ा मानता है। आज विश्व के सामने भयंकर समस्या है जाति की समस्या और रंग की समस्या। हिन्दुस्तान में प्रबल समस्या है जाति की समस्या तो अमेरिका जैसे विकसित देशों में है रंग की समस्या, गोरे और निग्रो की समस्या ! अफ्रीकी लोगों की भी यही समस्या है। ये सारी समस्याएं अथवा साम्प्रदायिक समस्याएं घृणा के आधार पर पनपती हैं। यदि घृणा न हो तो सांप्रदायिक समस्या पनप ही नहीं सकती। हम तो सबसे ऊंचे हैं, बाकी सब नीचे हैं ऐसी घृणा भर दी जाती है। छोटे-छोटे किशोर जो कुछ भी नहीं जानते, वे भी घृणा के आधार पर हजारों को कत्ल कर देते हैं, मार देते हैं। यह सब निषेधात्मक दृष्टिकोण है।

ईर्ष्या के कारण कितनी हिंसा होती है। दो व्यक्ति देवी की साधना करते थे। देवी प्रसन्न हो गई और बोली—वरदान मांगो। देवी ने सोचा—परीक्षा तो करूं कि इनका भाग्य कैसा है। उसने कहा, जो पहले मांगेगा उसे आधा दूंगी और जो बाद में मांगेगा उसे दूना दूंगी। अब बड़ी समस्या खड़ी हो गई। उनमें एक था लोभी। लोभ भी एक निषेधात्मक दृष्टिकोण है। उसने सोचा, यदि मैं पहले मांगूंगा तो ठगा जाऊंगा। दूसरा था ईर्ष्यालू। दोनों में ठन गई। क्या करे ? देवी ने कहा, इतना समय मैंने दे दिया अब मैं जा रही हूं, मांगना हो तो मांगो। लोभी तो टस से मस नहीं हुआ और ईर्ष्यालू सोचता है कि यह मेरे से भिडा है, अब इसे मजा चखाऊंगा। निषेधात्मक दृष्टिकोण जाग गया। वह बोला, माता ! कृपा कर मेरी एक आंख फोड़ दो। अपनी एक आंख फूड़ा ली। उसे क्या मिला ? दूसरा बेचारा अन्धा हो गया। यह हिंसा क्यों हुई ? इसका क्या कारण है ? कोई कारण नहीं, केवल निषेधात्मक दृष्टिकोण है। ऐसी हिंसा समाज में और परिवारों में कितनी चलती है ? दो भाइयों को हमने देखा। एक भाई कहता है कि मैं चाहे बरबाद हो जाऊं पर इस भाई को तो बरबाद करके ही रहूंगा। क्या भला होगा तुम्हारा ? तुम्हें क्या मिलेगा ? स्वयं बरबाद होने को तैयार है, पर उसे बरबाद करके ही रहूंगा। ये सारी हिंसाएं, निषेधात्मक दृष्टिकोण के कारण चल रही हैं। आदमी का विधायक दृष्टिकोण नहीं है। वह विधायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा में नहीं सोचता, केवल दूसरे के अहित की बात सोचता है और वैसा करता है, इसलिए समाज में, परिवार में हिंसा चलती है।

दर्शन हो स्वयं का

ध्यान एक प्रयोग है विधायक दृष्टि के विकास का। प्रेक्षा-ध्यान में बार-बार कहा जाता है कि अपने आपको देखें, अपने द्वारा अपने को देखें। अपने आपको देखना एक ऐसा सूत्र है, जो निषेधात्मक भावों को मिटाता है और विधायक भावों का निर्माण करता है। जब व्यक्ति अपने आपको देखने लग जाएगा और दूसरा सामने नहीं होगा तो निषेधात्मक भाव अपनी मौत मरने लग जाएगा। हमारे सारे निषेधात्मक भाव इसी आधार पर पनपते हैं जब हम केवल दूसरों को देखते हैं। दूसरों को देखते-देखते हमारी ऐसी स्थिति हो जाती है कि अपनी बात बिलकुल भुला दी जाती है और जहां से विधायक भाव का स्रोत फूटता है, उसे बन्द कर दिया जाता है, निषेधात्मक विचार पनपने लग जाते हैं।

आत्म-दर्शन, आत्म-निरीक्षण, अनित्य अनुप्रेक्षा, सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा—ये सारे प्रयोग हैं, जो निषेधात्मक भावों को समाप्त करते हैं और विधायक भावों को उजागर करते हैं।

एक उपाय है ध्यान

ध्यान एक प्रयोग है, एक उपाय है विधायक भाव के जागरण का। मैं भी परिवर्तन ला सकता हूं। यह एक विधायक भाव है और इसका अर्थ है हिंसा के बहुत बड़े सहायक तत्त्व पर कड़ा प्रहार। इससे व्यक्ति के सारे बुरे चिंतन समाप्त होते हैं। कितने लोग हैं जो बुरा चिंतन नहीं करते, अपना आत्म विश्लेषण करते हैं, आत्म-निरीक्षण करते हैं कि बुरा चिंतन मन में न आए। क्या एक दिन भी खाली जाता है? कोई कह सकता है कि आज का दिन ऐसा गया कि कोई बुरा विचार मन में नहीं आया? चाहे वह हिंसा का विचार हो, चाहे वह झूठ बोलने का विचार हो, चाहे चोरी का विचार हो और चाहे कोई दूसरे भाव का विचार हो। जो आदमी इनसे दूर हो गया, फिर भी विचार पीछा नहीं छोड़ता, क्योंकि हमारे भीतर इतने संस्कार भरे पड़े हैं कि बाहर से निमित्त नहीं मिला तो भीतर के संस्कार जागने शुरू हो जाते हैं।

आंतरिक कारण

जगत् में सामान्यतः कार्य-कारण का सिद्धांत चलता है। सामान्य व्यवहार में और तर्कशास्त्र में भी यह कहा जाता है कि कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता। पर बिना कारण के भी कार्य हो जाता है। कोई कारण नहीं, पर लोभ की भावना जाग गई। कोई कारण नहीं है, किन्तु कर्म का संस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचानक इतना प्रबल विपाक में आ गया कि अहेतुक गुस्सा आ गया। कुछ लोग कहते हैं, पता नहीं मुझे कैसे बैठे-बैठे डर लगने लग गया। ये सब सहेतुक नहीं—ये सब भीतरी कारणों से होते हैं। जिन्हें विज्ञान की भाषा में रासायनिक परिवर्तन कह दें और कर्मशास्त्रीय भाषा में कर्म का विपाक या कर्म-संस्कार का जागरण कह दें। ये सब अपने अन्तर् से ही होते हैं, बाहर से कोई निमित्त नहीं होता, कोई परिस्थिति नहीं होती और वैसा कोई परिवेश नहीं होता। अपने भीतर से ही ये सारी घटनाएं घटती हैं। इन सब में परिवर्तन लाने का सबसे शक्तिशाली उपाय है अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षाओं का प्रयोग आन्तरिक घटनाओं में भी परिवर्तन ला सकता है।

हिंसा का चौथा तत्त्व है—निषेधात्मक दृष्टिकोण। विधायक दृष्टिकोण है उसके शमन का उपाय।

अतिसक्रियता से हिंसा का बढ़ावा

हिंसा का पांचवा प्रबल तत्त्व है—चंचलता, सक्रियता। वह तीन प्रकार की है—मन की चंचलता, वाणी की चंचलता और शरीर की चंचलता। चंचलता हिंसा को बढ़ावा देती है। सक्रियता हिंसा को बढ़ावा देती है। यह सही है कि चंचलता के बिना जीवन की यात्रा नहीं चलती। चंचलता जीने के लिए जरूरी है, किन्तु उसकी एक सीमा है कि आदमी को कितना चंचल होना चाहिए। ऐसा लगता है कि आज का युग सीमा को पार कर गया। वह अतिरिक्त चंचल बन गया। यह अधिक चंचलता हिंसा को प्रोत्साहन दे रही है। यदि कोई आदमी २४ घंटा प्रवृत्ति में रहे, सक्रिय रहे तो दो चार दिन में आधा पागल बन जाता है। और दस-बीस दिन रह जाए तो पागलखाने में जाने की तैयारी हो जाती है। प्रकृति का नियम है—चंचलता करो तो साथ में विश्राम भी करो। प्रवृत्ति करो तो नींद भी लो। नींद या विश्राम का विषय प्रवृत्ति के साथ जुड़ा हुआ है। अगर नींद नहीं होती तो दिल्ली जैसे शहर में बेचारी सड़क को भी कभी विश्राम नहीं मिलता। दो क्षण के लिए भी नहीं मिलता। हजारों-हजारों की भीड़। अगर यह नींद नहीं होती तो विश्राम नहीं होता। ये बाजार भी कभी बंद नहीं होते। दिन और रात, २४ घंटा, आदमी को काम करना होता तो शायद यह पागलों का ही संसार होता। किन्तु एक नियम है चंचलता के साथ निवृत्ति का और विश्राम का। आदमी ने इस सीमा का अतिक्रमण किया है, संतुलन को खोया है, वह अतिरिक्त चंचल बन गया है। शरीर से भी बहुत ज्यादा चंचल है। कायोत्सर्ग कराया जाता है या कायिक अनुशासन की बात आती है तो पांच मिनिट के प्रयोग में भी बड़ी कठिनाई आ जाती है। बड़ा कठिन लगता है। यदि हम २४ घंटा में १८ घंटा या १६ घंटा शरीर को चंचल बनाएं रखें, तो ५-७ घंटा नींद में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे थोड़ा स्थिर बना दें। पर नींद में भी पूरी स्थिरता कहां होती है? अगर २४ घंटा में आधा घंटा भी स्थिर होने का अभ्यास करें तो एक संतुलन बन जाएगा। कायिक चंचलता जितनी थी, उसमें आधा घंटा स्थिरता आई तो आप निश्चित मानें कि हिंसा की वृत्ति में परिवर्तन आना शुरू हो जाएगा।

वाचिक चंचलता बहुत चलती है। आदमी बहुत बोलता है। बिना मतलब बहुत बोलता है।

अभ्यास अचिन्तन का

एक दार्शनिक से पूछा गया—दुनिया में सबसे सरल काम क्या है उसने उत्तर दिया कि बिना मांगे सलाह देना सबसे सरल काम है। इतना सरल कोई काम नहीं है। फिर पूछा—सबसे कठिन क्या काम है? उसने कहा, सबसे कठिन काम है—अपने आपको देखना। यह सबसे कठिन काम है। लोग सबसे सरल काम करना चाहते हैं, कठिन काम करना नहीं चाहते।

अगर दिन भर में एक घंटा न बोलने का अभ्यास किया जाए, प्रयोग किया जाए तो एक संतुलन बनेगा। जैसे कायिक अनुशासन है कायोत्सर्ग, वैसे ही वाचिक अनुशासन है—अन्तर्मौन। आदमी इतना सोचता है कि निरंतर सोचता ही रहता है। बहुत ज्यादा सोचता है, अनावश्यक सोचता है। सोचना जरूरी होता है, बिना सोचे काम नहीं चलता, पर वह अनावश्यक बहुत सोचता है। अनावश्यक चिंतन बंद हो जाए तो भी बहुत बड़ी बात होती है। आदमी में चिंतन चलता ही रहता है, कभी बंद नहीं होता। अनावश्यक चिंतन को बंद करना मानसिक अनुशासन है।

एक संतुलन बनाएं। २४ घंटा में एक घंटा न सोचने का अभ्यास करें या न रहा जाए तो कम से कम एक विषय पर सोचने का अभ्यास करें। एक विषय पर सोचें, दूसरे विषय पर न जाएं।

स्थिरता से हिंसा पर नियंत्रण

पहला है कायिक अनुशासन का प्रयोग, दूसरा है वाचिक अनुशासन का प्रयोग और तीसरा है मानसिक अनुशासन का प्रयोग। ये तीन ध्यान के प्रयोग हैं। कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। इनसे हिंसा की प्रवृत्ति पर नियंत्रण होता है। चंचलता पर नियंत्रण का अर्थ है हिंसा पर नियंत्रण। अतिरिक्त चंचलता का अर्थ है हिंसा को बढ़ावा देना और प्रोत्साहन देना। हिंसा को कौन बढ़ा रहा है, चंचलता ही तो बढ़ा रही है और चंचलता न हो तो हिंसा को इतना मौका नहीं मिलता। आदमी कभी हिंसा पर उतारु नहीं होता। जब आदमी हिंसा करता है उस समय सारी जैविक प्रक्रिया बदल जाती है। पेशियों को अधिक रक्त मिलना शुरू हो जाता है। पेशियां अधिक तन जाती हैं। एड्रीनल ग्रन्थि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अतिरिक्त स्राव शुरू हो जाता है। हमारे रक्त में एड्रीनेलिन का मिश्रण हो जाता है। वह स्राव जब मिलता है तो अतिरिक्त शक्ति आती है। लीवर के पास जो सुगर का भण्डार होता है, अधिक चीनी भी हमें मिलने लग जाती है। सारी जैविक रासायनिक और शारीरिक प्रक्रियाएं और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं बदल जाती हैं, ऐसा क्यों होता है ? चंचलता के कारण होता है। जब चंचलता बढ़ती है तो हिंसा की भावना आती है, आक्रामक मुद्रा बनती है और सांस तेज हो जाती है। सांस बहुत बढ़ जाती है। एक मिनट में १०-१५ श्वास लेते हैं, उस स्थिति में श्वास की संख्या २०, ३०, ४०, तक चली जाती है। ये सारे परिवर्तन आते हैं। जिस व्यक्ति ने ध्यान का प्रयोग किया है, शरीर को साधा है, वह कभी भी इस प्रकार की हिंसा में जा नहीं सकता। चंचलता को कम करने का एक बहुत बड़ा माध्यम है ध्यान और चंचलता को कम करने का अर्थ है हिंसा की प्रवृत्ति को कम कर देना।

संकेत की भाषा

यह सारी भाषा संकेत की भाषा है। इसे समझना बड़ा कठिन हो रहा है। आज का युग सांकेतिक भाषा को पकड़ नहीं पा रहा है। अगर संकेत हमारी समझ में आ जाएं तो आज जितने अपराध, जितनी हिंसाएं बढ़ रही हैं और जैसा हो रहा है, उनकी रोकथाम की जा सकती है। पर संकेत की बात को कैसे समझें ? उनके लिए हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिए ? एक घटना के माध्यम से इसे समझें।

राजस्थान का एक राज्य था—जोधपुर राज्य। वहां के राजा को एक बार जरूरत हुई पैसे की। उसने अपने पुराने अभिलेख देखे। एक लेख मिला, जिसमें लिखा था—कभी खजाने को धन की जरूरत पड़े तो मकराना और खाटू के बीच में धन गड़ा हुआ है, उसे निकाल लिया जाए। राजा ने देखा—बात तो ठीक है पर मकराना से खाटू की दूरी होगी २०-३० मिलोमीटर। कैसे पता लगाएं, पता लगाना कठिन है। कहां पता लगे। इतनी दूरी में कहां-कहां खोदें। धन कहां गड़ा है, असमंजस में पड़ गए। हम भी असमंजस में पड़े हुए हैं। कहते हैं कि हमारे भीतर में बहुत संपदा है। पर कहां छिपी है, कहां से निकालें ? पता नहीं चलता, क्योंकि हम संकेत की भाषा को नहीं जानते। आखिर राजा ने दीवान को बुलाया और सारी बात बतलाई। दीवान ने कहा, बीकानेर राज्य में मेरा एक दामाद है जसवंत बैद। अगर आप उसे बुलाएं तो समाधान मिल सकता है। बुलाया उसे। वह आया। उसने पुराना लेख पढ़ा और संकेत की भाषा को पकड़ा। उसने कहा—समाधान हो गया है, खजाना मिल जाएगा। राजा ने पूछा, कैसे मिल जाएगा ? कहां खोदोगे ? उसने कहा, जरूरत नहीं है अन्यत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खोदने की। महाराजा जिस सिंहासन पर बैठे हैं उसके एक ओर मकराने का पत्थर लगा हुआ है और दूसरी ओर खाटू का पत्थर लगा हुआ है। इन दोनों के बीच में खजाना गडा हुआ है। दोनों पत्थरों को उखाड़ा। पूरा खजाना मिल गया।

संकेत की भाषा को पढ़ना बड़ा कठिन होता है। हमारे भीतर अहिंसा का बहुत बड़ा खजाना है। किन्तु किस ध्यान के द्वारा उसे प्राप्त करें? उस संत की भाषा को कोई पढ़ पाए तो उसके लिए सरल है। किन्तु बड़ा कठिन है इस संकेत की भाषा को पढ़ पाना। अगर यह संकेत की भाषा समझ में आ जाए और ध्यान का विकास किया जाए तो दुनिया की सबसे ज्वलंत समस्या, जो युद्ध की समस्या है, अणुशस्त्रों की समस्या है, हिंसा की समया है, अपराध की समस्या है इन सब का एक समाधान और एक निदान खोजा जा सकता है और कुछ किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अहिंसा और आहार

जीवन के दो आधारभूत तत्त्व हैं—श्वास और आहार। श्वास का अर्थ है जीवन। आहार का अर्थ है जीवन। इन दोनों के बिना जीवन चलता नहीं। श्वास बंद, जीवन की यात्रा संपन्न। आहार बंद तो कुछ ही दिनों में जीवन की यात्रा संपन्न। मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक प्राणी आहार और श्वास के बल पर जीता है। एक छोटे से छोटा वनस्पति का प्राणी भी श्वास लेता है, आहार लेता है, इसीलिए जीता है। आहार जीवन का आधारभूत तत्त्व है।

आहार से जुड़े कुछ तत्त्व

आहार के विषय में विमर्श होता रहा है। इस विमर्श के अनेक कोण रहे हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार पर विचार किया गया कि स्वस्थ व्यक्ति का आहार कैसा होना चाहिए? इस पर बहुत सूक्ष्मता से चिंतन किया। ऋतु के आधार पर भी मीमांसा प्राप्त है। सर्दी की ऋतु का आहार एक प्रकार का होता है और गर्मी की ऋतु का आहार भिन्न प्रकार का होता है। वर्षा ऋतु का आहार इन दोनों से भिन्न प्रकार का होता है। इससे भी सूक्ष्म विचार किया गया कि ये तो वर्ष में आने वाली तीन ऋतुएं हैं, पर एक दिन में भी ये तीनों ऋतुएं आती हैं, प्रातःकाल का आहार कैसा होना चाहिए? मध्याह्न का आहार कैसा होना चाहिए? सायंकालीन आहार कैसा होना चाहिए? इस प्रकार अनेक पहलुओं से आहार पर चिंतन किया गया।

आहार का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य के साथ भी जोड़ा गया। विचार किया गया कि ब्रह्मचारी का आहार कैसा होना चाहिए? सात्विक वृत्ति में जीने वाले का आहार कैसा होना चाहिए? व्यक्ति की भावनात्मक धारा को सात्विक रखने में कौन-सा आहार उपयोगी होता है? इन सब आधारों पर आहार के विषय में अनेक विधियां और वर्जनाएं दी गईं। बताया गया—अमुक प्रकार का भोजन करना चाहिए और अमुक प्रकार का भोजन नहीं करना चाहिए।

आहार का प्रस्तुत संदर्भ

आहार की यह प्रस्तुत चर्चा मैं न स्वास्थ्य की दृष्टि से कर रहा हूं और न ब्रह्मचर्य की दृष्टि से कर रहा हूं। मेरे सामने चर्चा का एकमात्र पहलू है अहिंसा। क्या आहार का और हिंसा का कोई संबंध है? क्या आहार का और अहिंसा का कोई सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध की खोज करनी है। सूक्ष्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ात को खोजने में बड़ी कठिनाई आती है, बड़ा श्रम करना होता है।

एक गंजा आदमी हजामत कराने के लिए नाई की दूकान पर गया। उसने नाई से पूछा—हजामत के क्या लोगे ? नाई बोला—तीन रुपये। उसने कहा—सबसे दो-दो रुपये ले रहे हो, फिर मेरे से तीन क्यों ? नाई ने कहा—हजामत के तो दो ही रुपये लूंगा। पर एक रुपया तुम्हारे बाल ढूंढने का लगेगा। गंजे सिर पर बालों को खोजना भी एक समस्या है। उसमें श्रम करना पड़ता है।

हमें सम्बन्ध की खोज करनी है कि आहार में और हिंसा में तथा आहार में और अहिंसा में क्या सम्बन्ध है ? यह सम्बन्ध की खोज महत्त्वपूर्ण पहलू है।

भोजन से जुड़ी समस्याएं

आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरो-ट्रांसमीटर बनते हैं, जो तंत्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने चालीस प्रकार के न्यूरो-ट्रांसमीटरों का पता लगा लिया है। ये सारे भोजन से बनते हैं।

भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृत्ति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अतः इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने से क्या बनता है ? जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं, भावनात्मक उलझनें बढ़ती हैं, हिंसा की वृत्ति बढ़ती है।

भोजन : दो पहलु

प्राचीन काल में भोजन के इस पहलू पर बहुत विचार किया गया कि क्या खाने से क्या होता है। आज के वैज्ञानिक ने इस पहलू के साथ-साथ दूसरे पहलू पर भी बहुत ध्यान दिया है कि किस प्रकार के भोजन की पूर्ति न होने पर क्या होता है ? दोनों पहलु हमारे सामने हैं—(१) किस वस्तु के खाने से क्या होता है ? (२) किस वस्तु की पूर्ति न होने पर क्या होता है ? एक प्राचीन पहलू है और एक नया पहलू है।

एक आदमी बहुत चिड़चिड़ा है। चिड़चिड़ा क्यों है, इसकी खोज करने पर पता लगता है कि उसमें विटामिन "ए" की कमी है। प्रति सौ क्यूबिक सेंटीमीटर में चीनी की मात्रा ९० से ११० मिलिग्राम होनी चाहिए। इतनी आवश्यक होती है। जिसमें इससे कम चीनी होती है, उसके शरीर पर असर आ जाता है। यदि अधिक कम होती है तो भावात्मक असर आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका स्वभाव बिगड़ जाता है। यहां तक कि वह आदमी हत्यारा बन जाता है।

आदमी हत्यारा क्यों बनता है

एक महिला बैठी थी। एक व्यक्ति आया, उस पर गोली चलाई। वह मर गई। व्यक्ति पकड़ा गया। जज ने पूछा—महिला को क्यों मारा? वह बोला—मुझे पता नहीं है कि मैंने महिला की हत्या क्यों की? उस महिला को देखते ही मन में इच्छा जागी कि इसे मार डालना चाहिए। मैंने अपनी इच्छा की पूर्ति कर दी। उस व्यक्ति की डाक्टरी जांच हुई। डाक्टर ने जांच में पाया कि उस व्यक्ति की रक्तधारा में चीनी की बेहद कमी थी। इसका निष्कर्ष निकाला गया कि चीनी की अधिकतम कमी के कारण उस व्यक्ति के मन में हत्या की बात पैदा हुई। दूसरा कोई कारण नहीं था।

आज की खोज के संदर्भ में यह नई बात सामने आती है। शरीर में चीनी की, नाईटिन की या विटामिन की कमी होती है तो आदमी हत्यारा, चिड़चिड़ा बन जाता है। अनेक आदमी निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं। यह रसायनों की कमी के कारण होता है। आदमी डरता है। वह निरंतर भय-ग्रस्त रहता है। भय लगने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें एक कारण है—विटामिन "बी" की कमी। इस प्रकार अनेक रसायन भय, अवसाद, हत्या आदि वृत्तियों को पैदा करने वाले होते हैं।

मूड क्यों बिगड़ता है

आजकल एक विशेष रसायन पर बहुत खोज हो रही है। वह है 'ट्रिप्टोफेन'। यह सेरोटोनिन का निर्माण करता है। आदमी का मूड बिगड़ता है। इसका मूल कारण है ट्रिप्टोफेन (TRYPTOPHAN) की कमी या सेरोटोनिन (SERATONIN) की कमी। यदि यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में होता है तो न मूड बिगड़ता है, न भय लगता है। इससे पीड़ा सहन करने की क्षमता भी बढ़ती है। आज हल्की सी पीड़ा को सहना भी कठिन होता है। आदमी तत्काल डाक्टर की शरण में जाता है, मानो वह सहना भूल ही गया हो। यह बड़ी समस्या है। यदि ट्रिप्टोफेन और सेरोटोनिन की मात्रा पर्याप्त रूप में होती है तो सहन करने की क्षमता बढ़ती है, पीड़ा को सहने की शक्ति बढ़ती है।

आजकल मांसाहार बहुत प्रचलित है। मांसाहार के विषय में एक तर्क सामने आता है कि मांस और अण्डे में प्रोटीन बहुत होता है। इस प्रोटीन की अधिक मात्रा ने मनुष्य को अधिक बीमार बनाया है उसके मानसिक संतुलन को बिगाड़ा है। उसे मानसिक रोगों से आक्रान्त किया है। अधिक मात्रा में व्यवहृत प्रोटीन लाभप्रद नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दिन में १०-१५ ग्राम प्रोटीन आवश्यक होता है। पर मांसाहार करने वाले या अंडा खाने वाले अधिक प्रोटीन खाते हैं। वह लाभप्रद नहीं होता। वे प्रोटीन के आधार पर ही मांसाहार का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं, शाकाहार में इतना प्रोटीन नहीं मिल सकता, इसलिए मांसाहार करना उचित है। पर वे भूल जाते हैं कि शरीर के लिए उतना प्रोटीन अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी है। प्रोटीन में भी प्राणिज प्रोटीन तो अत्यन्त हानिकारक होता है। वनस्पति का प्रोटीन उपयोगी होता है, पर वह भी मात्रा में लिया हुआ। बाजरे से जो प्रोटीन प्राप्त होता है, उसके समक्ष मांस का प्रोटीन नगण्य है। बाजरे का प्रोटीन स्वास्थ्यप्रद होता है और मांस का प्रोटीन रोग लाता है। मांसाहारी और अण्डा खाने वाला व्यक्ति जितनी भयंकर बीमारियों से ग्रस्त होता है, उतना शाकाहारी कभी नहीं होता। मांसाहारी के लिए मादक वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्य बन जाता है, क्योंकि मांस को पचाने के लिए या तो अधिक नमक काम में लेना पड़ता है या फिर अल्कोहाल का सेवन करना होता है। इनके सेवन से या तो गुर्दे की बीमारी को निमंत्रण दिया जाता है या लीवर और हार्ट की बीमारी को निमंत्रण दिया जाता है। मदिरा का सीधा असर लीवर और फेफड़े पर होता है। नमक की अधिक मात्रा गुर्दे को खराब कर देती है, रक्तचाप बढ़ जाता है। आज की अनेक बीमारियों का सीधा सम्बन्ध है भोजन से। ब्लडप्रेशर, हार्टट्रबल, अल्सर, केन्सर, किडनी की विकृति—इन बीमारियों के अन्यान्य कारणों में भोजन भी एक मुख्य कारण है। आज मात्रा की बात को भुलाकर आदमी अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चला रहा है। प्रोटीन एक उपयुक्त मात्रा में आवश्यक है, आदमी ने इसको भूलकर तिनके को मुसल बना डाला।

तिनका मुसल बन गया

राजस्थानी कहावत है—"तिनके को मुसल बना देना।" एक व्यक्ति अपने सुसराल गया। भोजन करने बैठा। थाल में भोजन परोसा गया। वह थाल एक पट्ट पर रख दिया और पास में मुसल भी रख दिया। वह व्यक्ति समझ नहीं पाया कि भोजन के साथ मुसल का क्या संबंध है। उसने सभी से पूछा, पर किसी ने भी सही समाधान नहीं दिया। उस घर में एक बुढ़िया थी। उसकी उम्र ९० वर्ष की थी। उससे पूछा—मां! भोजन के साथ मुसल रखने का क्या तात्पर्य है? बुढ़िया बोली—बेटा! मूल बात यह है कि पुराने जमाने में यहां मेहमान को सरसों की भाजी और रोटी परोसी जाती थी। सरसों की भाजी में डंठल बहुत रहते थे। भाजी खाने वालो के दांतों में वे डंठल फंस जाते थे। इसलिए भोजन के साथ तिनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखने का रिवाज था, जिससे की मेहमान उस तिनके से दांतों में फंसा भाजी का डंठल निकाल ले। आज न सरसों की भाजी परोसी जाती है और न सामान्य रोटी ही। सब कुछ बदल गया तो तिनके की परम्परा भी बदल गई और उसके स्थान पर लाठी या मुसल की परम्परा चालू हो गई। इस प्रकार तिनका मुसल बन गया।

शरीर के लिए कुछ मुख्य तत्त्वों की आवश्यकता होती है, जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बेट आदि। प्रोटीन आवश्यक है किन्तु आज का भोजन प्रोटीनमय बन गया। इसीलिए अनेक बीमारियां पनपने लगीं। घुटने का दर्द भी अधिक प्रोटीन के सेवन से होता है। अधिक प्रोटीन की लालसा ने व्यक्ति को मांसाहार की ओर प्रेरित किया है। आज विद्यालयों में बच्चे को प्रारम्भ से ही सिखाया जाता है कि अण्डों में प्रोटीन अधिक रहता है। उससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

भावनात्मक असंतुलन का मुख्य घटक : आहार

आज आहार के विषय में नई-नई खोजें सामने आ रही हैं। उनसे भ्रान्तियां टूटी हैं और टूटती जा रही हैं। आज माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना हानिकारक है। अण्डे का और मांस का सेवन करना बीमारी को निमंत्रण देना है। यह भोजन बीमारियां ही नहीं बढ़ाता, भावात्मक स्थिति को भी बिगाड़ देता है। भावात्मक स्थितियों की गड़बड़ी में दो मुख्य तत्त्व हैं—मांसाहार और मादक वस्तुओं का सेवन। आज की एक बीमारी है—मज्जाक्षय। इससे हड्डियां इतनी जल्दी टूट जाती हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पैर फिसला, गिरा और हड्डी टूटी। इसका मूल कारण है मज्जाक्षय। हड्डी का सार तत्त्व है—मज्जा। यह कमजोर होती जा रही है। मज्जाक्षय के दो बड़े कारण हैं—भावात्मक असंतुलन और अतिश्रम। अति कामुकता और अति क्रोध भी मज्जाक्षय के कारण हैं। क्रोध के आवेश में मांसपेशियों का संकुचन और फैलाव होता है। इससे मज्जा का क्षय होता है।

वर्तमान व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है, उसका आहार भी एक मुख्य घटक है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं।

अन्न और मन का संबंध

आहार के तीन प्रकार हैं—राजसिक आहार, तामसिक आहार और सात्विक आहार। जीवन का भोजन के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए कहा गया—जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। अन्न और मन का सम्बन्ध गहरा है। दूसरे शब्दों में, अन्न और भावों का गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजन सम्बन्धी अनेक वर्जनाएं की गईं। तामसिक भोजन नहीं करना चाहिए, मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए, प्याज-लहसुन आदि का वर्जन करना चाहिए। मांस और मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिए, आदि-आदि। योद्धाओं और हिंसकों के लिए मांस-मदिरा की छूट थी, क्योंकि क्रूर हुए बिना दूसरों का कत्लेआम नहीं किया जा सकता। योद्धा को क्रूर होना होता है तभी वह अपने शत्रुओं को घास की भांति काट सकता है। उनके लिए तामसिक आहार की उपयोगिता बताई। सात्विक आहार करने वाले के मन में करुणा जाग जाती है। वह दूसरे को मार नहीं सकता।

मांस-मदिरा का प्रयोग सीमित दायरे में था, पर आज यह समाज-व्यापी बन गया। सभी क्षत्रिय और योद्धा बन गए। यह सभी में चल पड़ा, इसलिए बहुत हानि हुई है।

अहिंसा का महत्त्वपूर्ण सूत्र

अहिंसा के प्रश्न पर यह विचार केवल धर्म की दृष्टि से नहीं, किन्तु शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कर रहे हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण यह है कि किस प्रकार के भोजन से शरीर में क्या-क्या रसायन बनते हैं, एसिड बनते हैं? कौन-कौन से विष किस-किस प्रकार की वृत्ति पैदा करते हैं? आदमी थोड़ा-सा श्रम करता और थक जाता है। यह थकान श्रम करने से नहीं आती, परन्तु शरीर में संचित जहरीले द्रव्यों के कारण आती है। जब यूरिक एसिड का जमाव अधिक होता है, आदमी थोड़े से श्रम में भी थककर चूर हो जाता है। शरीर की रक्त-प्रणलियों में एसिड जम जाता है और वह रक्त के संचार में अवरोध पैदा करता है। इन विष-द्रव्यों को शरीर में जमा न होने देना—यह है अहिंसा और आहार का एक महत्वपूर्ण सूत्र।

हिंसा पर अंकुश का मार्ग

शरीर में विष-द्रव्य बनेंगे, उन्हें रोका नहीं जा सकता। शरीर है तो भोजन करना ही होगा। भोजन में दोनों प्रकार के द्रव्य होते हैं—अम्लांत और क्षारांत। एक अम्ल होता है और एक क्षार होता है। आज अम्लांत भोजन अधिक है और क्षारान्त कम। अम्लता से विष-द्रव्य बढ़ते हैं। उन्हें रोका नहीं जा सकता किन्तु वे संचित न हो, यह सावधानी बरती जाए तो अहिंसा के लिए रास्ता साफ हो जाता है और हिंसा की प्रवृत्तियों पर अंकुश लग जाता है।

प्रश्न है—विष-द्रव्यों का निष्कासन कैसे किया जाए? इस प्रश्न के उत्तर में, सबसे पहले यह सावधानी बरतनी होगी कि विष-द्रव्य कैसे कम हों, अधिक मात्रा में न बढ़ें। दूसरी बात यह हो कि जो विष-द्रव्य जमा हो जाते हैं, उनको कैसे निकालें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार का एक पहलू—अनाहार

इस संदर्भ में आहार के दूसरे पहलू पर विचार करना होगा। वह पहलू है—अनाहार, उपवास। उपवास आहार का ही एक पहलू है। खाना और न खाना—दोनों जुड़े हुए हैं। विष-द्रव्यों के निष्कासन का सबसे अच्छा उपाय है—उपवास। यह धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है और भावात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ये विष-द्रव्य भावनाओं को विकृत करते हैं।

भगवान महावीर ने कहा—

'रसापगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥'

रसों का—दूध, दही, नवनीत, चीनी आदि का—अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। ये रस विकार पैदा करते हैं, आदमी को दृप्त बनाते हैं। जहां दृप्ति होती है वहां काम वासनाएं उभरने लगती हैं और वे व्यक्ति को पीड़ित करती हैं, जैसे स्वादु फल वाले पेड़ को पक्षी पीड़ित करते हैं।

आहार और स्वास्थ्य

अधिक रसों का सेवन नहीं करना चाहिए। जब रस-त्याग की बात से मांसाहार के त्याग की बात स्वतः प्राप्त हो जाती है। मनुष्य को इस तथ्य के प्रति अधिक सावधान रहना चाहिए कि किस प्रकार के भोजन से भावात्मक स्वास्थ्य कैसा होता है। आज का आदमी केवल यह देखता है, सोचता है कि किस प्रकार के भोजन से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। यह भ्रान्ति है। यह एक पहलू हो सकता है पर यही नहीं हो सकता। भोजन के तीन परिणाम होने चाहिए—शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावात्मक स्वास्थ्य। भोजन का चुनाव करते समय हमारा विमर्श होना चाहिए कि यह भोजन भावात्मक स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला है या घटाने वाला? दूसरा विमर्श यह हो कि यह भोजन मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है या हानिकारक? तीसरा विमर्श यह हो कि यह भोजन शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपकारक है या हानिकारक? यदि केवल शारीरिक स्वास्थ्य के पहलू को ही ध्यान में रखकर भोजन का चुनाव किया जाता है तो बात बनती नहीं। यदि भावनात्मक स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो शारीरिक स्वास्थ्य से क्या होगा?

भोजन के विमर्श का पहला बिन्दु है—भावनात्मक स्वास्थ्य। भावनात्मक स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध है अहिंसा से। जिसका भावनात्मक स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा, वह उतना ही अच्छा अहिंसक होगा। जो भावात्मक दृष्टि से बीमार होगा वह हिंसक होगा, अपराधी होगा, हत्यारा होगा। ये अपराध और हत्याएं भावनात्मक अस्वास्थ्य के कारण होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन की दयनीय स्थिति

आज चिंतन के क्षेत्र में एक दयनीय स्थिति बनी हुई है। आज सब कुछ शरीर की दृष्टि से सोचा जाता है। उसके बाद नंबर आता है मन का। मन के विषय में बहुत कम सोचा जाता हैं, किन्तु भावनात्मक दृष्टि से सोचना तो नहीं के बराबर है।

आज के विचार का मुख्य पहलू है—शरीर, फिर मन और फिर भावना। इसे बदलना जरूरी है। विचार का मुख्य पहलू होना चाहिए भावना, फिर मन और फिर शरीर। जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला तत्त्व है भावना। जैसा भाव वैसा मन और जैसा मन वैसा शरीर। अनेक विकार भाव के कारण उत्पन्न होते हैं। अनेक बीमारियां भाव के कारण होती हैं। भाव मन को प्रभावित करता है, मन बीमार हो जाता है। जब मन बीमार हो जाता है, शरीर बीमार बन जाता है।

आहार का परामीटर क्या है।

तीन शब्द हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। व्याधि है—शरीर की व्यथा, आधि है—मानसिक व्यथा और उपाधि है—भावनात्मक व्यथा। प्रश्न है—पहले किस पर चोट करें? सामान्यतः शरीर पर चोट करने की ही बात सामने आती है। किन्तु गहरे में उतर कर विचार करेंगे तो प्रतीत होगा कि सबसे पहले चोट करनी चाहिए उपाधि पर, भावनात्मक व्यथा पर। काम, क्रोध, अहं, ईर्ष्या, माया, लोभ—ये सब भावनात्मक दोष हैं। सबसे पहले इन पर चोट होनी चाहिए। इन पर चोट किए बिना भावनाओं को स्वस्थ नहीं रखा जा सकता। भावनाओं के स्वास्थ्य के साथ भोजन का प्रश्न जुड़ा हुआ है। भोजन कैसा हो, यह विवेक होना चाहिए।

आज के आहार का पेरामीटर है—स्वादिष्ट, दिखने में सुन्दर, चटपटा आदि। इसके आगे कोई सोचता ही नहीं। न भोजन का संयोजन करने वाला सोचता है, न भोजन करने वाला सोचता है और न खाने वाला सोचता है।

ध्यान साधक के लिए भोजन का विवेक बहुत आवश्यक है। प्रेक्षा-ध्यान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है जीवन शैली को बदलना। जीवन शैली को बदलने का महत्त्वपूर्ण पहलू है आहार को बदलना। आहार में परिवर्तन आना चाहिए। यह परिवर्तन भावनात्मक परिवर्तन का हेतु बनता है। भावनात्मक स्वास्थ्य अच्छा होगा तो हिंसा की वृत्तियां अपने आप क्षीण होंगी, अहिंसा का विकास होगा।

आहार और हिंसा, आहार और अहिंसा—इस पहलू पर और अधिक गंभीरता से विमर्श होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अहिंसा और आसन

हिंसा और अहिंसा का सम्बन्ध अनेक घटकों से है। हिंसा की वृत्ति बढ़ने में अनेक तत्त्व काम करते हैं। अहिंसा के विकास में भी अनेक तत्त्व काम करते हैं।

हिंसा और अहिंसा का सम्बन्ध या इस भाषा में कहें कि हिंसा और अहिंसा की अभिव्यक्ति का सम्बन्ध हमारी मुद्राओं से भी है। हम किस प्रकार बैठते हैं, किस प्रकार खड़े होते हैं और किस प्रकार सोते हैं, इनके साथ भी उसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

आसन : एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम

योगासन एक बहुत पुरानी विधा है। हठयोग में आसनों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा में भी उनका बड़ा महत्त्व रहा है। बौद्ध ध्यानपद्धति विपश्यना ने आसनों को स्वीकार नहीं किया किन्तु जैन परम्परा और हठयोग की परम्परा में आसनों को बहुत मूल्य दिया गया। आसन केवल स्वास्थ्य के लिए ही नहीं किए जाते, केवल मांसपेशियों को स्वस्थ बनाने के लिए ही नहीं किये जाते। उनका और ज्यादा प्रभाव है। उनसे मांसपेशियां सक्रिय और स्वस्थ बनती हैं, रक्त का अभिसरण सम्यक् प्रकार से होता है, शारीरिक क्रियाएं स्वस्थ बन जाती हैं। इतना ही नहीं, उनके द्वारा नाड़ीतंत्र और ग्रन्थि-तन्त्र भी प्रभावित होता है। उनके द्वारा भावनाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है।

आवश्यक है श्रम

युग की समीक्षा करें तो एक नई स्थिति सामने आती है, जो इस युग की विशिष्ट देन है। प्राचीनकाल में मांसपेशियों पर दबाव ज्यादा पड़ता था और नाड़ी-तन्त्र पर दबाव कम पड़ता था। आदमी अपने हाथ से काम करता, श्रम करता। जब श्रम होता है तो मांसपेशियों पर अधिक दबाव पड़ता है किन्तु नाड़ी-तन्त्र को विश्राम ज्यादा मिलता है। आज उलटा हो गया। इतने साधन और सुविधाएं हो गई, जिनसे मांसपेशियों को तो बहुत आराम मिल रहा है, किन्तु नाड़ी-तन्त्र पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। यह एक भिन्न प्रकृति बन गई। पैदल चलने की जरूरत नहीं, वाहन तैयार है। पंखा झलने की जरूरत नहीं, बिजली का पंखा तैयार है। न हाथ की मांसपेशियों को श्रम देने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरत है और न पैर की मांसपेशियों को श्रम देने की जरूरत है। इतने सुविधा के साधन बन गए कि मांसपेशियां अच्छी तरह से आराम करें। व्यावसायिक, औद्योगिक तथा दूसरे-दूसरे चिंतन के प्रकारों से तनाव, भय आदि इतने ज्यादा व्याप्त हैं कि नाड़ी-तंत्र पर सीमा के अतिरिक्त दबाव पड़ रहा है। यह एक उलटी समस्या हो गई और २१वीं शताब्दी की जो कल्पना की जा रही है, उसमें यह समस्या और अधिक भयंकर बन जाएगी। कम्प्यूटर का युग आएगा, रोबोट का युग आएगा तो मांसपेशियों को बिलकुल तनाव देने की जरूरत नहीं रहेगी। यह यन्त्र-मानव घर का सारा काम कर देगा। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। न पंखे के लिए बटन दबाने की जरूरत, न बिजली जलाने की जरूरत। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। कैसा अच्छा युग है! कितनी सुविधा का युग है कि कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। यह स्वर्गीय कल्पना जैसी बात लगती है। कितना आराम होगा आदमी को। इस कल्पना के आधार पर आदमी का भविष्य कितना जटिल होगा, यह नहीं सोचा। यदि ऐसा होगा तो मांसपेशियां बिलकुल निकम्मी हो जाएंगी। एक ओर मांसपेशियों का निकम्मापन होगा तो दूसरी ओर चिंतन, विचार और नाड़ी-तन्त्र पर अत्यधिक दबाव बढ़ जाएगा। पहला दबाव निठल्लेपन का होगा। आदमी फिर करेगा क्या?

कल्पना इक्कीसवीं शताब्दी की

हम लोग आगम संपादन के काम में बहुत वर्षों से लगे हुए हैं। लगभग ३२ वर्ष हो गए प्राचीन ग्रन्थों का संपादन करते-करते। काम करते-करते, चिंतन करते-करते मानसिक थकान जैसी आ जाती है। दो घंटा, चार घण्टा काम में उलझ जाते, नहीं सुलझते तो थकान जैसी आ जाती। तत्काल एक प्रयोग करते। जैसे ही थकान आती, १०-२० मिनट के लिए कोई शारीरिक श्रम करते। थकान बिलकुल शांत। शारीरिक श्रम स्वस्थ जीवन के लिए बहुत आवश्यक होता है। आज के युग की यह बहुत बड़ी विशेषता है। उसमें शरीरिक श्रम की कमी है और मानसिक श्रम की बहुलता है, मानसिक तनाव की बहुलता है।

मैं मानता हूं—२१ वीं शताब्दी की जो कल्पना की जा रही है, शायद वह मनुष्य के लिए वरदान नहीं होगी। अगर वैसा हुआ तो आदमी भी एक यंत्र का पुर्जा बन जाएगा। इससे ज्यादा उसका मूल्य नहीं होगा।

इस सारी स्थिति और प्रकृति को बदलने के लिए, संतुलन बनाने के लिए, शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम—दोनों में संतुलन बना रहे। यह आवश्यक है मस्तिष्क को सक्रिय रखने के लिए मानसिक श्रम बहुत आवश्यक है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मांसपेशीय-श्रम बहुत आवश्यक है। दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का संतुलन बना रहे। उस संतुलन की दृष्टि से योगासनों का बहुत मूल्य है। योगासन संतुलन बनाते हैं। वे मांसपेशियों को भी स्वस्थ बनाते हैं और साथ-साथ मस्तिष्क को भी स्वस्थ बनाते हैं। दोनों में संतुलन रहता है।

आसन और अहिंसा

हमें हिंसा और अहिंसा की चर्चा करनी है। हिंसा और अहिंसा का आसनों क्या संबंध है? इस संबंध को खोजना है। हमारे शरीर में बहुत प्रकार के एसिड बनते हैं। उनकी मात्रा बढ़ती है तो संतुलन बिगड़ता है और आदमी की मनोवृत्ति बदल जाती है। वह क्रोधी, अपराधी और क्रूर हत्यारा तक बन सकता है।

योगासन के द्वारा एसिड में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि संतुलन स्थापित करने में ये बहुत उपयोगी हैं। जब हमारे रक्त में, मस्तिष्क में, मूत्र में एनिमो एसिड की मात्रा बढ़ जाती है तो आदमी हिंसक बन जाता है, क्रूर बन जाता है और हत्यारा बन जाता है। इनकी मात्रा में एक संतुलन स्थापित करना योगासन के द्वारा संभव है। आसनों के द्वारा वैसा किया जा सकता है और वह संतुलन होता है तो आदमी संतुलित हो जाता है। हिंसा की मनोवृत्ति पैदा करने में इन एसिडों का बहुत बड़ा हाथ है। कुछ रसायन और ये एसिड आदमी को उग्र बना देते हैं, व्यक्ति की मनोवृत्ति बदल जाती है, आदमी क्रूर और हत्यारा बन जाता है।

हम अहिंसा की दृष्टि से विचार करें और यह सोचें कि किस प्रकार व्यक्ति को अहिंसक बनाया जा सकता है?

पहले निदान हो

एक बीमार आदमी की जांच की जाती है, निदान किया जाता है कि बीमारी क्या है? उस निदान के लिए अनेक यंत्र हैं। वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए हमें निदान करने की जरूरत है। क्या-क्या कारण हैं, कौन-कौन से हेतु हैं और कौन-कौन से तत्त्व अधिक सक्रिय हो गए हैं, जिसके कारण यह बच्चा या यह युवक क्रूर बन गया, उग्र बन गया, अपराधी बन गया, हत्यारा बन गया। इन सारे कारणों की खोज जरूरी है। यदि निदान ठीक हो गया तो उपचार ठीक किया जा सकेगा। बीमारी कुछ होती है निदान कुछ होता है और इलाज कुछ हो तो कुछ बनता नहीं है। सही बीमारी और सही निदान हो तो ही काम चल सकता है।

एक व्यक्ति वैद्य के पास पहुंचा और बोला—आंख में दर्द है। वैद्य ने दवा दे दी। उसने फिर पूछा, वैद्यजी! आंख में लगेगी तो नहीं? वैद्य ने कहा—एक बार तो जलन होगी, फिर ठंडी हो जाएगी। वह घर पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया और दवा को पीठ पर मिलने लगा। अचानक वैद्य वहां पहुंच गया। उसने देखा और कहा, अरे! दवा तो आंख की दी थी, तुम पीठ पर मल रहे हो? उसने कहा—आपने ही कहा था कि आंख में लगेगी। अतः पीठ पर मल लेता हूं, यहां जलन नहीं होगी। आंख हो या पीठ—दोनों शरीर के ही तो अंग हैं।

यह विपर्यय, यह झूठा भ्रम बहुत चलता है। मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य के बारे में भी ऐसी बहुत भ्रान्तियां चल रही हैं। ठीक निदान नहीं हो रहा है। ठीक निदान हो और ठीक कारणों का पता लग सकें तो कोई कारण नहीं कि हिंसा बढ़े, अपराध बढ़ें और हत्याएं बढ़ें। सही निदान नहीं हो रहा है और सही उपचार नहीं हो रहा है। मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, भावनात्मक स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, अपराध और हत्याएं बढ़ती जा रही हैं। निदान और उपचार करने की जरूरत है। उस उपचार में योगासनों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सबसे ज्यादा मूल्य है भाव का

हमारे शरीर में कुछ ऐसे सूक्ष्म रसायन हैं, जो हमारे विचारों और भावों को प्रभावित करते हैं। उनमें पिच्यूटरी, पिनियल, थाइरायड और एड्रीनल—इन चार ग्रन्थियों के स्राव बहुत प्रभावित करते हैं। इनका स्राव बहुत थोड़ा-सा होता है। इतना थोड़ा कि जिसका कोई पता ही नहीं चलता। किन्तु ये स्राव हमारे विचारों, भावों को बहुत प्रभावित करते हैं। ये शरीर को तो प्रभावित करते ही हैं, किन्तु भाव तंत्र को भी प्रभावित करते हैं। इनमें असंतुलन होता है तो सारी मानसिक और भावनात्मक व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। इन पर नियंत्रण करने के लिए योगासनों का बहुत ज्यादा मूल्य है। बहुत लोग केवल पाचन-तंत्र, श्वसन-तंत्र आदि-आदि को ठीक करने के लिए योगासनों का प्रयोग करते हैं। वे चाहते हैं कि पाचन ठीक हो, श्वास की प्रणाली ठीक हो और रक्त-संचार ठीक होता रहे। इन दृष्टियों से योगासनों का प्रयोग करते हैं। यह कोई गलत बात नहीं है। हर आदमी शरीर को स्वस्थ रखना चाहता है। यह आवश्यक भी है, किन्तु हम भुला देते हैं इस बात को कि शरीर का जितना मूल्य है उससे ज्यादा मूल्य है मन का और उससे भी ज्यादा मूल्य है—भावों का। शरीर का संचालन भाव करते हैं। भाव का सबसे ज्यादा मूल्य है। मन का संचालन भी भाव करते हैं। हम भाव पर जब ध्यान नहीं देते हैं, भावात्मक स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते हैं तो शारीरिक स्वास्थ्य बहुत कमजोर बन जाता है।

प्रश्न है भावतंत्र को मजबूत बनाने का

एक आदमी बहुत हट्टा कट्टा है। किसी ने आकर एक संवाद दे दिया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हारा इकलौता बेटा दुर्घटना-ग्रस्त हो गया। उस समय क्या होता है ? शरीर तो बहुत मजबूत है, बहुत हृष्टपुष्ट है, पर उस संवाद से उसका सारा शरीर ढीला पड़ जाता है, पैर उठते नहीं, हाथ कांपने लग जाते हैं, दिमाग चकरा जाता है। सारा शरीर लड़खड़ा जाता है। शरीर इतना मजबूत था, क्या हुआ ? शरीर तो अब भी वैसा ही है, कोई फर्क नहीं आया। शायद आधा किलो वजन भी नहीं घटा है। उतना ही शरीर, किन्तु भाव-तंत्र थोड़ा-सा गड़बड़ाया और शरीर लड़खड़ा गया। शरीर का संचालक है भावतंत्र और दूसरे नंबर पर है भावतंत्र द्वारा संचालित मानसतंत्र। ये शरीर के संचालक हैं। लोग भी बड़े अजीब हैं कि जो मूल संचालक है उस ओर ध्यान कम देते हैं और जो सीधा दिखता है उस ओर ध्यान ज्यादा जाता है। पहले आता है उसकी ओर हमारा ध्यान ज्यादा जाता है और जो पीछे आता है उसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। यह बड़ी अजीब दुनिया है और अजीबोगरीब है हमारी मनोवृत्ति। इस मनोवृत्ति को बदलना भी बहुत जरूरी है। भावतंत्र शक्तिशाली बना रहे। भावतंत्र शक्तिशाली होता है तो आदमी के सारे कार्य ठीक हो जाते हैं। भावतंत्र को कैसे मजबूत बनाएं ? कैसे शक्तिशाली बनाएं ? यह प्रश्न है।

बात कल्पना से परे की

एक बड़ी मार्मिक घटना है, कल्पना से बाहर की बात है। एक बड़ा व्यापारी था। उसका इकलौता बेटा पढ़ने जा रहा था। तेज रफ्तार से कार आई, बच्चे को कुचल कर निकल गई। कोर्ट में केश चला। पिता का नंबर आया गवाही के लिए। पिता बहुत संतुलित आदमी था। उसने चिंतन किया, मेरा लड़का तो चला गया, वह तो वापस आने का नहीं। ड्राईवर को कड़ी सजा होगी, इसका परिवार आधारहीन हो जाएगा। मुझे जितना कष्ट हुआ है, इसके परिवार को भी उतना ही कष्ट होगा। एक संवेदनशीलता का धागा जुड़ा। उसने संवेदना के स्तर पर चिंतन किया और सोचा कि हुआ सो हो गया। मुझे इसको बचा लेना है। न्यायाधीश ने पूछा, बताओ कैसे हुई दुर्घटना ? व्यापारी ने कहा, दुर्घटना हुई है। इसमें ड्राईवर का कोई दोष नहीं है। यह कार बिलकुल ठीक चला रहा था। लड़के की ही गलती थी। वह दौड़ कर कार के सामने आ गया और मर गया। बात समाप्त। ड्राईवर बिलकुल बच गया।

क्या ऐसा होना संभव है ? क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि बाप का इकलौता बेटा ड्राईवर की गलती से कुचल गया और बाप ही यह साक्षी देता है कि ड्राईवर की कोई गलती नहीं थी। यह संभव नहीं है। संतुलित व्यक्ति ही केवल ऐसा कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युद्ध पहले मस्तिष्क में

यह संतुलन अंतःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव-संतुलन से पैदा हो सकता है। उन पर हमारा नियंत्रण हो। उन्हें नियंत्रित करने में योगासनों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। एड्रीनल ग्लेण्ड उत्तेजना के लिए काफी काम करती है। उस पर नियंत्रण हो तो काफी संतुलन हो जाता है। शशांकासन एक आसन है। इसका प्रयोग करने से एड्रीनल पर नियंत्रण पाया जा सकता है। वह नियंत्रण को काफी संतुलित बना देता है। यदि प्रतिदिन इस आसन का प्रयोग किया जाए तो बहुत सारी वृत्तियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। जितने निषेधात्मक भाव और जितनी मूर्च्छा की प्रकृतियां हैं उनको प्रगट करने का काम एड्रीनल ग्लेण्ड के आसपास होता है। वह उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है। अगर उस पर हमारा नियंत्रण होता है तो व्यक्ति बहुत शांत और संतुलित बन जाएगा, उतावलापन नहीं होगा, कोई अधीरता नहीं होगी, जल्दीबाजी में काम नहीं होगा। आज के युग की विशेषता है उतावलापन, अधीरता और जल्दबाजी। उस जल्दबाजी के कारण आदमी कभी क्रोध में चला जाता है, कभी अहंकार में चला जाता है और कभी-कभी दूसरी निषेधात्मक प्रवृत्तियों में चला जाता है। यदि हमारा एड्रीनल ग्लेण्ड पर नियंत्रण होता है तो हिंसात्मक दृष्टियां कम होती हैं, हिंसात्मक उत्तेजनाएं कम हो जाती हैं। क्या हिंसा घटना के आधार पर होती है? कुछ लोग कहते हैं कि इतनी छोटी-सी बात थी और इतना बतंगड बन गया, पहाड़ बन गया। यह तो स्वभाव है हिंसा का।

सारे संसार के इतिहास में जितने भी कि बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं, वे कोई बड़ी बात को लेकर नहीं हुए। छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर महायुद्ध और विश्वयुद्ध हुए हैं। दो विश्व-युद्ध हो गए। इनके पीछे कौन-सी बड़ी घटना थी? प्राचीनकाल में हजारों-हजारों वर्षों में, अनेक बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं। कोई बड़ी बात नहीं, छोटी बात के आधार पर बड़ी लड़ाइयां लड़ी गई। बड़ी बात इतनी साफ होती है कि उसके लिए लड़ने की कोई जरूरत ही नहीं होती। बड़ी बात की लड़ाई तुरन्त समाप्त हो जाती है। पर कोमा की लड़ाई, अर्द्ध-विराम की लड़ाई बड़ी खतरनाक होती है। उसमें बड़ा विवाद होता है कि कोमा वहां लगनी चाहिए या यहां? कहां लगनी चाहिए इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। विराम-फूलस्टोप देने में कोई कठिनाई नहीं है, बात समाप्त हुई और वहां विराम हो गया। छोटी बात पर बड़ा विवाद हो जाता है। लड़ाई के लिए घटना की जरूरत नहीं। लड़ाई पैदा होती है मस्तिष्क में और लड़ाई का अंत होता है मस्तिष्क में। संयुक्त संघ राष्ट्र की एक रिपोर्ट में यह वाक्य उद्धृत किया गया कि युद्ध पहले मस्तिष्क में होता है। फर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समरभूमि में लड़ा जाता है। यह बिलकुल सही बात है।

अहिंसा : शारीरिक दृष्टि

इस बात पर शारीरिक दृष्टि से विचार करें। मस्तिष्क का एक हिस्सा है भावनात्मक तंत्र, जिसे हाईपोथेलेमस कहा जाता है, जो लिंबिक ब्रेन का एक पार्ट है। इसमें दूसरा एड्रीनल ग्लेण्ड और तीसरा पिच्यूटरी या पिनियल। इनका साझा है। इन सब का योग मिलता है तो हिंसा, लड़ाई, युद्ध— ये सब भड़क उठते हैं। इस साझा को तोड़ दिया जाए। इनमें से किसी एक पर कन्ट्रोल कर लिया जाए तो साझा टूट जाएगा और हिंसा की बात गौण बन जाएगी।

सम्राट् अशोक ने कलिंग में लाखों व्यक्तियों की हत्या की थी। उसने बड़े युद्ध लड़े। हजारों सैनिक मारे गए। बाद में वह बदल गया और इतना बदला कि अशोक एक अहिंसा का दूत बन गया। शांति का संदेश-वाहक बन गया। उसने शांति का संदेश मात्र हिन्दुस्तान में ही नहीं, बाहर भी अनेक देशों में पहुंचाया। यह वही अशोक था जो एक दिन महान् लड़ाकू योद्धा और नर-संहार करने वाला था और वही अशोक शांतिप्रिय और धर्म का वाहक बन गया। यह कैसे हुआ परिवर्तन ? उस समय उसका नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र दूसरी ओर काम कर रहा था, हिंसा की ओर उन्मुख था। जब उस पर नियंत्रण हुआ तो आमूलचूल बदल गया, शांतिप्रिय हो गया। अहिंसा का पुजारी बन गया।

विष निष्कासन का साधन : आसन

बदलने के अनेक कारण हैं। हिंसक से अहिंसक होने के अनेक कारण हैं। उन कारणों में योगासन भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इनके अभ्यास के द्वारा उस तंत्र को बदला जा सकता है जो हिंसा का तंत्र है। उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

योगासनों का यह कार्य है और इनके द्वारा यह हो सकता है। थाइरायडपर नियंत्रण करना है तो सर्वांगासन का प्रयोग लाभप्रद है। सर्वांगासन के द्वारा इसे संतुलित बनाया जा सकता है।

ये आसन हमारे नाड़ीतंत्र को, ग्रन्थितंत्र को और एमिनो एसिड को भी संतुलित बनाते हैं। आसन शरीर में एकत्रित होने वाले बहुत सारे विजातीय तत्त्वों को भी बाहर करते हैं। शरीर में जो विष जमा होते हैं, उन्हें निकालने का एक उपाय है उपवास तो दूसरा उपाय है योगासन।

अहिंसा का सम्बन्ध है आसन से

अहिंसा की दृष्टि से इन योगासनों का बहुत बड़ा मूल्य है। हिंसा का संबंध है हमारे नाड़ीतंत्र से, हिंसा का संबंध है हमारे ग्रन्थितंत्र से और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा का संबंध है अम्लों से। इन सबसे संबंध है। हिंसा पर नियंत्रण करने में आसनों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन्हें पहचानना है। इन्हें जानना है। बहुत बार पहचानने में गलती हो जाती है, आदमी जानबूझकर पहचानने में गलती कर देता है।

छोटी सी घटना है। एक युवती खड़ी थी बस स्टेण्ड पर। वहां एक आदमी आया और बोला, बहिनजी, ! मैंने आपको कहीं देखा तो है ? वह उसकी बात को ताड़ गई। वह समझ गई कि ऐसा कहने के पीछे इसकी कौन-सी भावना काम कर रही है। उसने कहा, आप ठीक कह रहे हैं। मैं पागलखाने में नर्स हूं। वह युवक बेचारा सकपका गया।

पहचानने में बड़ी भूल हो जाती है। आदमी पहचान नहीं कर सकता। अपने भावावेश के कारण मिथ्या और गलत पहचान कर लेता है। हमें उन भ्रान्तियों से बचना है। गलत पहचान से बचना है और यथार्थ को समझना है। यथार्थ की दृष्टि से चिंतन करें तो योगासनों का ठीक मूल्यांकन होगा। प्रेक्षा-ध्यान के साथ योगासन अनिवार्यतया जुड़े हुए हैं और हम इन्हें अनेक दृष्टियों से आवश्यक मानते हैं। कोई व्यक्ति ध्यान करता है। ध्यान का पाचनतंत्र पर असर आता है। पाचनतंत्र थोड़ा कमजोर बनता है। यदि योगासन न करें तो पाचनतंत्र और अधिक बिगड़ जाता है। ध्यान के साथ योगासन करना अत्यन्त आवश्यक है। उससे पाचन-तंत्र बिलकुल स्वस्थ बना रहता है।

शारीरिक दृष्टि से, मानसिक दृष्टि से और भावनात्मक दृष्टि से आसनों का अपना महत्त्व है। इसीलिए प्रेक्षा-ध्यान का वह एक अनिवार्य अंग बना हुआ है। इन योगासनों के द्वारा किस प्रकार वृत्ति को और भावनाओं को बदला जा सकता है, यह एक गंभीर अध्ययन का विषय है। उतनी सूक्ष्मता में जाएं या न जाएं, मोटी-मोटी बात समझ में आ जाए तो वृत्ति-परिवर्तन की दिशा में, अहिंसा के विकास की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण

ध्यान किस ओर

कुछ वर्षों पहले हम राजस्थान पुलिस एकेडमी के परिसर में तीन सप्ताह से अधिक समय तक रहे थे। एक शिविर था सामान्य और दूसरा शिविर था पुलिस के जवानों और अधिकारियों के बीच। हमने देखा—सूर्योदय होते-होते सैकड़ों-सैकड़ों पुलिस के जवान और ट्रेनिंग देने वाले अधिकारी खड़े हो जाते मैदान में और उनका घंटों प्रशिक्षण चलता। कुछ सशस्त्र पुलिस वाले और कुछ शस्त्र के बिना अभ्यास करने वाले। यह रोज का रिहर्सल, प्रतिदिन का पूर्वाभ्यास उनका निर्माण कर रहा था कि वे हिंसा से निपट सकें, हिंसक साधनों के द्वारा हिंसा को दबा सकें और हिंसा से हिंसा को निर्मूल कर सकें। हमने देखा है। सैनिक छावनियों में सैकड़ों सैनिकों की पंक्ति लगती है और उन्हें घंटों तक अभ्यास कराया जाता है। सारी पद्धति सिखाई जाती है। हिंसा के लिए कितना प्रयत्न हो रहा है! मनुष्य के मस्तिष्क को प्रशिक्षित किया जा रहा है कि कैसे शस्त्र का प्रयोग किया जाए? कैसे मारा जाए? कैसे हिंसा से हिंसा का सामना किया जाए? कैसे आक्रमण किया जाए? कैसे प्रत्याक्रमण किया जाए? इतनी सूक्ष्म जानकारी और इतनी ट्रेनिंग है कि वर्षों तक चलती रहती है और उसकी पुनरावृत्तियां कई वर्षों तक होती रहती हैं। कभी उसे पुराना नहीं होने दिया जाता, बासी नहीं होने दिया जाता। इतना नया-नया विकास हो रहा है! नए प्रक्षेपास्त्र आ गए। नए टैंक, नए आग्नेयअस्त्र, नए वाहन आ गए। यदि एक वर्ष पिछड़ जाए, पुराना पड़ जाए, बासी हो जाए, तो वह किसी काम का नहीं रहता। उसे तात्कालिक रहना पड़ता है। आज की नवीनतम तकनीक का ज्ञाता होकर रहना पड़ता है।

एक विरोधाभास

हमने सुना है—कुछ पश्चिमी देशों में आतंकवाद का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। मन में एक विकल्प उठता है कि हिंसा के लिए व्यक्ति को इतना ट्रेंड किया जा रहा है, प्रशिक्षित किया जा रहा है तो क्या अहिंसा के लिए ट्रेनिंग की कोई आवश्यकता ही नहीं है? ऐसा लगता है नहीं है। अहिंसा को हमने बिलकुल परित्यक्ता बना दिया है।

हम बात करते हैं अहिंसा की और समाज में सारी तैयारी है हिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की। मेल कहां होगा ? जिसके लिए कोई तैयारी नहीं, उसके लिए तो बहुत चर्चा करते हैं, आवश्यकता बतलाते हैं। आज समाज को अहिंसा की बहुत जरूरत है पर सारा प्रयत्न हमारा हिंसा के लिए हो रहा है। हिंसा के लिए शस्त्रों का निर्माण, हिंसा के लिए ट्रेनिंग, हिंसा का प्रशिक्षण। हमारी चाह तो एक दिशा में और प्रयत्न बिलकुल विपरीत दिशा में। क्या यह एक विरोधाभास नहीं है ? जीवन की विसंगति नहीं है ? ऐसी विसंगति पर हंसी भी आती है और मन में खेद भी होता है। यदि समाज में उत्पीड़न नहीं होता तो अहिंसा की बात किसी को सूझती भी नहीं। जब जापान में अणुअस्त्रों का प्रयोग हुआ तो सारा संसार हिंसा के महाप्रलय से भयभीत और आतंकित हो गया। अहिंसा की तरफ उसका ध्यान आकर्षित हुआ। उस समय हिंसा में आस्था रखने वाले लोगों की आस्था भी हिल गई और एक ही प्रश्न सामने आया कि यदि यही क्रम चालू रहा तो एक दिन मनुष्य जाति का बिलकुल संहार हो जाएगा।

प्रश्नचिह्न अहिंसक के सामने

पौराणिक कहानियों में कहा जाता है कि शंकर प्रलय करते हैं। अणुबम तो महाशंकर बन गया, जिसने इतना बड़ा प्रलय कर डाला। जो अहिंसा में विश्वास रखने वाले थे, उन लोगों ने विश्वशांति का अभियान शुरू किया। शांति के लिए प्रयत्न, निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न, युद्धवर्जना के लिए प्रयत्न किए, किन्तु शस्त्रों का निर्माण और अधिक बढ़ गया। वैसे शस्त्रों का निर्माण, जो महाप्रलयंकारी हैं। केवल अणुअस्त्र ही नहीं, उससे भी भयंकर अस्त्रों का निर्माण शुरू हो गया। स्टारवार की कल्पना सामने आ गई, जो बहुत ज्यादा घातक है। नक्षत्रीययुद्ध, आकाशीय-युद्ध—इनकी भी कल्पना सामने आ गई। विकास होता गया अस्त्रों के निर्माण का। एक ओर अस्त्रों के निर्माण की चर्चा बहुत तेजी पर है तो दूसरी ओर अहिंसा की चर्चा भी बहुत तेजी पर है। एक हाथ में घोड़ा है और एक हाथ में गधा। आदमी का यह स्वभाव रहा है कि वह दोनों हाथों में घोड़ा नहीं रखना चाहता। वह एक हाथ में घोड़ा रखेगा तो एक हाथ में गधा रखेगा। गधा ऐसा बेवकूफ जानवर होता है, भोला होता है कि चाहे जो कुछ कर लो। घोड़ा तेज होता है। गधा रखना भी शायद जरूरी समझा हो। एक ओर भयंकर अस्त्रों का निर्माण और दूसरी ओर अहिंसा की चर्चा। ये दोनों हमारे इस विसंगति भरे समाज में और विरोधाभासी जीवन में एक साथ चल रहे हैं। लोग कह रहे हैं कि दो विरोधी बातें एक साथ नहीं हो सकतीं, किन्तु ये दोनों बिल्कुल विरोधी बातें आज पूरे समाज में व्याप्त है। मात्र हिन्दुस्तान में ही नहीं, सारे संसार में दोनों बातें एक साथ चल रही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस स्थिति में जो लोग अहिंसा में आस्था रखते हैं, उनके सामने यह प्रश्नचिह्न है कि क्या वे अहिंसा की चर्चा ही करें? केवल बात ही करें? अहिंसा का कोरा उपदेश ही दें या इससे आगे अपना कदम बढ़ाएं? मुझे लगता है कि प्रयत्न गहरा नहीं हो रहा है।

आस्था मत बदलो

एक संन्यासी के सामने भक्त बैठा था। वह बड़ा विचित्र भक्त था। आज एक देवता को मानता, कल दूसरे को मानता और परसों तीसरे को मानता। रोज नए देवता को मानता। हमारे धार्मिक जगत् में देवताओं की भी कमी नहीं है और मानने वालों की भी कमी नहीं है। वह रोज बदलता रहता पर सफल कहीं नहीं हुआ। एक दिन उसने पूछा—संन्यासी जी! मैं इतनी भक्ति करता हूं और रोज देवताओं की मनौती मनाता हूं, पर सफलता कभी नहीं मिली। इसका कारण क्या है आप बतलाएं? संन्यासी ने उत्तर नहीं दिया। बातचीत हो रही थी। इतने में ही एक दूसरा भक्त आ गया और आकर बोला कि पहले मेरी सुनें। मुझे जल्दी खेत में जाना है। इनके कोई काम है नहीं। बड़े लोग हैं, पर मैं तो किसान हूं। पहले आप मेरी बात का उत्तर दें। संन्यासी ने कहा—क्या बात है? उसने कहा—मैंने दस दिन पहले खेत में एक कुआं खोदा, पानी नहीं निकला, उसके पास ही दूसरा खोदा तो भी पानी नहीं निकला, तीसरा खोदा तो भी पानी नहीं निकला। दस दिन हो गए। खोदता चला जा रहा हूं, पानी नहीं निकल रहा है? संन्यासी ने कहा—भले आदमी! इतने गड्ढे क्यों खोदे? एक ही खोदते और गहराते चले जाते तो पानी अपने आप निकलता। छोटे-छोटे चाहे १०० कुएं खोदो, पानी निकलेगा नहीं। गहरा खोदने पर एक कुआं भी पानी दे देगा और सौ छोटे-छोटे गढे खोदने पर पानी की एक बूंद भी प्राप्त नहीं होगी। उसने सुना। वह बोला—मैं जा रहा हूं, मेरा समाधान हो गया। उसका समाधान ही नहीं हुआ, पहले वाले का भी समाधान हो गया।

संस्कारगत है हिंसा

आस्था को बदलो मत। रोज नए तेवर मत लाओ। आस्था को इतना गहरा बनाओ, अपने आप कुएं में पानी निकल आए। मुझे लगता है—अहिंसा में हमारी आस्था तो है पर उस आस्था में गहराई नहीं है। कहीं कोई थोड़ी सी घटना होती है और हिंसा भड़क उठती है। वह सफल हो जाती है। अहिंसा में विश्वास रखने वाले भी कह देते हैं कि आखिर अहिंसा से हुआ क्या? हिंसा हुई, सामना हुआ, बदला लिया गया और बात समाप्त हो गई। हिंसा सफल हो गई। अहिंसा सफल नहीं होती। अहिंसा में कोई आस्था नहीं है। इसका कारण है—अधिकांश आदमी अहिंसा का मुखौटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहने हुए हैं, पर अहिंसा में आस्था रखने वाले कम हैं। आस्था जगाने वाला अहिंसा का प्रशिक्षण नहीं है। मैं यह मानता हूं—जब तक मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं होता, तब तक कोई भी आदमी किसी भी विषय में आस्थावान् बन नहीं सकता। आवश्यकता है प्रशिक्षण की। हिंसा से हमारा दिमाग बहुत प्रशिक्षित है। एक छोटे बच्चे का मस्तिष्क भी हिंसा से प्रशिक्षित है। एक बच्चा है आठ बरस का, सात बरस का, उसे कोई दूसरा गाली देगा तो वह तत्काल उसे गाली दे देगा। वह जानता है कि गाली का प्रतिकार है गाली। किसी ने ढेला फेंका तो वह पत्थर फेंकने का प्रयत्न करेगा। वह इस बात को जानता है, उसका मस्तिष्क इतना प्रशिक्षित है कि ढेले का जवाब ईंट या पत्थर से दिया जा सकता है। यह प्रशिक्षण आनुवंशिकता से प्राप्त है। हिंसा का ऐसा प्रशिक्षण मिल रहा है कि उसे सिखाने की जरूरत नहीं है।

वर्तमान दृष्टिकोण

हिंसा के लिए हमारा मस्तिष्क बहुत प्रशिक्षित है। इस आधार पर यह मान लिया गया कि हिंसा समस्या का समाधान है। अहिंसा समस्या का समाधान है इसमें हमारा विश्वास नहीं है। आज की भाषा है—सरकार जनता की बात तब तक नहीं सुनेगी, जब तक कि जनता हिंसा पर उतारू न हो जाए और जनता भी तब तक सरकार की बात नहीं सुनेगी जब तक कि पुलिस की गोली न चल जाए। एक हिंसा की बात समझती है और दूसरी गोली की बात समझती है। इतना गहरा विश्वास पैदा हो गया कि हिंसा के बिना कोई काम बन ही नहीं सकता। इस स्थिति में अहिंसा की बात करना, केवल उपदेश देना बहुत सार्थक नहीं लगता। अभी जो मैं चर्चा कर रहा हूं वह जीवन-यात्रा की हिंसा और अहिंसा की चर्चा नहीं कर रहा हूं। जीवन-यात्रा में खाने में हिंसा होती है। व्यापार में हिंसा होती है, खेती में होती है। उसकी चर्चा नहीं कर रहा हूं। उस हिंसा की चर्चा कर रहा हूं जो हिंसा समाज के लिए बहुत उपद्रवकारी और सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने वाली हिंसा है, जो समाज को आतंकित और भयभीत करने वाली हिंसा है। आज वह हिंसा काफी मात्रा में चल रही है। दो दिन पहले एक भाई ने कहा—अमेरिका या कुछ दूसरे देशों में यह स्थिति है कि व्यक्ति घर से बाहर गया और शाम को राजी खुशी घर आ गया तो वह सोचता है कि आज तो राजी खुशी घर आ गया हूं। न जाने कब-कहां चलते-चलते हत्या हो जाए। किन्तु आजकल हमारे यहां आस-पास यह स्थिति बन गई कि व्यक्ति बाहर जाता है और घर पहुंचता है तो सोचता है कि राजी खुशी आ गया। पता नहीं कब क्या हो जाए। रात को सोता है, पता नहीं जागेगा या नहीं। ये सारी हिंसक घटनाएं समाज को आतंकित और भयभीत कर देती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवार्य है अहिंसा का प्रशिक्षण

इस हिंसा से मुक्ति पाने के लिए अहिंसा का प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। क्या कभी सोचा गया कि जैसे सशस्त्र पुलिस और सेना की जमात खड़ी की जा रही है वैसे ही अहिंसक सैनिकों की जमात खड़ी करने की जरूरत है। जैसे प्रतिदिन हजारों-हजारों लोगों को शस्त्राभ्यास कराया जाता है, मारने की ट्रेनिंग दी जाती है, वैसे ही क्या न मारने की ट्रेनिंग देना आवश्यक नहीं है ? एक पक्ष पर तो इतना भार दे दिया गया और इतना बल दे दिया गया और दूसरे पक्ष को इग्नोर कर दिया, नकार दिया या अस्वीकार कर दिया। इस स्थिति में अगर हमारे समाज में हिंसा बढ़ती है, अपराध बढ़ते है, हत्याएं बढ़ती हैं, मारकाट होती है तो हमें आश्चर्य क्यों करना चाहिए ? हमने एक विकल्प को सर्वथा छोड़ दिया, निर्विकल्प बन गए। यह स्थिति बहुत खतरनाक होती है। मैं सोचता हूं, शायद एक नया विचार हो सकता है, नई कल्पना हो सकती है। पर यह बहुत आवश्यक लगता है कि हिंसा की भांति अहिंसा का प्रशिक्षण भी अत्यन्त अनिवार्य हो। अगर हिंसा के क्षेत्र में १०-२० लाख सैनिक काम करते हैं तो अहिंसा के क्षेत्र में १०-२० हजार सैनिक भी बनें तो एक नया चमत्कार हो सकता है, एक नई बात और नई घटना हो सकती है। किन्तु कोई प्रयत्न नहीं है। अहिंसक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए अहिंसा के प्रशिक्षण की बात बहुत आवश्यक है।

पुराने जमाने की बात है। महाराज छत्रशाल और उनकी परंपरा में एक राजा हुआ अनिलसेन। एक दिन सवारी जा रही थी। सजे हुए हाथी और सजे हुए घोड़े चल रहे थे। हाथी के पीछे एक सेवक चल रहा था। उसके मन में बुरा भाव आ गया। हाथी की झूल में मोती, पन्ने, माणक और रत्न जड़े हुए थे। हीरे भी थे। उस व्यक्ति ने एक हीरा उतारा और जेब में डाल लिया। राजा की दृष्टि अकस्मात् पड़ गई। राजा ने अपने अधिकारियों को बुलाया और कहा कि इसने चोरी की है, अपराध किया है। इसे सजा मिलनी चाहिए। पास में नदी है। इसे नदी में डुबाओ और फिर निकाल लो, फिर डुबाओ और फिर निकाल लो। जब तक मर न जाए, यही क्रम चलाओ। एक काम और करना। काफी समय के बाद इसकी अन्तिम इच्छा पूछ लेना। आदेश मिला और जो जल्लाद थे उसे मारने वाले, वे नदी पर ले गए और वैसा क्रम शुरू किया। फिर अन्तिम इच्छा के लिए पूछा। वह बोला, मेरी एक इच्छा है कि एक बार मैं महाराज के दर्शन कर लूं और मेरी कोई इच्छा नहीं है। सूचना भेजी गई। राजा ने कहा कि अंतिम इच्छा पूरी करो, उसे ले आओ। वह लाया गया। वह महाराज के सामने खड़ा है। राजा ने कहा—हो गई तुम्हारी अंतिम इच्छा पूरी। उसने कहा—महाराज ! आधी पूरी हुई है। एक बात कहना चाहता हूं—महाराज ! आप बड़े दयालू शासक हैं, यह मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुना है, जाना है और जानता हूं। आपने एक छोटी-सी बात के लिए मुझे इतना कड़ा दण्ड दिया। आपकी खीज तो मैंने देख ली। आप दयालू हैं, अतः आपकी रीझ देखना चाहता हूं और कुछ नहीं चाहता। राजा दयालू था। वह इस बात से पसीज गया। उसने अपने कर्मचारी से कहा—उसी हाथ पर वही रत्नजटित झूल डालकर उसे यहां ले आओ और इसे उस पर चढ़ाकर घर पहुंचा दो। राजा ने एक आदेश गुप्त रखा था। उसे नहीं बताया गया। जैसे ही वह घर पहुंचा, राजा का आदेश सुनाया गया कि अब तुम मुक्त हो। कोई दंड नहीं दिया जाएगा। तुम सुख से अपने घर में रहो। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। साथ-साथ यह दूसरा आदेश भी सुनाया कि यह हाथी, यह झूल और ये सारे रत्न महाराज ने तुम्हें बकसीस किए हैं। तुमने खीझ देखी, नदी में डूबना देखा तो राजा की यह रीझ भी देख लो। वह व्यक्ति बाग-बाग हो गया।

प्रशिक्षण का एक प्रयोग :

मुझे लगता है—आज हमारे समाज में यह खीझ वाली बात तो बहुत चल रही है किन्तु रीझ वाली बात बहुत कम हो गई है। दोनों पहलु—खीज और रीझ साथ-साथ चले तो समाज एक संतुलित समाज बनता है। खीझ का प्रतीक है—निषेधात्मक विचार। रीझ का प्रतीक है विधायक विचार। आज निषेधात्मक विचार बहुत चलते हैं। हिंसा एक निषेधात्मक विचार है। अपराध, चोरी, डकैती, लूट-खसोट—सारे निषेधात्मक विचार हैं। यह निषेधात्मक पक्ष यानी खीझ तो बहुत चलती है। किन्तु खीझ का दूसरा पहलु रीझ यानी विधायक विचार बिलकुल जीरो बन गया। यह एक बड़ी समस्या है। रीझ के प्रशिक्षण की जरूरत है।

क्या अहिंसा के प्रशिक्षण का कोई रूप हो सकता है? क्या कोई रीझ वाली बात सामने आ सकती है? इसके प्रशिक्षण का एक स्वरूप और केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि किस प्रकार हम इन निषेधक भावों को दिमाग से निकाल सकें और किस प्रकार हमारे मस्तिष्क में विधायक भावों को बिठा सकें, जमा सकें। इसकी क्रियान्विति के लिए एक पद्धति की, एक प्रक्रिया की और प्रक्रिया के एक अंग की चर्चा मैं करना चाहूंगा। कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ जाएं और निर्विचार अवस्था का अभ्यास करें। मस्तिष्क को एक बार विचारों से खाली कर दें, शून्य कर दें। वह निर्विचार और निर्विकल्प बन जाए। मस्तिष्क में कोई विचार नहीं और कोई विकल्प नहीं। निर्विकल्प होने का मतलब है कालातीत हो जाना। न कोई अतीत की स्मृति, न कोई भविष्य की कल्पना और न कोई वर्तमान का चिन्तन। तीनों कालों से मुक्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त हों बंधनों से

काल एक बंधन है। बहुत बड़ा बंधन है काल का। आदमी जकड़ा हुआ है अतीत से। अतीत उसके पीछे भाग रहा है। आदमी अतीत से डरा हुआ है। वह भय से छुटकारा पाने के लिए तेज दौड़ रहा है। स्वयं के पद-चाप ही उसे डरा रहे हैं। वह और अधिक तेजी से दौड़ता है। वह ठहरना नहीं जानता।

न ठहरना, न रुकना—यह सबसे बड़ी समस्या है। आदमी बहुत दौड़ता है, बहुत दौड़ता है। अतीत पीछा किए हुए है। अतीत से बड़ा कोई भूत क्या होगा? उसने आदमी को ऐसे पकड़ रखा है कि कोई अर्थ ही नहीं। इतनी अर्थहीन बातें आती है कि कभी आदमी नाराज हो जाता है, कभी राजी हो जाता है, कभी घबड़ा जाता है और कभी आकाशीय उड़ाने लगाने लग जाता है। यह अतीत की जकड़न है। भविष्य की कल्पना ने भी आदमी को जकड़ रखा है, बांध रखा है। वर्तमान के चिन्तन ने भी उसके चारों और बन्धन बिछा रखे हैं।

निर्विकल्प अवस्था में आदमी काल की पकड़ से मुक्त हो जाता है। वहां कालातीत हो जाता है। वह देशातीत अवस्था में पहुंच जाता है। देश का भी उसे भान नहीं रहता। जब निर्विकल्प अवस्था आती है तो यह पता ही नहीं रहता कि मैं कहां हूं। देशातीत स्थिति बन जाती है। निर्विकल्प अवस्था में व्यक्तित्व का भी भान नहीं रहता। यह भी पता नहीं रहता कि मैं कौन हूं। जब विचार ही नहीं तो फिर पता कैसे रहे। विचार से पहचान बनाई हुई है कि मेरा यह नाम है, यह जाति है। वास्तव में तो है नहीं। बच्चा जन्मा तब न नाम लेकर आया, न जाति लेकर आया, इच्छा भी लेकर नहीं आया। ये तो हमने आरोपित कर दिए। कायोत्सर्ग में यह पहचान भी समाप्त हो जाती है। केवल बचता है अस्तित्व और कुछ नहीं बचता।

जरूरत है जागरूक प्रयत्न की

इस निर्विकल्प अवस्था का अभ्यास करना है। हम कुछ क्षण निर्विचार रहें, निर्विकल्प रहें। इस अभ्यास से एक प्रकार से मस्तिष्क की धुलाई शुरू हो जाती है। ब्रेन वाशिंग का क्रम शुरू हो जाता है। यह मस्तिष्कीय धुलाई व्यक्ति को आगे बढ़ा देती है। जब पांच मिनट या दस मिनट तक इस अवस्था का अभ्यास कर लें, फिर नया मोड़ लें कि दस मिनट निर्विकल्प रहें। फिर दस मिनट प्रयोग करें निषेधात्मक विचारों को खोजने का कि दिमाग में कहां-कहां निषेधात्मक भाव और विचार भरे पड़े हैं, संचित हैं। उन्हें खोजने का प्रयास करें। उन्हें टटोलें, खोजें। यह क्रम दस मिनट तक चले। दस मिनट तक विधायक भावों, विधायक विचारों को दोहराते रहें। यह ४० मिनट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रशिक्षण का क्रम बन गया। एक प्रयोगात्मक पाठ बन गया। चालीस मिनट का यह प्रयोग अहिंसा के प्रशिक्षण का पहला प्रयोग बन जाएगा। निर्विचार अवस्था, निषेधात्मक भावों को बाहर निकालने का उपक्रम, विधायक भावों को स्थापित करने का प्रयत्न और विधायक भावों के स्थिरीकरण के लिए उनकी अनुप्रेक्षा या पुनरावर्तन—यह क्रम चलता है तो अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है। इसके बिना केवल उपदेश, अहिंसा कल्याणकारी है, अहिंसा के बिना समाज गड़बड़ा रहा है, यह कोरा उपदेश, कोरा चिन्तन और कोरी चर्चा सारहीन ही होगी। एक जागरूक प्रयत्न की आवश्यकता है।

दो चेहरे हैं हमारे

सुकरात जितना बड़ा तत्ववेत्ता था उतना ही कुरूप था। उसका चेहरा भद्दा था फिर भी वह सामने शीशा रखता। बार-बार अपना चेहरा देखता। एक बार वह शीशे के सामने बैठा था। एक आगंतुक व्यक्ति आया। उसने देखा। उससे रहा नहीं गया। कोई सुन्दर आदमी सामने शीशा रखकर मुंह देखे तो समझ में आने वाली बात है कि वह अपने सौंदर्य को देख रहा है। सुकरात का इतना भद्दा चेहरा और बार-बार शीशा देखता है। उसे हंसी आ गई। सुकरात बहुत बड़ा तत्त्वज्ञानी था, तत्त्ववेत्ता था। बात छिपी नहीं रही। उसने कहा, तुम हंसे हो। तुम्हारे मन में यह विचार आया कि मैं शीशा क्यों देखता हूं? उसने सोचा, मेरी बात का इस महान् दार्शनिक को पता चल गया। सुकरात बोले, तुम नहीं समझे। मुझे शीशा देखना बहुत जरूरी है। मैं देखता हूं—मेरा यह चेहरा बहुत भद्दा है पर इस भद्देपन के पीछे मेरा जो गुणात्मक सौन्दर्य है वह भद्दा न बन जाए। इसलिए शीशे में मैं रोज झांकता रहता हूं।

प्रगति का कारण

हमारे दो चेहरे हैं। एक तो यह चमड़ी वाला चेहरा और दूसरा गुणात्मक चेहरा। कल ही मैंने एक लेख पढ़ा। उसने मुझे बहुत आकर्षित किया। लेख का विषय था— जापान आज सारे संसार पर व्यावसायिक और औद्योगिक क्षेत्र में हावी हो रहा है। इसका राज क्या है? लेख में बातें जो थीं, सचमुच चौंकाने वाली बातें थीं। जिस दिशा में समाज का प्रशिक्षण होता है, आदमी उसी दिशा में प्रगतिशील बन जाता है। जापान में गुणवत्ता पर बहुत बल दिया जाता है उद्योग के क्षेत्र में। वहां प्रशिक्षण के कोर्स वर्ष भर चलते रहते हैं। उसमें विद्यार्थी भी आते हैं, मैनेजर भी आते हैं, बड़े-बड़े अधिकारी भी आते हैं और उस कोर्स को दोहराते रहते हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के बड़े-बड़े संस्थान बने हुए हैं। हर उद्योगपति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर उद्योग को चलाने वाला मैनेजर—व्यवस्थापक है तो वह क्वालिटी कन्ट्रोलर भी है। वह इस बात का ध्यान रखता है कि हमारे माल की क्वालिटी कैसी है? कहीं ऐसा न हो कि दुनिया में हमारी क्वालिटी कमजोर बन जाए। क्वालिटी पर और क्वालिटी कन्ट्रोल पर निरंतर प्रशिक्षण चलता है। उस प्रशिक्षण का परिणाम है—आज जापान औद्योगिक क्षेत्र में, व्यावसायिक क्षेत्र में और अपने माल के निर्यात में संसार पर हावी हुए बैठा है।

क्या कभी हमने सोचा कि अहिंसा के लिए भी क्वालिटी कन्ट्रोल की बात करें? गुणवत्ता की बात करें? शायद नहीं सोचा। फिर कैसे अहिंसा की बात कर पाएंगे?

आंच में पकाएं

मैं मुनि हूं। मैंने अहिंसा व्रत को स्वीकारा है। मुझे इसमें विश्वास भी है, किन्तु अहिंसा की यह कमजोर अवस्था देखता हूं तो मुझे भी पीड़ा होती है। मैं बहुत बार साधु-साध्वियों तथा धार्मिक लोगों के बीच यह बात रखता हूं कि हमने अहिंसा के संकल्प को स्वीकारा है किन्तु उसे आंच में पकाने का प्रयत्न अभी नहीं किया है। जब तक कोई चीज आंच में पक नहीं जाती तब तक वह सिद्ध नहीं होती।

चालू भाषा में कहा जाता है—चावल सीझ गया। संस्कृत में कहें तो सिद्ध हो गया, सीझ गया। वह सीझता है जब आंच हो। सिझाना है दस-बीस किलो चावल को और आंच धीमी है तो कुछ होगा ही नहीं। जितना पकाना हो उतनी तेज आंच चाहिए। जब तक यह आंच नहीं लगेगी, परिपाक नहीं होगा, सिद्ध नहीं होगा। अहिंसा को सिद्ध करने के लिए गंभीर प्रशिक्षण कोर्स की आवश्यकता है। इतना गहरा प्रशिक्षण, जिससे व्यक्ति का मस्तिष्क अहिंसा के प्रति सघन आस्थावान् और तन्मय बन जाए।

जरूरत है विचार क्रांति की

कुछ लोग हिन्दुस्तान से विदेशों में गए। वे विश्वशांति की यात्रा पर गए। जाने से पूर्व कुछ हमारे पास आए। मैंने जाने वालों से एक प्रश्न पूछा—विश्वशांति की यात्रा पर जा रहे हैं। पहले यह तो बताएं, जो जाने वाले हैं, उन्होंने अहिंसा की कोई ट्रेनिंग ली है? क्या अहिंसा का प्रशिक्षण पाया है? क्या अहिंसा के प्रति उनका कोई प्रयोग है? क्या अहिंसा के लिए उन्होंने कोई नई बात खोजी है? न कोई अनुसंधान, न कोई प्रयोग और न कोई प्रशिक्षण। सारी सामग्री से शून्य। कहावत तो यह है कि सियार का शिकार करने जाएं तो भी तैयारी शेर को मारने जितनी होनी चाहिए। बड़ा अजीब है हमारा अहिंसा का जगत् कि शेर को मारने जाता है और सामग्री सियार को मारने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भी नहीं है पास में। इतना खालीपन है तो व्यक्तित्व का निर्माण कैसे हो सकेगा ?

मैं सोचता हूं, इस दिशा में एक नई विचार-क्रान्ति की जरूरत है। आज अहिंसक व्यक्तित्व-निर्माण की बहुत बड़ी आवश्यकता है और उस आवश्यकता को सारा संसार अनुभव कर रहा है। उसके लिए एक पद्धति की जरूरत है। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग उसकी पूर्ति कर सकता है। इससे संभव है निर्विचार ध्यान का विकास, विधायक भावों का विकास, निषेधात्मक भावों को दिमाग से निकालना। प्रशिक्षण का यह प्रयोग चले तो मस्तिष्क काफी प्रशिक्षित हो सकता है और नए व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। अहिंसक व्यक्तित्व के निर्माण की दिशा में कुछ लोग इस सचाई को समझ पाएं और कदम आगे बढ़ाएं। अगर इस दिशा में कोई प्रयत्न होता है तो सारे संसार के लिए यह बहुत कल्याणकारी प्रयत्न होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. अहिंसा और अभय

आदमी जीना चाहता है। उसमें जीविताशंसा है और वह मरने से भी डरता है। ये दो बातें अनेक समस्याओं को अपने में समेटे हुए हैं। भय का मूल स्वरूप समझा जाए तो मौलिक भय एक है। वह है मृत्यु का भय। और कोई भय नहीं है। सारे भय उसमें समाए हुए हैं। किन्तु मृत्यु का भय भी मौलिक भय नहीं है। मौलिक भय है आशंसा का यानी वह छूट न जाए। पदार्थ की मूर्च्छा है मौलिक भय।

घर में डाकू घुसे। एक प्रौढ़ आदमी बैठा था। उससे कहा, बोलो, क्या चाहते हो? जीवन चाहते हो या धन चाहते हो? अगर जीवन चाहते हो तो सारी चाबियां सौंप दो और मरना चाहते हो तो तैयार हो जाओ। तुम क्या चाहते हो? वह बोला—मैं धन नहीं दे सकता। आप मार दें। डाकू बोला—क्या धन नहीं देगा? उसने कहा—धन तो बुढ़ापे के लिए रखा है।

मौलिक भय है मूर्च्छा

हमारी मूल मूर्च्छा पदार्थ के प्रति है। मन में यह बात समायी हुई है कि पदार्थ छूट न जाए। यह नंबर एक का भय है। मृत्यु का भय दूसरे नंबर पर आ जाता है। पहला भय है पदार्थ के छूट जाने का। किसी व्यक्ति के साथ स्नेह है, प्रेम है। परिवार के साथ प्रेम है, आसक्ति है, मूर्च्छा है। मूर्च्छा टूट न जाए, परिवार छूट न जाए। यह सबसे बड़ा भय है। यह मौलिक भय है। यह भय जन्म देता है मृत्यु के भय को। मरने का मतलब है सब कुछ छोड़कर चले जाना। परिवार पीछे रह जाएगा, धन पीछे रह जाएगा और सब कुछ पीछे रह जाएगा। कुछ भी साथ नहीं जाएगा। वह इस सचाई से अनजान नहीं है।

आदमी मौत से नहीं डरता

एक व्यक्ति धन का बड़ा लोभी था। धन का मोह छूटता नहीं था। लोगों ने बहुत समझाया पर लोभ छूटता ही नहीं था। लोगों ने एक संन्यासी से कहा—आप इसे समझाएं कि किसी प्रकार इसका मोह टूट जाए। संन्यासी गया उसके घर पर और कहा, सेठ साहब! यह सूई मैं तुमको दे रहा हूं। सेठ ने कहा—इसका मैं क्या करूं? उसने कहा—देखो, मैं यह सूई दे रहा हूं। मैं भी मरूंगा और तुम भी मरोगे। जब अगले जन्म में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाओ तो यह सूई तुम लाकर मुझे दे देना। मुझे यह सूई बहुत प्यारी है। सेठ ने कहा—आप कितने भोले हैं। मरने के बाद तो शरीर भी साथ नहीं जाता तो सूई कैसे साथ चलेगी ? नहीं जा सकती। संन्यासी ने कहा, क्या इस बात को जानते हो तुम ? उसने कहा, हां महाराज ! मैं इस सचाई को जानता हूं। संन्यासी ने कहा—फिर तुममें इतनी मूर्च्छा क्यों ?

चाहे किसी को कितना ही समझा दें, धन के प्रति, पदार्थ के प्रति और अपने परिवार के प्रति इतनी गहरी मूर्च्छा है कि वह मूर्च्छा ही सारा भय पैदा कर रही है। भय का मूल स्रोत है मूर्च्छा। वह मृत्यु का भय भी पैदा करती है। यह माना जाता है कि आदमी मौत से डरता है पर वास्तव में आदमी मौत से नहीं डरता। यह आरोपित भय है। यह भय इसलिए होता है कि वह जानता है, मरने के बाद सब कुछ छूट जाएगा। इसलिए मौत से भी डर हो गया।

मूर्च्छा का भय और मूर्च्छा ने पैदा कर दिया मृत्यु का भय और मृत्यु ने पैदा कर दिए हजारों भय। इतने भय पैदा कर दिये कि पग-पग पर आदमी डरता है। थोड़ी सी बुखार होती है, आदमी डर जाता है। बीमारी आती है, आदमी डर जाता है। हमेशा यह बना रहता है कि कहीं यह शरीर छूट न जाए। शरीर के प्रति भी इतनी गहरी मूर्च्छा। सबसे सघन मूर्च्छा हमारी शरीर के प्रति है।

अभय का महत्त्वपूर्ण सूत्र

इस मूर्च्छा को तोड़ने के लिए कायोत्सर्ग एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। कायोत्सर्ग का अर्थ है—शरीर का त्याग, शरीर को छोड़ देना, जीते जी शरीर को छोड़ देना। मरने के बाद शरीर छूटता है। छूटना अलग बात है और छोड़ देना बिलकुल अलग बात है। शरीर को छोड़ देना, काया का उत्सर्ग कर देना, शरीर को त्यागना—यह महत्त्वपूर्ण बात है। जब हम शरीर की सारी प्रवृत्तियों को छोड़ते हैं, बिलकुल स्थिर, निश्चल और शिथिल बन जाते हैं, प्रवृत्ति से मुक्त होते हैं तो हमें एक प्रकार की मृत्यु का अनुभव होता है। एक प्रकार की मृत्यु है यह। आदमी नींद लेता है वह भी एक प्रकार की मृत्यु है। कायोत्सर्ग करता है वह भी एक प्रकार की मृत्यु है। जो व्यक्ति मृत्यु का अभ्यास कर लेता है, उसका मौत का भय निकल जाता है। उसे मृत्यु का साक्षात्कार हो जाता है। साक्षात्कार होने पर मन से वह भय निकल जाता है। अभय होने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है कायोत्सर्ग। अभय हुए बिना आदमी का जीवन नीरस बन जाता है। भय निरन्तर तनाव पैदा करता रहता है। वह निरन्तर सताता रहता है। चारों ओर भय ही भय दीखता है। बड़ा कठिन है भय के वातारण में अभय रहना। वातावरण की बात भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ दे किन्तु अन्तर् से उपजने वाले भय में अभय रहना भी बहुत कठिन है। भय कोई बाहर से नहीं आता है। यह भी एक काल्पनिक बात है कि भय का वातावरण है। बाहर से हिंसा है, हत्या है, अपराध है, चोरी का भय, डकैती का भय— यह सारा भय काल्पनिक भय है। वास्तविक भय कोई नहीं है। वह तो घटना ही है, भय नहीं है। एक घटना घटी। भय तो हमने मान लिया। भय बन गया हमारे लिए। अगर हमारी अभय की साधना है तो मारने वालों के बीच में जाने पर भी आदमी में भय पैदा नहीं होता। अगर अभय की साधना नहीं है तो हर स्थान भयप्रद है।

अभय का निदर्शन

महात्मा गांधी यात्रा कर रहे थे। उन्होंने देखा, गांव के लोगों के आगे-आगे एक बकरा चल रहा है और पीछे गाते बजाते लोग जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, भाई! क्या है? लोगों ने बताया कि देवी के बलि चढ़ाई जाएगी। अब गांधीजी गए और मन्दिर के आगे जाकर बैठ गए। लोग आए और कहा कि रास्ता छोड़ो, बलि चढ़ाई जाएगी। गांधी ने कहा कि इस बकरे की बलि नहीं चढ़ेगी और यदि चढ़ेगी तो इस आदमी की चढ़ेगी, नर-बलि चढ़ेगी। देवी को बकरे की अपेक्षा मनुष्य का मांस ज्यादा अच्छा लगेगा। बलि बन्द हो गई और बकरा छोड़ दिया गया।

प्रसंग तो भय का था। बकरे को तो मरना था और एक आदमी जान बूझकर मरने को बैठ जाए बकरे के स्थान पर। क्या यह परिस्थिति भय की नहीं है? परिस्थिति तो भय की है, पर भय उपजता है हमारे चित्त में, हमारे मन में। प्रश्न परिस्थिति का नहीं है, वातावरण का नहीं है। प्रश्न है हमारे मन का, हमारे संस्कार का। किस प्रकार की मानसिकता का हमने निर्माण किया है। हमने किस प्रकार के चित्त का और चेतना का निर्माण किया है। हमारी चेतना यदि भयमुक्त है तो परिस्थिति भयाकुल होते हुए भी भयभीत नहीं होंगे और यदि मानसिकता भयाक्रांत है तो भय की स्थिति न होते हुए भी मन में हजारों भय आते रहेंगे।

संस्कृत कवि ने बहुत सुन्दर लिखा है—

'शंकास्थानसहस्राणि. भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पंडितम्॥

शंकाओं के हजारों स्थान हैं और भय के सैकड़ों स्थान हैं। ये प्रतिदिन पैदा होते हैं मूढ़ व्यक्ति में। जो मूर्च्छित हैं, उन्हें सैकड़ों भय रोज सताते हैं। जो पंडित बन गया, पंडित का मतलब पढ़ा लिखा नहीं, जिसने मूर्च्छा को तोड़ दिया, उसे न शंका सताती है और न भय सताता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभय के बिना मूर्च्छा का विलय नहीं

हम मूल सचाई को पकड़ें। मूल सत्य क्या है ? ध्रुव सत्य क्या है ? भय है हमारी मूर्च्छा। अभय है हमारी अमूर्च्छा। इसका एक समीकरण करें तो यह रूप बनेगा कि मूर्च्छा, भय और हिंसा। अमूर्च्छा, अभय और अहिंसा। यह समीकरण होगा कि मूर्च्छा है। उसने भय को जन्म दिया है और हिंसा को जन्म दिया है। अमूर्च्छा है अभय। अभय आया और अहिंसा आई। हम अहिंसा की बात करते हैं। किन्तु जीवन में अहिंसा तब तक नहीं आ सकती जब तक कि अभय नहीं आ जाए। तब तक अभय नहीं आ सकता जब तक कि मूर्च्छा टूट न जाए। हमें प्रहार किस पर करना है ? हिंसा पर प्रहार करना तीसरे नम्बर की बात है। भय पर प्रहार करना दूसरे नम्बर की बात है। पहले नम्बर की बात है मूर्च्छा पर प्रहार करना। यदि आप कितनी ही अहिंसा की बात करें, हिंसा पर प्रहार करने की बात करें, भय के वातावरण को मिटाने की बात करें, किन्तु यदि मूर्च्छा है तो भय जन्मेगा। उसे रोका नहीं जा सकता।

भय हिंसा है

हिंसा एक परिणाम है। भय का परिणाम है हिंसा। जिस व्यक्ति ने लाठी का आविष्कार किया, जिस व्यक्ति ने पत्थर का शस्त्र बनाया, वह डरा हुआ आदमी था। उसने बनाया। यदि अभय होता तो न लाठी बनाने की जरूरत होती और न पत्थर का शस्त्र बनाने की जरूरत होती और न उसे अणुशस्त्रों तक पहुंचने की जरूरत होती। यह सब भय के कारण हो रहा है। एक छोटा राष्ट्र बड़े राष्ट्र से डरता है। बड़ा राष्ट्र भी छोटे राष्ट्र से डरता है कि कहीं अणुबम न बना ले। और छोटा राष्ट्र डरता है कि बड़ा राष्ट्र हम पर कहीं हावी न हो जाए, हमला न कर दे। सभी एक दूसरे से भयभीत हैं।

शेर की मां ने शेर से कहा, बेटा ! एक बात का ध्यान रखना। और किसी से तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है, तुम जंगल के राजा हो। पर काले सिर वाले से हमेशा डरना। काला माथा हो उससे डरना, आदमी से डरना। वह बड़ा खतरनाक होता है। एक दिन ऐसा हुआ कि एक लकड़हारा लकड़ियां काटने जा रहा था। सामने से शेर आया था। आदमी ने शेर को देखा और शेर ने आदमी को देखा तो इधर आदमी दौड़ रहा है और उधर शेर दौड़ रहा है। बड़ी अजीब बात है। उसने सोचा—बात क्या है ? वह थोड़ा रुका और शेर भी रुका। शेर ने आदमी से पूछा—तुम क्यों दौड़े ? आदमी ने बताया, मैं तो इसलिए दौड़ा कि तुम मुझे मार डालोगे। आदमी ने शेर से पूछा—तुम क्यों दौड़े ? शेर ने बताया, मेरी मां ने कहा था कि तुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काले सिर वाले से डरना। क्या मेरी मां ने ठीक कहा ? आदमी ने कहा— ठीक ही कहा है, क्योंकि मौका मिलने पर काला सिर वाला खतरनाक होता है। शेर ने कहा—मौका मिले तब ना ? आदमी ने कहा, हां, मौका मिले तो। शेर ने कहा—कैसे ? आदमी ने तत्काल कुछ लकड़ियां चीरी और एक पिंजड़ा सा बनाया। फिर उसने शेर से कहा, तुम इसमें घुसो। वह घुसा। उसने शेर को पिंजड़े में बन्द कर लिया। शेर बाहर आने के लिए छटपटाने लगा। आदमी बोला, देख ली काले सिर वाले की करतूत ?

अभय कौन ?

आदमी शेर से डर रहा है और शेर आदमी से डर रहा है। शायद ही हमारे समाज में ऐसे लोग हों जो किसी से न डरते हों। सब एक दूसरे से डरते हैं। पड़ोसी-पड़ोसी से डरते हैं। अधिकारी व्यापारी से डरते हैं और व्यापारी अधिकारी से डरते हैं। सब एक दूसरे से डरते हैं और इतना भय है कि कहीं कोई चकमा न दे दे, कहीं लूट न ले, फंसा न दे। आदमी कितना सावधान है। यह सावधानी कहां से पैदा हुई ? यह भय के कारण पैदा हुई। भय हमारे जीवन में व्याप्त हो गया। उसका ही जीवन पर प्रबल आधिपत्य है। उसका एक छत्र साम्राज्य है। मुश्किल है अभययुक्त आदमी को खोजना। सर्वथा अभय हो, किसी का भय न हो। ऐसे आदमी को खोजना बड़ा मुश्किल है। ऐसा आदमी कौन हो सकता है ? अभय वही हो सकता है जिसने त्याग का अभ्यास किया है, जिसने त्याग की साधना की है, मूर्च्छा के त्याग की साधना की है। सबसे बड़ा परिग्रह है शरीर। जिसने अपने शरीर की मूर्च्छा को त्यागना सीख लिया, दुनिया की कोई ताकत नहीं कि उसे भयभीत बना सके। वह कहीं भयभीत नहीं बनता। उसे भय नहीं होता, किन्तु यह अत्यन्त ही कठिन है। इस बात पर हम अगर थोड़ा भी चलें तो इस हिंसा के चक्र को तोड़ सकते हैं।

प्रश्न स्वस्थ समाज रचना का

आज बहुत लोग अहिंसक समाज रचना की चर्चा करते हैं, क्योंकि वर्तमान की समाज रचना बहुत हिंसापूर्ण है, स्वस्थ नहीं है। यह कैसे संभव हो सकती है ? आज की सबसे बड़ी समस्या है सत्ता का केन्द्रीकरण और अर्थ का केन्द्रीकरण। जहां सत्ता केन्द्रीकृत होती है, संपदा केन्द्रीकृत होती है वहां अहिंसक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। जहां कुछ हाथों में सत्ता केन्द्रित है और कुछ हाथों में सारा धन केन्द्रित है, वहां अहिंसक समाज की बात सोच ही नहीं सकते। बिना विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था और विकेन्द्रित सत्ता के अहिंसा की दिशा में हमारा प्रस्थान नहीं हो सकता। अहिंसा की दिशा में विकास तभी संभव है जब विकेन्द्रीकरण आए। आदमी में इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्च्छा है कि एक बार चिपक गया तो फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता। कुर्सी पर बैठ गया तो फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता।

व्यक्ति न सत्ता को छोड़ना चाहता है और न धन को छोडना चाहता है। सब अपने हाथ में जमा करके रखना चाहता है।

केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था और केन्द्रित सत्ता में स्वस्थ समाज रचना की बात सोची नहीं जा सकती।

दोहरी समस्या

भगवान् महावीर ने तीन प्रकार के लोग बतलाए। पहली श्रेणी के लोग ऐसे होते हैं कि परिग्रह भी महान् और हिंसा भी महान्। दूसरी श्रेणी के लोग होते हैं कि इच्छा अल्प, परिग्रह अल्प और हिंसा भी अल्प। तीसरी श्रेणी के लोग होते हैं कि इच्छा भी समाप्त और परिग्रह भी समाप्त। यानी अनिच्छा और अपरिग्रह। आज पहली श्रेणी के लोग ज्यादा हैं। इच्छा भी महान् और परिग्रह भी महान्। यह केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप है। विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था का स्वरूप है कि अल्प इच्छा यानी परिग्रह कम और हिंसा भी कम। कोई भी समाज का व्यक्ति इस श्रेणी में रहना पसंद नहीं करता। सब महत्त्वाकांक्षी बन गए, धन और सत्ता की ओर दौड़ रहे हैं। इस स्थिति में न तो अहिंसक समाज रचना की कल्पना की जा सकती और न अभय के वातावरण की बात सोची जा सकती।

हर व्यक्ति चाहता है—समाज में अभय का वातावरण रहे, आतंक न रहे, भय न रहे। सभी अपने आप में बिलकुल भयमुक्त और आतंकमुक्त रहे, अपने आपको स्वस्थ अनुभव करें। किन्तु यह सोच संभव नहीं बन सकती। क्योंकि जो अभय का वातावरण चाहते हैं, वे सत्ता पर कब्जा करने को तैयार हैं। जब यह विरोधी बात चल रही है तो कैसे संभव होगा ?

ऐसा लगता है कि समाज की प्रकृति या मानव की प्रकृति मूर्च्छा की प्रकृति बनी हुई है। वह उसे तोड़ना नहीं चाहता और अभय तथा अहिंसा का वातावरण भी चाहता है, विकास भी चाहता है। यह दोहरी समस्या है। बन्दर ने संकरे मुंह वाले चने के बर्तन में हाथ डाला, मुट्ठी में चने लिए और मुट्ठी को बाहर निकालने का प्रयत्न किया। बंदमुट्ठी उस संकरे मुंह से बाहर नहीं निकल पायी। वह फंस गया। न तो वह चने को छोड़ सकता है और न हाथ को बाहर निकाल सकता है। इतने में बंदर को पकड़ने वाले आते हैं और उसे पकड़ लेते हैं। ऐसा ही हो रहा है कि आदमी मुट्ठी बांधे हुए है। वह न चने का लोभ छोड़ रहा है और न हाथ बाहर निकल रहा है। वह इस सत्ता और भय के चक्र में फंस जाता है। बड़ी अजीब-सी स्थिति है। जब तक यह चने का लोभ नहीं छूटेगा और मुट्ठी नहीं खुलेगी, तब तक हाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बर्तन में से नहीं निकलेगा। भय का वातावरण बराबर बना रहेगा।

पहल स्वयं से हो

हमें आज यदि सचाई को समझना है और असचाई पर प्रहार करना है, असत्य पर प्रहार करना है तो सबसे पहले प्रयोगावस्था में जाना होगा। जब तक हमारा जीवन प्रायोगिक नहीं बनेगा तब तक कुछ भी संभव नहीं। प्रयोग कहां से शुरू करें? सबसे पहले अपने आप से प्रयोग शुरू करें। अपने आप में सबसे पहला प्रयोग कायोत्सर्ग का करें। प्रेक्षाध्यान का सारा विकास कायोत्सर्ग के आधार पर हुआ है। चाहे चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा हो, चाहे शरीर प्रेक्षा और चाहे कोई भी प्रेक्षा हो, सबका आधार है कायोत्सर्ग। जब तक आदमी काया को छोड़ना नहीं जानता, काया की प्रवृत्ति को छोड़ना नहीं जानता, काया को स्थिर करना नहीं जानता, काया को शिथिल करना नहीं जानता, तब तक शारीरिक तनाव बना रहता है। जब तक यह शारीरिक तनाव बना रहता है तब तक अभय की और अहिंसा की बात नहीं सोची जा सकती। एक व्यक्ति प्रतिदिन बीस मिनट कायोत्सर्ग करता है और कायोत्सर्ग में पदार्थ से अपने अस्तित्व की भिन्नता का अनुभव करता है तो वह व्यक्ति निश्चित ही अभय और अहिंसा में आगे बढ़ जाएगा।

हम पहले अपने से शुरू करें और फिर दूसरा प्रयोग अपने परिवार में करें। हम अहिंसा की लंबी-चौड़ी बात न करें कि शत्रु ने आक्रमण शुरू कर दिया और अहिंसा होगी तो रक्षा कैसे संभव होगी? ये सब उलझाने वाले तर्क हैं। सब अपना बचाव करेंगे। हम अहिंसा का प्रयोग अपने परिवार में करें। एक पड़ोसी बात नहीं मानता है तो उतना गुस्सा नहीं आता पर अपने बच्चे नहीं मानते हैं तो बडा गुस्सा आ जाता है। मेरा लडका मेरी बात नहीं मानता, पत्नी मेरी बात नहीं मानती। बड़ा गुस्सा आ जाता है। पड़ोसी नहीं मानता है तो सोच लेता है कि कोई बात नहीं, दूसरा आदमी है, माने या न माने। पर पुत्र के लिए और पत्नी के लिए कभी ऐसा नहीं सोचता। वहां तो इतनी हुकूमत जमाता है कि मेरी पत्नी और मेरा पुत्र मेरी बात नहीं मानता? पारा एकदम चढ़ जाता है।

सबसे ज्यादा हिंसा का प्रसंग आता है अपने निकट के लोगों पर। वहां बड़ी समस्या पैदा हो जाती है। हमने अनेक घटनाएं देखी हैं कि छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़को को घर से निकाल देते हैं। वे बच्चे हिंसक बन जाते हैं। अहिंसा का प्रयोग अपने परिवार के लोगों से प्रारंभ करें। भाई-भाई के बंटवारे में थोडा-सा इधर-उधर हो गया तो जीवन भर हिंसा का चक्र छूटता ही नहीं। १०-२० हजार के जमीन के छोटे से टुकड़े का अंतर आ गया तो जीवन भर बोलते ही नहीं। ऐसे भाइयों को देखा है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि आंख से आंख भी नहीं मिलाते।

मूल्य है नींव के पत्थर का

आचार्यश्री मेवाड़ की यात्रा में एक गांव में गए। घाटियों में बसा हुआ गांव। वहां देखा, भाई-भाई में अनबन चल रही था। आचार्यश्री को पता चला। उन्होंने बड़े भाई से कहा—तुम इस वैर-विरोध को मिटा दो। उसने कहा, आचार्यवर! मैं आपका श्रावक हूं और आपका आज्ञाकारी हूं। आप यह कहें कि धूप में खड़े सूख जाओ तो सूख जाऊंगा, पर भाई से वैर नहीं मिटाऊंगा। आप कल्पना कर सकते हैं कि कितना परस्पर में वैर-विरोध होता है! कैसी परिस्थिति होती है! हम सबसे पहले यदि अहिंसा की दिशा में कुछ सोचना चाहते हैं और अपने जीवन में अहिंसा का विकास करना चाहते हैं तो अपने परिवार में अहिंसा का प्रयोग करना होगा।

जहां परिवार है, पांच-दस आदमी साथ में रहते हैं, वहां हिंसा के प्रसंग आने स्वाभाविक हैं। दो आदमी हुए और हिंसा का प्रसंग आ जाता है। दो होने का मतलब ही है हिंसा का अवसर। विचार भेद, रुचि का भेद और चिंतन का भेद होने पर हिंसा के प्रसंग आ सकते हैं। पहले स्वयं पर प्रयोग करें। यह प्रयोग सफल हो जाता है तो फिर प्रयोग आगे बढ़े पडोसियों में। पड़ोसियों के साथ अहिंसा का प्रयोग करें। अहिंसा को जीवन में व्यापक बनाएं। फिर राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र की बात आती है। हम लोग बड़े विचित्र हैं। न अपने प्रति अहिंसा का प्रयोग और न अपने परिवार के प्रति अहिंसा का प्रयोग और न गांव में अहिंसा का प्रयोग, सीधी ही विश्व शांति और अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा की बात करते हैं। छोटे काम के प्रति हमारा भरोसा ही नहीं है। बहुत बड़ा काम करना चाहते हैं। ऐसा कभी हुआ नहीं और कभी होगा नहीं। जो लोग ऐसा करते हैं, छोटे क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किए बिना बड़ी-बड़ी बात करते हैं और सीधी विश्व शान्ति की बात करते हैं, वे कभी अपने मिशन में सफल नहीं हो सकते।

हम प्रयोग की दिशा में एक क्रम से चलें। अहिंसा के प्रयोग क्रमशः करते-करते हम आगे बढ़ें। बड़ी बातों में न उलझें, बहुत परतों में न उलझें। छोटे-छोटे प्रयोग करते-करते हम बड़ी दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए छोटों का मूल्यांकन करें। छोटे का बहुत बड़ा मूल्य होता है। नींव के पत्थर का जितना मूल्य है उतना खंभे का और दीवारों का मूल्य नहीं है। मूल आधार तो वे ही बनते हैं। उस आधार का मूल्यांकन करें।

मूर्च्छा के चक्र को तोड़ें

हम अहिंसक समाज रचना की बात करते हैं, स्वस्थ समाज रचना की बात करते हैं, हम वैसा समाज चाहते हैं जिसमें शान्ति, स्वस्थता, अभय हो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर आदमी को आश्वासन, हर आदमी को अपने अधिकारों का प्रयोग करने का अवसर हो, सारी बातें चाहते हैं समाज में तो हमें मूल सचाई को पकड़ना होगा कि अपने स्वार्थों को सीमित किए बिना, अपनी मूर्च्छा को सीमित किए बिना सारी आकांक्षाएं मात्र एक दिवास्वप्न बनेंगी, सत्य कभी नहीं बन पाएंगी। यदि आकांक्षाओं को कृतार्थ करना है, क्रियान्वित करना है तो हमें सत्य को पकड़ना होगा। हम कैसे मूर्च्छा को कम कर सकें, मूर्च्छा के चक्र को कैसे भेद सकें, तोड़ सकें, इस सत्य को पकड़ना है। यदि इस सचाई को पकड़ लिया तो बहुत सारी समस्याओं, दुःखों और आपदाओं को निरस्त करने का मार्ग ढूंढ लिया, अपने जीवन को ऐसा पवित्र और वातानुकूलित बना दिया कि बाहर जो आंधी चल रही है उसका आप पर कोई प्रभाव नहीं होगा। प्रेक्षा ध्यान का प्रयोग अपने आपको वातानुकूलित बनाने का प्रयोग है और इस प्रयोग में जो व्यक्ति श्रद्धा के साथ आता है, तन्मयता के साथ आता है, वह निश्चित ही अपने आपको संतुलित बना लेता है और वह परिस्थिति से अप्रभावित रहकर एक अहिंसक समाज रचना में अपना योग दे सकता है, उसे आगे बढ़ा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा और शान्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. सामाजिक जीवन की समस्या और सह-अस्तित्व

व्यक्ति की विभिन्नता : एक समस्या

हम सामाजिक जीवन जी रहे हैं। समाज का एक घटक है—व्यक्ति। जैसा व्यक्ति होता है वैसा समाज होता है। समाज और व्यक्ति को सर्वथा अलग नहीं किया जा सकता। मूल प्रश्न है व्यक्ति का। सामाजिक जीवन की समस्या है—व्यक्ति की विभिन्नता। यदि सब व्यक्ति एक प्रकार के होते तो एक-सा चिंतन, एक-सा जीवन, एक-सा रहन-सहन, एक-सी जीवन प्रणाली, एक-सी राजनीतिक प्रणाली और एक ही धार्मिक प्रणाली होती, पर इन सबमें विभिन्नता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी पृथक् मान्यताएं रखता है। जीवन की प्रणालियां भिन्न-भिन्न हैं और सबका दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न है। इसलिए जहां मतभेद होता है, वहां मनभेद भी आ टपकता है।

दो प्रकार की ग्रंथियां हैं—एक मतभेद की ग्रंथि और दूसरी मनभेद की ग्रंथि। इन दोनों ग्रंथियों से समाज संत्रस्त है। जातीयता और सांप्रदायिकता दुःख का एक कारण है और इससे अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएं पैदा हो जाती हैं। मनोविज्ञान में सामूहिक तनाव की बड़ी चर्चा है। समाज के द्वारा, समूह के द्वारा जो तनाव पैदा किया जाता है, उसमें राजनीतिक कारण भी हैं, समाज व्यवस्था भी एक कारण है, आर्थिक व्यवस्था भी एक कारण है और वैज्ञानिक कारण भी हैं। थोड़ा-सा मतभेद होता है, घृणा पैदा हो जाती है, द्वेष पैदा हो जाता है। ये मनोवैज्ञानिक कारण सबसे अधिक भंयकर होते हैं।

विरोध : समाज की प्रकृति

दर्शन-शास्त्र में विरोध के तीन कारण बतलाए गए हैं—प्रतिबध्य-प्रतिबंधक, वध्य-वधक और सहानवस्थान।

एक विरोध है—प्रतिबध्य-प्रतिबंधक का। प्रतिबंधक शक्ति आती है और प्रतिबध्य में रुकावट पैदा हो जाती है। दोनों में विरोध है। आग का काम है जलाना किन्तु प्रतिबंधक शक्ति पैदा हो गई तो वह जला नहीं पाएगी।

दूसरा विरोध है—वध्य-वधक का। चूहे और बिल्ली में एक शाश्वत प्रकृतिगत विरोध है। यह वध्य-वधक भाव का विरोध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा विरोध है—सहानवस्थान का। पानी और आग में सहानवस्थान विरोध है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

विरोध समाज की प्रकृति है, व्यक्ति की प्रकृति है। विरोध के वातावरण में व्यक्ति पलता चला आ रहा है। इन विरोधों के कारण आज काफी जटिलताएं पैदा हो रही हैं। सारा संसार अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। क्या इन विरोधों को मिटाया जा सकता है? क्या समस्या का कोई समाधान है? हमारे सामने यह एक प्रश्न है।

विरोध परिहार का मार्ग : अनेकान्त

अनेकान्त में इस विरोध के परिहार का मार्ग उपलब्ध है। उसका एक सूत्र है—सर्वथा विरोध और सर्वथा अविरोध जैसा दुनिया में कुछ भी नहीं है। सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद जैसा दुनिया में कुछ भी नहीं है। जो भिन्न है वह अभिन्न भी है और जो अभिन्न है, वह भिन्न भी है। जो विरुद्ध है, वह अविरुद्ध भी है और जो अविरुद्ध है, वह विरुद्ध भी है। ऐसी लक्ष्मण-रेखा नहीं खींची जा सकती कि मैं इससे सर्वथा भिन्न हूं या इससे सर्वथा अभिन्न हूं। इस आधार पर अनेकान्त का एक सिद्धांत फलित हुआ—सह-अस्तित्व। प्राचीन भाषा है—सहानवस्थान। वर्तमान में कहा जा सकता है—एक साथ रहना और एक साथ जीना सह-अस्तित्व है। यह कैसे संभव है? अनेकान्त की व्याख्या की जाए तो निष्कर्ष होगा—सह-अस्तित्व का सिद्धांत अनेकान्त की मूल प्रकृति है।

जैन दर्शन की मौलिक विशेषता

अनेकान्त का पहला बिन्दु है—दो विरोधी युगलों के अस्तित्व का स्वीकार। इस दुनियां में जितने पदार्थ हैं, वे सब विरोधी युगल हैं। यह अनेकान्त की प्रथम स्थापना है। दर्शन शास्त्र में वस्तु को अनन्तधर्मा माना जाता है। जैन दर्शन भी वस्तु को अनंतधर्मात्मक मानता है। दूसरे दर्शन भी उसे अनंतधर्मात्मक मानते हैं। वस्तु को अनंत धर्मात्मक मानना जैन दर्शन की कोई मौलिक विशेषता नहीं है। अनंत धर्म—इसका तात्पर्य है अनंत विरोधी युगलों का स्वीकार। यह जैन दर्शन की अपनी मौलिक विशेषता है। जो अनंत धर्म हैं, वे सब विरोधी जोड़े हैं, विरोधी युगल हैं।

अनेकान्त का अभ्युपगम

प्रश्न होता है—जब सारा संसार विरोधी युगलों में समाया हुआ है तो संसार का काम कैसे चलेगा? प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है, अनित्य भी है, एक जैसा भी है, भिन्न भी है, भेदात्मक भी है अभेदात्मक भी है तो फिर विश्व की व्यवस्था कैसे चलेगी? अनेकान्त का यह स्पष्ट अभ्युपगम है—जो विरोधी युगल नहीं होता, उसका अस्तित्व ही नहीं होता। जिसका अस्तित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा, वह विरोधी ही होगा, विरोधी युगल ही होगा। अज्ञान के कारण हम इस सचाई तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। बहुत बार मनुष्य अज्ञान में होता है और वह मूल स्थिति को समझ नहीं पाता है।

किसान अपने बैलों को लिए हुआ जा रहा था। रास्ते में पुजारी ने घंटी बजाई। बैल भड़क उठे। किसान ने कहा—अरे! देखता नहीं, मेरे बैल भड़क गए। पुजारी ने कहा—आरती उतार रहा हूं। किसान बोला—अब आरती उतार रहे हो, पहले ऊपर चढ़ाई ही क्यों?

अज्ञानता के कारण मनुष्य इस सचाई को पहचान नहीं पाता कि आरती कभी चढ़ाई नहीं जाती, वह उतारी ही जाती है।

एक शाश्वत युगल : विरोध और अविरोध

हमारे साथ ऐसा ही कुछ हो रहा है। हम सचाई को पकड़ नहीं पा रहे हैं। यदि हम यह मानें की दुनिया में जितना विरोध है, वह मात्र विरोध ही है तो विरोध को मिटाने का कोई उपाय हमारे पासन ही है। अनेकान्तवाद का स्वीकार है—जहां-जहां विरोध है वहां-वहां अविरोध भी समाया हुआ है। विरोध और अविरोध को कभी कम नहीं किया जा सकता। यह ऐसा जोड़ा नहीं है, जो कभी कट जाता है, कभी रह जाता है। यह शाश्वत जोड़ा है, शाश्वत युगल है। न कभी पति मरता है, न कभी पत्नी मरती है और न ही कभी तलाक होता है। दोनों अमर और शाश्वत हैं। न कभी विरोध समाप्त होता है, न कभी अविरोध समाप्त होता है। दोनों निरंतर साथ-साथ बने रहते हैं। इस स्थिति में ही सह-अस्तित्व फलित होता है। एक साथ रहना और एक साथ जीना—इसका अर्थ है, दो विरोधी एक साथ रह सकते हैं।

पानी : ठंडा या गर्म

प्रत्येक वस्तु में दो विरोधी धर्मों का सहावस्थान है। कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जिसमें आर्द्रता न हो, स्निग्धता न हो। आर्द्रता और स्निग्धता, ये सब वस्तु के धर्म हैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिस में उष्णता या ताप न हो। पानी को उबाला गया, गर्म कर लिया गया। उसे क्या कहें? वह पानी है या आग? पानी का लक्षण है—ठंडा होना, पर यह तो उबल रहा है। इसे पानी नहीं कहा जा सकता। आग का काम है जलना तो क्या इसे आग कहा जाए? आग भी नहीं कहा जा सकता। आग पर पानी डालें तो यह पानी गर्म होकर भी उसे बुझा देगा। आखिर इसे क्या कहा जाए? इस प्रश्न के मंथन से निष्कर्ष निकला—जो पानी उबाल दिया गया, वह पानी भी है और आग भी है, दोनों है। वह पानी है क्योंकि वह आग को बुझा सकता है। वह आग है क्योंकि उसका शीतलता का धर्म गौण हो गया, तिरोहित हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया, आग का धर्म प्रधान हो गया।

सह-अस्तित्व का दार्शनिक संदर्भ

जैन आगमों में एक प्रश्न आता है—रोटी भी अनाज की है, शाक भी वनस्पति का है। अब उसे क्या कहा जाए? क्या उसे वनस्पति कहा जाए? उत्तर दिया गया—उसे वनस्पति नहीं कहा जा सकता। वह आग भी है, वनस्पति भी है। उसे तेजस्काय कहा जाए। वह अग्नि में पकाया गया है, अग्नि के उष्ण परमाणु उसमें समाए हुए हैं। एक लोहे की छड़ को इतना तपाया गया कि वह आग का गोला बन गया। लोहा पृथ्वीकाय होता है। प्रश्न आया, उस अग्निमय लोहे को पृथ्वीकाय कहा जाए या तेजस्काय कहा जाए। उत्तर दिया गया—उसे पहले तेजस्काय कहा जाए फिर पृथ्वीकाय कहा जाए।

मूल बात है कि दुनिया में सर्वथा विरोध या सर्वथा अविरोध जैसा कुछ भी नहीं है। विरोध और अविरोध का जोड़ा शाश्वत है, चिरंतन है। प्रत्येक पदार्थ भेद और अभेद, विरोध और अविरोध का संगम है। यह सह-अस्तित्व की चर्चा का दार्शनिक संदर्भ है।

सह-अस्तित्व के तीन सूत्र

व्यवहार के संदर्भ में सह-अस्तित्व के तीन सूत्र हैं—आश्वास, विश्वास और अभय। जैन आगम प्रश्नव्याकरण में अहिंसा के सात नाम बतलाए गए हैं। वे उस के प्रत्येक पहलू को प्रकट करने वाले नाम हैं। उनमें तीन नाम हैं—आसासो, वीसासो, अभओ। सह-अस्तित्व संभव बनता है आश्वासन में। जहां आश्वासन है, एक व्यक्ति दूसरे से आश्वस्त है, कहीं भी अनाश्वासन जैसी बात नहीं है, वहां सह-अस्तित्व का विकास होता है। दूसरी बात है विश्वास की। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति विश्वास हो। तीसरी बात है अभय की। व्यक्ति तभी अभय बन सकता है, जब दूसरा व्यक्ति विश्वस्त हो, विश्वासी हो। विश्वास तब जागता है जब आश्वासन मिलता है। आश्वास, विश्वास और अभय—ये तीनों जुड़े हुए हैं। जब ये तीनों स्थितियां निर्मित होती हैं, तब सह-अस्तित्व का सूत्र व्यवहार में प्रादुर्भूत होता है।

एक आश्वासन बना है समझौता

आज एक समस्या है। अणु-अस्त्र बन रहे हैं। एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से कोई आश्वासन नहीं है। अभी कुछ मास पूर्व रूस के प्रधानमंत्री मिखाइल गोर्बाच्योव और अमेरिका के राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने प्रक्षेपास्त्रों में कमी करने का समझौता किया। वह एक आश्वासन बना। उस आश्वासन से एक विश्वास पैदा हुआ है और विश्वास से अभय का वातावरण बना है। एक भय बना हुआ था कि अणु-अस्त्रों के द्वारा न जाने कब सारे संसार का विनाश हो जाए। वह भय भी कम होना शुरू हुआ है। सह-अस्तित्व के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीन सूत्रों का प्रयोग आवश्यक है।

अहिंसा और सह-अस्तित्व

हमने अहिंसा को एक रूप में जाना है। अहिंसा यानी किसी को न मारना, किसी को न सताना। जब तक सह-अस्तित्व की भावना का विकास नहीं होता तब तक अहिंसा का अर्थ पूरा समझ में नहीं आता। एक साथ रहना है और एक साथ जीना है तो आश्वास, विश्वास और अभय के वातावरण का निर्माण करना होगा। हमारी अहिंसा, आपकी अहिंसा प्राणी मात्र के साथ जुड़े यह आवश्यक है। किसी को नहीं मारना बहुत अच्छी बात है। इस अवधारणा में भी एक अंतर आया है कि और किसी को नहीं मारना, किन्तु मनुष्य को मारा जा सकता है, सताया जा सकता है। उसमें भी निकट का व्यक्ति अधिक उपेक्षित बन गया है, यानी अपना पड़ोसी, अपना परिवार, अपना समाज, अपना राष्ट्र—सबकी उपेक्षा हो सकती है। मनुष्य की उपेक्षा और प्राणीमात्र की अपेक्षा—अहिंसा का यह एक रूप बन गया है। प्राणी मात्र को नहीं सताना—इस धारणा को गलत नहीं कहा जा सकता। यह बहुत आवश्यक है, किन्तु प्रारंभ कहां से हो, अहिंसा का प्रारंभ कहां से करें, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

अहिंसा : वर्तमान मानस

अहिंसा के दो रूप हैं—स्वाभिमुखी अहिंसा और समाजाभिमुखी अहिंसा। क्रोध, अहंकार, भय, घृणा और द्वेष—इन सबको कम करना स्वाभिमुखी अहिंसा है। समाज के किसी भी व्यक्ति का शोषण नहीं करना, लूट-खसोट नहीं करना, पीड़ा नहीं पहुंचाना, आघात नहीं करना, हीन भावना पैदा नहीं करना आदि-आदि समाजाभिमुखी अहिंसा है।

आज समाजाभिमुखी अहिंसा की ओर ध्यान बहुत कम है। स्वाभिमुखी अहिंसा की ओर भी ध्यान केन्द्रित नहीं है। केवल छोटे प्राणियों की ओर अभिमुख अहिंसा ही ज्यादा चल रही है। चींटी को नहीं सताना, नहीं मारना उसका एक निदर्शन बन सकता है। एक चींटी मर जाए तो मन में थोड़ी ग्लानि होती है। यदि मनुष्य का शोषण हो जाए, उत्पीड़न हो जाए तो शायद उतनी चिंता नहीं होती। किसी का गला काटने पर भी संभवतः इतना प्रकम्पन नहीं होता जितना एक चींटी को मार देने पर हो जाता है।

जातिवाद : सह-अस्तित्व में बाधक

इस स्थिति में सह-अस्तित्व के सिद्धांत को विकसित करना बहुत जरूरी है। "सब मनुष्य समान हैं" यह अहिंसा का एक आधारभूत सिद्धांत है। मनुष्य जाति एक है—इस स्वर की उपेक्षा से मानव समाज का विकास अवरुद्ध हुआ है। जातिवाद और संप्रदायवाद ने सह-अस्तित्व को बहुत हानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुंचाई है। यह मान लिया गया कि कुछ मनुष्य जन्मना ऊंचे होते हैं और कुछ मनुष्य जन्मना नीचे होते हैं। इस धारणा ने सह-अस्तित्व के सिद्धांत को चूर-चूर कर दिया। एक गांव जो बसेगा, उसमें बड़े लोग तो गांव के मध्य में रहेंगे और हरिजन गांव के छोर पर रहेंगे। अन्त्य कुल में पैदा हुए हैं अतः अंत में ही रहेंगे, एक साथ नहीं रह सकते, एक साथ नहीं बस सकते। उन्हें साथ में रहने का अधिकार नहीं। इस जातिवाद ने उच्च माने जाने वाले लोगों में अहंकार को बढ़ावा दिया और निम्न माने जाने वाले लोगों में हीन-भावना को जन्म दिया। जहां अहंकार और हीन-भावना होती है, वहां सह-अस्तित्व नहीं हो सकता। जहां सह-अस्तित्व नहीं होता, वहां अहिंसा नहीं हो सकती। जहां सह-अस्तित्व नहीं होता, वहां अनेकान्त नहीं हो सकता। अनेकान्त का दर्शन है—प्रत्येक वस्तु को अनेक पहलुओं से जानो, देखो और समझो। हमने एकांगी दृष्टि से देखना शुरू कर दिया, जिससे अनेक समस्याएं उलझ गईं।

व्यक्ति-व्यक्ति में विभिन्नता क्यों ?

उपयोगिता के लिए विद्या की अनेक शाखाएं बनीं। मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि अनेक शाखाएं विकसित हुईं और उनके निर्णय भी अनेक रहे हैं। एक समाजशास्त्री कहेगा—वर्तमान समस्या का मूल कारण यह समाजशास्त्र है। एक अर्थशास्त्री कहेगा—वर्तमान समस्या का मूल कारण आर्थिक विषमता है। अलग-अलग दृष्टिकोण है प्रत्येक विद्याशास्त्र का। यदि हम एक व्यवस्था के आधार पर निर्णय लेंगे तो हमारा निर्णय गलत होगा।

व्यक्ति-व्यक्ति में विभिन्नता है लेकिन क्यों ? एक आनुवंशिकी वैज्ञानिक कहेगा—मनुष्य में जो यह अन्तर है, भेद है, उसका कारण है आनुवंशिकता। फिर एक चिन्तन आया कि मनुष्य-मनुष्य में जो अन्तर आया है, उसका कारण है—पर्यावरण, वातावरण। एक और सिद्धांत प्रस्तुत हुआ—मनुष्य-मनुष्य में जो अन्तर है, वह जीन के कारण है। किसी तर्कशास्त्री से पूछा जाए तो वह कहेगा—तर्क के कारण व्यक्ति-व्यक्ति में अंतर आता है।

अनेकान्त कहता है—किसी एक दृष्टिकोण से अर्थ मत निकालो। सही निर्णय करना हो तो सब को साथ में मिलाओ। आनुवंशिकता भी एक कारण बन सकता है, वातावरण भी एक कारण हो सकता है, जीन भी एक कारण हो सकता है, तर्क भी एक कारण हो सकता है। इन सब कारणों को मिलाया जाए और उससे जो निष्कर्ष निकलेगा, वह सही होगा। सही निर्णय के लिए समग्र दृष्टिकोण का होना आवश्यक है।

सब मनुष्य समान हैं

"सब जीव समान हैं और मनुष्य जाति एक है"—सह-अस्तित्व को व्यापक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप देने के लिए इस धारणा की व्यापक प्रतिष्ठा आवश्यक है। सब जीव समान हैं—यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है किन्तु इसे एक बार छोड़ भी दें। सब मनुष्य समान हैं—उनमें कोई शाब्दिक या मौलिक अन्तर नहीं है। यदि इस भावना को पुष्ट बनाया जाए तो सह अस्तित्व को एक व्यावहारिक रूप मिल सकता है। यदि यह भावना पुष्ट नहीं बनी तो जातिवाद की समस्या, रंगभेद की समस्या और संप्रदायवाद की समस्या हमेशा प्रस्तुत रहेगी और सह-अस्तित्व का सिद्धांत व्यवहार के स्तर पर फलित नहीं हो सकेगा।

भाषाई आधार पर प्रान्तों का बंटवारा : एक बड़ी भूल

प्रश्न हो सकता है कि क्या यह असंभव है? क्या इस भावना की व्यक्ति-व्यक्ति के दिमाग में प्रतिष्ठा हो सकती है? प्रशिक्षण के द्वारा इस कार्य को संभव बनाया जा सकता है। ऐसा लगता है—अतीत में भेद को ज्यादा मूल्य दिया गया और उसकी परिणति बिखराव में हुई। बंटवारें की बात को मूल्य अधिक मिला, एकता की बात गौण हो गई। जाति के आधार पर, भाषा के आधार पर और सम्प्रदाय के आधार पर विभाजन को बल मिला। भाषाई आधार पर प्रान्तों का निर्माण कर हिन्दुस्तान ने सबसे बड़ी भूल की। इन भाषाई बंटवारे ने समस्या को जन्म दिया है। यदि भाषाई आधार पर प्रान्तों का निर्माण नहीं होता तो बहुत सारे झगड़े नहीं होते। जातीयता के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था हिन्दुस्तान की एक बड़ी भूल है। यदि जातीयता के आधार पर आरक्षण की बात नहीं होती तो बहुत सारी समस्याएं नहीं उलझतीं।

भेद : अभेद

भेद हमारी उपयोगिता है—इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। कोई भी आदमी रोटी खाएगा तो तोड़-तोड़कर खाएगा। एक साथ नहीं खाएगा। यदि एक साथ खाएगा तो उसे ग्रामीण कहा जाएगा। वह सभ्य नहीं कहलाएगा। उपयोगिता के लिए तोड़ना जरूरी है। आकाश अखंड है। एक मकान बना, आकाश विभक्त हो गया। मकान बनाने का अर्थ है—आकाश को तोड़ देना, बांट देना। जहां कहीं छत बनी, आकाश बंट गया। तर्कशास्त्र के बहु प्रचलित शब्द हैं घटाकाश, पटाकाश। ये भेद हमारी उपयोगिता से निर्मित हुए हैं। किन्तु हमने भेद को अधिक प्रधानता दी और अभेद को बिलकुल भुला दिया। अनेकान्त ने कहा—जब भेद को प्रधानता दो तो अभेद को गौण कर दो। जब अभेद को प्रधानता दो तो भेद को गौण कर दो। भेद और अभेद को भुलाओ मत। दोनों आंखें बराबर खुली रहें, भेद और अभेद—दोनों का दर्शन एक साथ चलता रहे। अगर यह अनेकान्त का सामूहिक दर्शन चलता है तो समन्वय का दृष्टिकोण पनपता है, सह-अस्तित्व को बल मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा का प्राणभूत सिद्धान्त

सह-अस्तित्व का सिद्धांत विश्व शांति की समस्या का बहुत बड़ा समाधान है। सह-अस्तित्व का सिद्धांत अहिंसा का प्राणभूत सिद्धांत है। इस कथन में भी कोई अतिरंजना नहीं लगती कि सह-अस्तित्व के बिना अहिंसा सफल नहीं, अहिंसा के बिना सह-अस्तित्व सफल नहीं। सह-अस्तित्व और अहिंसा—दोनों को बांटा नहीं जा सकता। किन्तु आज हमारी बुद्धि इतनी भेद प्रधान बन गई है कि उसमें अभेद की बात को जोड़ना एक प्रश्न बना हुआ है। इन वर्षों में वैज्ञानिक परीक्षणों ने अनेक अवधारणाओं को बदल डाला। अतीत की पीढ़ी के किसी व्यक्ति से पूछा जाए—सूरज घूमता है या पृथ्वी ? उसका उत्तर होगा—सूरज घूमता है, पृथ्वी स्थिर है। वर्तमान विद्यार्थी इसी प्रश्न के उत्तर में कहेगा—पृथ्वी घूमती है, सूरज स्थिर है। यह एक बड़ा परिवर्तन है। प्राचीन व्यक्ति बीमारी का कारण बतलाएगा—वात, पित्त और कफ का वैषम्य। वर्तमान में कहा जाएगा—बीमारी किसी कीटाणु का परिणाम है। वैज्ञानिक क्षेत्र में निरन्तर चल रहे प्रयोग और परीक्षणों से बहुत कुछ असंभव लगने वाली बातें सभव बनी हैं। सह-अस्तित्व का व्यक्ति-व्यक्ति की चेतना में अवतरण असंभव नहीं है किन्तु वह प्रयोग और प्रशिक्षण साध्य है। आज तक सह-अस्तित्व के विकास की दृष्टि से आवश्यक प्रयोग और प्रशिक्षण—दोनों नितांत उपेक्षित रहे हैं।

भेद है उपयोगिता : अभेद है वास्तविकता

सह-अस्तित्व को व्यावहारिक बनाने की दिशा में सोचें तो यह दर्शन स्पष्ट होगा कि मनुष्य में भेद भी है, अभेद भी है। भेद यदि उपयोगिता है तो अभेद वास्तविकता है। एक जाति है ब्राह्मण। यह एक उपयोगिता है। ओसवाल एक जाति है और उसकी अपनी उपयोगिता है। अमुक आदमी सुजानगढ़ का है, अमुक आदमी लाडनूं का है—यह भी एक उपयोगिता से उपजा भेद है। किन्तु जब बच्चा जन्म लेता है तब न वह ब्राह्मण होता है, न वह ओसवाल होता है, न वह किसी गांव का होता है। न वह हिन्दु होता है, न वह मुसलमान होता है। बच्चा केवल बच्चा होता है। यह कह सकते हैं कि बच्चा मां-बाप से आनुवंशिक संस्कार लेकर आता है। भगवती सूत्र में बतलाया गया—बच्चा तीन अवयव माता से लेकर आता है, तीन अवयव पिता से लेकर आता है। आनुवंशिकता के साथ भी यह बात जुड़ती है। ये भेद निर्मित हुए थे उपयोगिता के लिए, किन्तु उन्हें वास्तविक मान लिया गया और यही मान्यता समस्याओं के उलझाव का कारण बनी। आज कहीं एक अन्तर्जातीय विवाह होता है, समाज में हलचल मच जाती है। एक राष्ट्र का आदमी दूसरे राष्ट्र में चला जाता है तो दंडित भी हो जाता है, बिना बीजा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह प्रविष्ट ही नहीं हो सकता। उपयोगिता को ही इतना अभेद मान लिया गया कि कहीं अभेद रहा ही नहीं।

इस सह-अस्तित्व के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने के लिए सतत प्रशिक्षण की जरूरत है। प्रारंभ से ही एक छोटे बच्चे को प्रशिक्षण दिया जाए कि साथ में रहना है, साथ में जीना है, साथ में पढ़ना है और श्वास भी साथ में लेना है। इस बात का गहरा प्रशिक्षण हो तो सामाजिक जीवन की जो सबसे बड़ी समस्या है, जो भेदात्मक और विरोधात्मक समस्या है, उसका समाधान खोजा जा सकता है।

समाज का मूल आधार : सह-अस्तित्व

अहिंसा का एक दूसरा नाम है—समृद्धि। समृद्धि नाम धन का भी है। अध्यात्म जगत् में समृद्धि नाम है अहिंसा का। समाज के दो रूप बनते हैं—स्वस्थ समाज और रुग्ण समाज। उसका दूसरा संदर्भ है—समृद्ध समाज और दरिद्र समाज। वर्तमान की समस्याओं के संदर्भ में समाज की स्थिति का निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि वर्तमान समाज स्वस्थ समाज नहीं है, रुग्ण समाज है। वर्तमान समाज समृद्ध नहीं है, दरिद्र है। समाज का मूल आधार है—सह-अस्तित्व। जिस समाज में उसका विकास नहीं होता, उसे स्वस्थ और समृद्ध समाज नहीं कहा जा सकता। स्वास्थ्य के लिए कितनी ही योजनाएं चलें, कितना ही औद्योगिक विकास हो जाए, कितना ही व्यावसायिक विकास हो जाए और कितनी ही संपदा बढ़ जाए किन्तु जब तक सह-अस्तित्व की प्रतिष्ठा नहीं है, समाज समृद्ध नहीं हो सकता।

समस्या है परस्परता का अभाव

आचार्य उमास्वाति का एक सूक्त है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्।" सह-अस्तित्व के संदर्भ में यह सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न था—जीवों का उपकार क्या है? उत्तर दिया गया—परस्परता की अनुभूति। जहां स्वामी-सेवक और मालिक-नौकर का भेद आता है वहां झगड़ा होता है। जहां गुरु-शिष्य का भेद आएगा वहां भी झगड़ा होगा। जहां अधिकारी और कर्मचारी का भेद है, वहां भी झगड़ा होता है। झगड़ा होना एक समस्या है। इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया—यह स्तर का भेद हो सकता है किन्तु यदि उसके पीछे परस्परता का सूत्र होता है तो भेद समस्या नहीं बनता। स्वामी काम लेना चाहता है और नौकर काम करना नहीं चाहता। यह समस्या परस्परता के अभाव में पनपती है। नौकर चाहता है, काम कम से कम करूं और पैसा अधिक से अधिक लूं। मालिक चाहता है, अधिक से अधिक काम लूं और कम से कम पैसा दूं। उनमें परस्परता की अनुभूति नहीं है। औद्योगिक जगत् में, व्यावसायिक जगत् में, शिक्षा के जगत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में—सब जगह झगड़ा चल रहा है और इसका कारण है—परस्परता की कमी।

परस्परता की अनुभूति होने का अर्थ यह नहीं है कि स्वामी-सेवक का सम्बन्ध समाप्त हो जाए। उसका अर्थ है—स्वामी-सेवक के संबंध का दृष्टिकोण बदल जाए। परस्परता की अनुभूति का सूत्र विकसित होने पर एक स्वामी सोचेगा—उचित दाम दूं और उचित काम लूं। ठीक प्रकार से इसका भरण पोषण हो सके—यह व्यवस्था मुझे करनी है। नौकर का दृष्टिकोण होगा—मैं उचित ढंग से काम करूं। जितना काम करूं उससे ज्यादा पाने की चेष्टा न करूं। यह परस्परता की अनुभूति का परिणाम है।

जरूरी है प्रशिक्षण और प्रयोग

परस्परता की अनुभूति, मानवीय एकता की अनुभूति, आश्वास, विश्वास और अभय—ये हैं सह-अस्तित्व के आधार सूत्र। जब ये शिक्षा के अंग बनेंगे, सह-अस्तित्व का वातावरण बनेगा। जब सह-अस्तित्व का विकास होगा तब सामाजिक जीवन की समस्याओं का समाधान स्वतः उपलब्ध होगा। केवल बातों से या कुछेक वक्तव्यों से समस्या का समाधान खोजना चाहें, करना चाहें तो वह संभव नहीं है। इसके लिए प्रशिक्षण की गहरी जड़ों तक पहुंचना होगा। वहां पहुंचकर ही सामाजिक जीवन की जो सबसे बड़ी समस्या है, विरोध और भेद की समस्या है, उसका समाधान पाया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. आर्थिक जीवन और सापेक्षता

जीवन के अनेक पहलुओं में आर्थिक पहलू संभवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक जटिल है। आर्थिक जीवन—यह वाक्य अनेक शब्दों की परिक्रमा कर रहा है। उसके दस पहलु हैं :—

१. इच्छा	६. शोषण
२. आवश्यकता	७. अपराध
३. उपार्जनवृत्ति	८. हिंसा
४. स्वामित्व	९. अशान्ति
५. भोग	१०. युद्ध

इच्छा : प्राणी का लक्षण

आर्थिक जीवन का पहला पहलू है—इच्छा। प्रत्येक प्राणी के साथ जुड़ी हुई जो सबसे पहली समस्या है वह है इच्छा। इच्छा प्राणी का एक लक्षण है। अप्राणी और प्राणी में भेदरेखा खींचने का सबसे पहला माध्यम है—इच्छा। अप्राणी में इच्छा नहीं होती। जिनमें मानसिक चेतना नहीं होती, उनमें भी इच्छा होती है। वनस्पति के जीव अविकसित हैं, उनमें भी इच्छा होती है। इच्छा जीव का ऐसा सामान्य लक्षण है जो अत्यन्त अविकसित जीव से लेकर विकसित जीव तक—सबमें उपलब्ध होता है। इच्छा जीव का लक्षण है तो इच्छा एक समस्या भी है। जब इच्छा असीम बन जाती है, तब वह स्वयं एक समस्या का रूप ले लेती है।

असीम इच्छा : एक समस्या

पति ने पत्नी के पूछा—क्या तुम्हें कभी अपनी बात पर भी गुस्सा आता है ?

पत्नी ने कहा—आता है।

पति - कब आता है ? क्यों आता है ?

पत्नी—जब मैं तुम्हें साड़ी खरीदने के लिए कहती हूं और तुम तत्काल खरीद देते हो, तब मुझे अपनी बात पर बड़ा गुस्सा आता है।

पति—मैं इस बात को नहीं समझ सका। गुस्सा तो तब आना चाहिए जब मनचाही वस्तु नहीं मिलती। जब तुम्हारी मनचाही बात हो जाती है, तब गुस्सा क्यों आता है ?

पत्नी ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा—उस समय मैं सोचती हूं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं कितनी मूर्ख हूं। मैंने मात्र साड़ी के लिए ही क्यों कहा, मैंने जेवर के लिए क्यों नहीं कहा ? और मुझे अपनी ही बात पर गुस्सा और खीज आने लग जाती है।

जब इच्छा असीम बनती है, व्यक्ति समस्या से घिर जाता है। यह इच्छा न जाने कितनी भावनाएं, कितनी वृत्तियां और कितनी समस्याएं पैदा करती है।

मार्क्सवाद की उत्पत्ति का मूल बीज

आर्थिक जीवन का दूसरा पहलू है—आवश्यकता। जीवन के साथ आवश्यकता जुड़ी हुई है। कोई भी व्यक्ति आवश्यकता विहीन जीवन नहीं जी सकता। रोटी की आवश्यकता, पानी की आवश्यकता, कपड़ों की आवश्यकता, मकान की आवश्यकता, दवा की आवश्यकता। कोई अन्त नहीं आवश्यकताओं का। उसकी तालिका इतनी लम्बी है कि आज तक कोई भी उस तालिका को बना नहीं पाया और शायद वह बनाई भी नहीं जा सकती।

जब आदमी इच्छा से संचालित होता है तब कृत्रिम आवश्यकताएं भी बहुत पैदा हो जाती हैं। मार्क्सवाद—आज बहुत प्रसिद्ध राजनीतिक प्रणाली बन गया है। उसकी उत्पत्ति के मूल में आवश्यकता का बीज था। मार्क्स ने देखा—उसका लड़का भूख से तड़पते हुए प्राण छोड़ रहा है। उसके मन में प्रश्न उठा—भूख क्या है ? क्या इसी के द्वारा सब कुछ संचालित हो रहा है ? इस प्रश्न की खोज में एक नया अर्थशास्त्र प्रस्फुटित हो गया। मार्क्सवाद—राजनीति की नई साम्यवादी प्रणाली विकसित हो गई। कोई भी व्यक्ति आवश्यकता से मुक्त नहीं हो सकता। कोई भी शरीरधारी प्राणी आवश्यकता विहीन नहीं हो सकता।

उपार्जन और स्वामित्व

आर्थिक जीवन का तीसरा पहलू है—उपार्जनवृत्ति। मनोविज्ञान ने कुछ मौलिक मनोवृत्तियां मानी हैं। उनमें एक है—उपार्जनवृत्ति। मनुष्य में उपार्जन करने की वृत्ति होती है। मनुष्य में ही नहीं, प्रत्येक प्राणी में यह वृत्ति उपलब्ध है। वह प्रकृति से ही उपार्जन करता है।

इस मौलिक मनोवृत्ति का संवेग है—स्वामित्व की भावना, अधिकार की भावना। प्राणी केवल उपार्जन ही नहीं करता किन्तु उस पर अपना स्वामित्व जताता है, अधिकार करता है। आर्थिक जीवन का चौथा पहलू है—स्वामित्व की भावना।

भोग : परिग्रह का फल

आर्थिक जीवन का पांचवां पहलू है—भोग। आर्थिक जीवन के साथ भोग की बात जुड़ी हुई है। प्रश्नव्याकरणसूत्र में एक रूपक के माध्यम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह का वर्णन किया गया है। पूछा गया, परिग्रह का जो एक पेड़ है, उसका फल क्या है ? उत्तर दिया गया—काम-भोग उसके पुष्प-फल हैं। यदि भोग की बात न हो, भोग की आसक्ति न हो तो आर्थिक जीवन बदल जाए। भोगासक्ति के कारण आर्थिक जीवन और अधिक जटिल बन जाता है।

आर्थिक जीवन का एक पहलू : शोषण

आर्थिक जीवन का छठा पहलू है—शोषण। मनुष्य अधिक पाने का प्रयत्न करता है, इसलिए वह दूसरे का शोषण करता है। अधिक पाना है तो दूसरे का शोषण करना ही होगा। कहा जाता है—व्यक्ति न्यायोचित तरीके से कमाए, अपनी जीविका चलाए, दूसरे का शोषण न करे। जैन आगमों में कहा गया है—एक त्यागी आदमी धर्म के द्वारा अपनी जीविका का संचालन करता है। नीतिशास्त्र का शब्द है—'न्याय' और धर्मशास्त्र का शब्द है—'धम्मेण वित्तिं कप्पेमाणा'। जहां न्यायोचित तरीके से या धर्म की दृष्टि से उपार्जन की बात छूट जाती है, वहां शोषण पनपता है।

कर्मवाद : एक अवधारणा

हिन्दुस्तान में एक आम धारणा है कि गरीब आदमी अपने कर्म से गरीब बनता है और अमीर आदमी अपने कर्म से अमीर बनता है। जिसने अच्छा कर्म किया है, वह धनवान बनता है, अमीर बनता है। जिसने बुरा कर्म किया है, वह धनहीन बनता है, गरीब बनता है। इस धारणा ने आर्थिक समस्या को अधिक जटिल बनाया है। इससे आर्थिक समस्या उलझी है। एक आदमी कमाता चला जाता है। वह सोचता है—मैंने अच्छे कर्म किए हैं, अच्छा कार्य किया है इसलिए अच्छा पैसा मिल रहा है। इस भावना के आधार पर वह निरपेक्ष हो जाता है, समाज की अपेक्षा नहीं रखता।

गरीबों में भी यह धारणा व्यापक बनी हुई है। बहुत सारे गरीब इसी धारणा के आधार पर अपना शांत जीवन चला रहे हैं। वे कहते हैं—हमने पूर्व जन्म में ऐसे ही कर्म किए हैं, अतः उन्हें भुगत रहे हैं। बहुत बार प्रश्न होता है कि हिन्दुस्तान में आर्थिक क्रांति क्यों नहीं हुई ? इतनी गरीबी होने के बाद भी साम्यवाद क्यों नहीं फैला ? उसका एक अवरोधक कारण है। यहां के आम आदमी के मन में एक धारणा जमी हुई है कि गरीबी मेरे कर्म का फल है, भाग्य का फल है। यदि यह धारणा नहीं होती तो शायद आज से पहले ही रक्तक्रांति का प्रश्न प्रस्तुत हो जाता। इस धारणा ने एक रुकावट पैदा कर रखी है। शोषण के साथ भी यह भाग्यवादी या कर्मवादी अवधारणा जुड़ी हुई है।

अपराध का कारण : आर्थिक असंतुलन

आर्थिक जीवन का सातवां पहलू है—अपराध। मनोविज्ञान में अपराध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अनेक कारण बतलाए गए हैं। उनमें एक है—आर्थिक असंतुलन। आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती हुई स्पर्धा ने अपराध को पनपने का अवसर दिया है। एक आदमी दूसरे से आगे बढना चाहता है। अर्थ की इस स्पर्धा से अपराध को पल्लवन मिला है। एक बड़े उद्योगपति से व्यक्तिगत बातचीत में मैंने पूछा—तुमने इतना अत्याचार क्यों किया? इतने अतिक्रमण क्यों किए? इतने जघन्य काम क्यों किए? इतने अपराध क्यों किए? उसने बहुत साफ-साफ कहा—जब मैं उद्योग में सफल होता गया तो मेरे मन में एक भावना जागी। मैंने निर्णय किया—मुझे हिन्दुस्तान का प्रथम नंबर का उद्योगपति बनना है। इस भावना ने मुझसे ये सारे अपराध करवाए।

आर्थिक प्रतियोगिता ने अपराध को जन्म दिया है और इस आर्थिक प्रतियोगिता के कारण ही नैतिक-अनैतिक जैसी अवधारणाएं ही समाप्त हो गई हैं। कोई भी आदमी अनैतिक आचरण करने में सकुचाता नहीं। उसके दिमाग में केवल यही बात घूमती है कि मैं सबको पीछे छोड़कर आगे चला जाऊं।

निर्धनता भी अपराध का कारण

निर्धनता भी अपराध का एक कारण है। गरीबी के कारण भी आदमी अपराध करता है। सारे निर्धन या गरीब आदमी अपराध नहीं करते। निर्धन आदमी बड़े ईमानदार और नैतिक होते हैं किन्तु अपराध का एक कारण निर्धनता या गरीबी भी है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। अपराध का एक कारण बेरोजगारी है। रोजी-रोटी का कोई साधन उपलब्ध नहीं होता है तो व्यक्ति अपराध में चला जाता है।

एक चोर से पूछा गया—तुम चोरी क्यों करते हो? उसने कहा—चोरी करना मेरी आदत नहीं है। मैं चोरी करना भी नहीं चाहता। किन्तु कोई रोजगार का साधन नहीं है, कोई काम-धंधा नहीं मिल रहा है। इस स्थिति में मैं क्या करूं? बाल-बच्चों का भरण-पोषण कैसे हो? यह बेरोजगारी मुझसे चोरी करवाती है।

अपराध : बिना श्रम किए पाने की मनोवृत्ति

अपराध का एक कारण है—लालच। मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा है। वह श्रम कम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढावा मिलता है। अपराध यानी बिना श्रम किए पैसा पाने की मनोवृत्ति। दुकान में बैठकर कमाने में काफी श्रम करना पड़ता है। अनेक व्यक्ति मिलकर अपना गिरोह बना लेते हैं, डकैती करते हैं, डाका डालते हैं। जो धन उन्हें साल भर के सतत परिश्रम से मिलता है, उसे वे एक ही रात में पाने की कोशिश करते हैं। या ऐसी गुप्त सूचनाएं एकत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं और उसे विरोधी सरकार तक, संबद्ध व्यक्ति तक पहुंचा देते हैं ताकि लाखों-करोड़ों रुपए एक साथ मिल जाए। हेरोइन आदि मादक वस्तुओं का धंधा भी बिना श्रम किए पैसा पाने का एक उपाय है। बिना श्रम किए सीधा धन प्राप्त करने की इस मनोवृत्ति से अपराध को एक नया आयाम मिला है।

आज मनुष्य की आवश्यकताएं निरंतर बढती जा रही हैं। उनकी कोई सीमारेखा नहीं है। यह अति आवश्यकता भी अपराध का एक कारण है।

हिंसा क्यों ?

आर्थिक जीवन का आठवां पहलू है—हिंसा। परिग्रह और हिंसा को अलग नहीं किया जा सकता। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैन आगमों में प्रश्न व्याकरण, आचारांग, सूत्रकृतांग आदि में इस पर बहुत विमर्श हुआ है कि आदमी हिंसा क्यों करता है ? इस संदर्भ में "वह पाने के लिए" वह पाने के लिए" इस शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। आदमी हड्डियों के लिए हिंसा करता है, सींगों के लिए हिंसा करता है, दांतों के लिए हिंसा करता है। पहले मैं सोचता था कि हिंसा के लिए इतने नाम क्यों गिनाए गए, इतना विस्तार क्यों दिया गया ? किन्तु आज जब हिंसा के कारणों की मीमांसा सामने आती है, तब यह विस्तार बहुत सार्थक लगता है।

परिग्रह के लिए हिंसा

आज गैंडा जाति समाप्त हो रही है। सींग के लिए गैंडों को मारा जा रहा है। गैंडों का सींग बहुत कीमती है। उसके बदले में अपार विदेशी मुद्रा मिल जाती है। गैंडें के मारे जाने पर प्रतिबंध है फिर भी उनकी हत्या के प्रयत्न निरंतर चल रहे हैं। आज कस्तूरी-मृग दुर्लभ हो रहे हैं। कस्तूरी के लिए उन्हें मारा जा रहा है। हाथी दांतों के लिए मारे जा रहे हैं। बहुत सारे बाघ और चीते खाल के लिए मारे जा रहे हैं। यह व्यवसाय बहुत व्यापक बन गया है। आर्थिक पक्ष को सुदृढ बनाने के लिए ये सारे अपराध हो रहे हैं।

परिग्रह हिंसा का मुख्य हेतु है। 'हिंसा परिग्रह के लिए है' या 'हिंसा हिंसा के लिए है, यदि इस प्रश्न की समीक्षा की जाए तो "हिंसा हिंसा के लिए" इसे कम अंक मिलेंगे और "हिंसा परिग्रह के लिए" इसे अधिक अंक मिलेंगे।

अशांति : अभाव और अतिभाव

आर्थिक जीवन का नौवां पहलू है—अशांति। आज की जागतिक समस्या है अशांति। अर्थ का अभाव है तो भी अशांति और अर्थ है तो भी अशांति। दोनों ओर से अशांति बढ़ रही है। जिनके पास अर्थ नहीं है, उनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशांति स्वाभाविक है। प्रातःकाल ही उनके सामने प्रश्न आता है कि रोटी कहां से आएगी ? नाश्ता कहां से आएगा ? बच्चे स्कूल कैसे जाएंगे ? रोटी की समस्या अशांति का कारण बन जाती है। जिन लोगों के पास अर्थ की अधिकता है, वे भी अशांत है। प्राप्त धन की कैसे सुरक्षा की जाए, उसे कैसे बचाया जाए ? कैसे रखा जाए ? करों से कैसे बचाया जाए ? आज किसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उसे कहां रखा जाए ? ये प्रश्न मनुष्य को निरंतर अशांत बनाए रखते हैं। आज वकीलों और आर्थिक सलाहकारों की इतनी भीड़ लग गई, चार्टेड एकाउन्टेंटों की इतनी लम्बी कतार खड़ी हो गई, फिर भी अर्थ को पूरा बचाने की बात शायद उसकी समझ में नहीं आती।

पहली समस्या है आर्थिक

आर्थिक जीवन का दसवां पहलू है—युद्ध। आर्थिक प्रणाली के आधार पर युद्ध की समस्या भी सामने आती है। हम विश्व शांति, निःशस्त्रीकरण, युद्धवर्जन इन सारे पहलुओं पर चिंतन करें तो सबसे पहले आर्थिक जीवन की बात आएगी। युद्धवर्जन, निःशस्त्रीकरण, शस्त्रीकरण—इन सबका स्थान दूसरा या तीसरा होगा। पहली बात होगी—आर्थिक समस्या को कैसे सुलझाया जा सकता है ? उसका समीकरण कैसे किया जा सकता है ? यह एक बहुत जटिल प्रश्न है।

आर्थिक जीवन के ये दस पहलू हैं। इन दस शब्दों की परिधि में घूम रहा है आर्थिक जीवन।

समस्या का एक पहलू है कि समस्या तो है पर उसका समाधान क्या हो सकता है ? आर्थिक समस्या के समाधान के लिए साम्यवाद की प्रणाली का सूत्रपात हुआ। साम्यवादी प्रणाली ने इस आशा को जन्म दिया कि गरीबी मिट जाएगी, जीवन हल्का हो जाएगा। किन्तु ऐसा लगता है उससे गरीबी मिटी नहीं, समस्या का बोझ हल्का नहीं हुआ।

डाक्टर के पास रोगी आया। वह एक सप्ताह से दवा ले रहा था। डाक्टर ने उसे देखा और बोला—भाई ! मैंने इतनी दवाइयां दी हैं। लगता है अब तुम्हारी तबियत हल्की हो गई है। रोगी ने कहा—डॉक्टर साहब ! तबियत तो हल्की नहीं हुई है, जेब अवश्य हल्की हो गई है।

समाधान का सूत्र : सापेक्षता

आर्थिक जीवन से दिमाग पर एक भारीपन, एक बोझ आ गया है। वह हल्का नहीं हो रहा है। प्रश्न है उसमें हल्कापन कैसे आ सकता है ? इस आर्थिक समस्या का समाधान क्या है ? समाधान की चर्चा के संदर्भ में एक शब्द सामने आता है सापेक्षता। अनेकान्त का एक सूत्र है—सापेक्षता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुझे लगता है—वर्तमान आर्थिक समस्या का सापेक्षता एक समाधान बन सकता है। सापेक्षता का प्रयोग दार्शनिक क्षेत्र में बहुत हुआ है। जैन आचार्यों ने दार्शनिक विरोधों को मिटाने में इस सिद्धांत का व्यापक उपयोग किया। सामान्य बात पूछी गई—यह अंगुली छोटी है या बड़ी। इसका सापेक्ष उत्तर दिया गया—अंगुली छोटी भी है, बड़ी भी है। तीसरी बड़ी अंगुली की अपेक्षा से यह छोटी है। पहली या चौथी अंगुली की अपेक्षा से यह बड़ी है। सापेक्षता को समझाने के लिए ऐसे अनेक निदर्शन दिए गए हैं। प्रश्न किया गया—यह रेखा छोटी है या बड़ी। इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। यदि रेखा के पास एक छोटी रेखा खींचे तो कहा जा सकता है कि रेखा बड़ी है। यदि बड़ी रेखा खींच दी जाए तो कहा जा सकता है कि यह रेखा छोटी है। अपेक्षाकृत दूरी और अपेक्षाकृत निकटता। सापेक्षता के द्वारा ही सम्यक् समाधान संभव बन सकता है।

महर्षि कुत्स के हाथ में एक कमण्डलु था। उन्होंने शिष्य से पूछा—बताओ, यह खाली है या भरा हुआ है। आधा पानी था उसमें। अब क्या उत्तर दे। शिष्य उलझन में पड़ गया। गुरु से ही रहस्य बताने का अनुरोध किया। महर्षि ने कहा—खाली भी है, भरा हुआ भी है। आधा पानी है, इसलिए खाली नहीं है। कमंडलु पूरा भरा हुआ नहीं है, इसलिए खाली भी है। यह है सापेक्षता।

सापेक्षवाद : नया संदर्भ

जैन दर्शन ने सापेक्षता के सूत्र से अनेक समस्याओं को सुलझाया है। दूसरे दर्शनों ने भी यत्किंचित् इस सिद्धांत का उपयोग किया है। इस युग के महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने गणित की अनेक समस्याओं का अपेक्षा के द्वारा हल प्रस्तुत किया और एक नया अपेक्षावाद विश्व के सामने अभिव्यक्त किया। अनेकान्तवाद का जो अपेक्षावाद था उसे वैज्ञानिक जगत् में एक नया संदर्भ मिल गया। वर्तमान आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में सापेक्षवाद का प्रयोग किया जाए तो उसे एक और नया आयाम मिल जाएगा।

अध्यात्म की सापेक्षता

सापेक्षवाद के दो पहलु हैं—अध्यात्म-सापेक्ष और समाज-सापेक्ष। भगवतीसूत्र में एक प्रसंग है—एक मुनि अपने लिए बनाया हुआ भोजन नहीं करता। इसका कारण बतलाते हुए सूत्रकार कहते हैं—वह मुनि पृथ्वीकाय की अपेक्षा रखता है, अप्काय के जीवों की अपेक्षा रखता है। तेजस्काय के जीवों की अपेक्षा रखता है। वायुकाय के जीवों की अपेक्षा रखता है। वनस्पति काय के जीवों की अपेक्षा रखता है। त्रसकाय के जीवों की अपेक्षा रखता है। इसलिए वह अपने लिए बना हुआ भोजन नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अपेक्षा अध्यात्मवाद की सापेक्षता है। मुनि जीवों के प्रति निरपेक्ष नहीं हो सकता। निरपेक्ष होने का अर्थ है—क्रूर होना, निर्दयी होना। मुनि निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष होता है इसलिए वह जीवों की हिंसा करना नहीं चाहता और कराना भी नहीं चाहता।

सामाजिक समस्या और सापेक्षता

सामाजिक समस्या को सुलझाने में सापेक्षता एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। सापेक्षता होती है तो शोषण नहीं हो सकता। सापेक्षता होती है तो अपराध नहीं हो सकता, सापेक्षता होती है तो हिंसा नहीं हो सकती, युद्ध नहीं हो सकता। ये सारे कार्य निरपेक्षता के कारण किए जाते हैं। जब व्यक्ति निरपेक्ष हो जाता है तब वह सोचता है कि कोई कुछ भी करे मुझे क्या लेना-देना। बहुत सारे लोग यही कहते हैं कि मुझे प्रचुर सामग्री मिल गई। दूसरे को मिले या न मिले उससे मुझे क्या? कोई मरे या जीए—मुझे क्या लेना देना। यदि पडोसी भूखा है तो वह अपने कर्म भोगे, मैं उसकी चिंता क्यों करूं। यह निरपेक्ष बात है। एक समाज का व्यक्ति समाज से निरपेक्ष होकर इस प्रकार का चिंतन करता है तो आर्थिक समस्या कभी सुलझाई नहीं जा सकती। आर्थिक जीवन का बोझ कभी हल्का नहीं हो सकता।

क्षमता : स्वामित्व

मैंने आर्थिक जीवन के जिन दस पहलुओं की चर्चा की, उनमें सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला पहलू है—स्वामित्व। जब तक स्वामित्व को सापेक्ष नहीं बनाया जाएगा, आर्थिक समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा। उपार्जन करना व्यक्ति की अपनी एक विशेषता है। किसी आदमी में क्षमता है, वह बहुत धन कमा लेता है। एक आदमी में व्यावसायिक बुद्धि नहीं है, वह धन नहीं कमा सकता। उपार्जन की क्षमता का होना तथा न होना व्यावसायिक योग्यता या अन्य कारणों पर निर्भर करता है। किन्तु स्वामित्व का होना—यह बिल्कुल दूसरा प्रश्न है। इन प्रश्न पर सामाजिक और आध्यात्मिक—दोनों दृष्टियों से विचार किया गया।

इच्छा-परिमाण अर्थ की सीमा

भगवान् महावीर ने एक व्रत दिया—इच्छा-परिमाण। इच्छा का परिमाण करो, सीमा करो। इच्छा-परिमाण का अर्थ है—परिग्रह का परिमाण, आर्थिक जीवन की सीमा। स्वामित्व के सीमांकन का यह सूत्र अध्यात्म के क्षेत्र से उद्भूत हुआ है।

अर्थ की सीमा—साम्यवाद का मूल सूत्र रहा है। साम्यवाद ने प्रारंभ में तो व्यक्तिगत स्वामित्व को मान्य ही नहीं किया। किन्तु आदमी का स्वार्थ के प्रति बड़ा आकर्षण होता है। वह स्वार्थ छोड़ना नहीं चाहता। जहां समूह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात आती है, कम्यून की बात आती है, कार्य में व्यवधान आ जाता है। एक कार्य दस व्यक्तियों को करना है तो वह कार्य पूरा नहीं हो पाएगा। प्रत्येक व्यक्ति सोचेगा—यह कर लेगा, वह कर लेगा। कार्य अधूरा ही रह जाएगा।

कम्यून का दोष

एक पौराणिक कहानी है। चक्रवर्ती के विमान को सोलह हजार देवता उठाकर ले जा रहे थे। एक ने सोचा—मैं अकेला छोड़ दूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा। पन्द्रह हजार नौ सौ निन्यानवें शेष हैं। जब एक सोचता है तो दूसरा क्यों नहीं सोच सकता? दूसरे ने भी वैसा ही सोचा, तीसरे ने भी वैसा ही सोचा। सबने एक जैसी ही बात सोची और विमान को एक साथ छोड़ दिया। विमान नीचे समुद्र में जा गिरा।

यह समूहवाद का, कम्यून का एक दोष है।

राजा ने आदेश दिया—नवनिर्मित तालाब को दूध से भरना है। प्रत्येक नागरिक इसमें एक-एक लोटा दूध डाले। एक व्यक्ति ने सोचा—इतना बड़ा नगर है। इतने लोग दूध डालेंगे। दूध के लाखों लोटों से तालाब भर जाएगा। मेरा एक पानी का लोटा गिर जाएगा तो क्या पता चलेगा। पानी तो दूध में ऐसे ही मिलाया जाता है। प्रातःकाल हुआ। राजा और मंत्री इस आशा के साथ तालाब पहुंचे कि एक नई बात होगी, राज्य का तालाब दूध से भरा हुआ मिलेगा। पानी से भरा तालाब देख कर राजा निराश हो गया। एक व्यक्ति का विचार समग्र जनता से संक्रांत हो गया। तालाब में एक भी लोटा दूध का नहीं गिरा।

वैयक्तिकता : व्यक्तिवाद

यह समूहवाद की समस्या है। व्यक्तिगत आकर्षण के बिना काम करने की प्रेरणा नहीं जागती। इसलिए वैयक्तिकता मूल्य भी हम कम नहीं कर सकते। एक ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत प्रेरणा का प्रश्न है तो दूसरी ओर व्यक्तिवाद एक समस्या है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ही भरना चाहता है। दूसरे की चिंता ही नहीं करता। इस व्यक्तिवाद के आधार पर शोषण को बढ़ावा मिलता है। दोनों ओर समस्या है। सापेक्ष स्वामित्व इस दोहरी समस्या का एक समाधान है।

आध्यात्मिक सापेक्षवाद

अध्यात्म के क्षेत्र में कहा गया है—यदि तुम धार्मिक बनना चाहते हो, आध्यात्मिक बनना चाहते हो तो हिंसा को छोड़ो। हिंसा को छोड़ने का अर्थ है—प्रत्येक प्राणी की अपेक्षा रखो, निरपेक्ष होकर मत रहो। क्रूर होकर मत चलो। जब यह सिद्धांत जीवनगत होगा तो प्रत्येक वस्तु के स्वामित्व की सीमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात स्वतः फलित हो जाएगी। एक आध्यात्मिक व्यक्ति या मुनि को पांच रोटियां मिली हैं। उन रोटियों को लाने वाला वह अकेला है और उसके चार साथी और हैं तो स्वामित्व की सीमा होगी। यह नहीं हो सकता है कि मैं लाया हूं तो मेरा ही स्वामित्व होगा। उसकी ऐसी चेतना ही नहीं होती है। वह सोचता है—इन रोटियों को मैं लाया हूं, यह उपार्जन मेरा है पर स्वामित्व मेरा नहीं हैं। उसका चिंतन होता है—पांच रोटियां पांचों में बंट जाए और प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में एक-एक रोटी अवश्य आए।

तेरापंथ धर्मसंघ में संविभाग की व्यवस्था है। एक मुनि दस घरों में जाए और कुछ भी लाए किन्तु जितने संभागी मुनि हैं उन्हें बराबर का हिस्सा देना पड़ेगा। वह यह नहीं कह सकता कि मैं लाया हूं तो मुझे अधिक मिलना चाहिए। उसमें सब का समभाग है। यह आध्यात्मिक सापेक्षवाद है।

समस्या का समाधान : स्वामित्व का सीमांकन

समाज के द्वारा भी व्यक्तिगत स्वामित्व का सीमाकरण किया गया। साम्यवाद में भी अब सीमित व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार दिया गया है किन्तु असीम स्वामित्व किसी का नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान का आदमी सोचता है—मैं इतना धन कमा लूं कि सात पीढ़ियां सुखी हो जाए। साम्यवादी देशों में यह अधिकार ही नहीं है। जहां बाप का धन बेटे को न मिले वहां सात पीढ़ी की बात ही नहीं आ सकती। व्यक्ति ने अपने जीवन में कमाया, खाया और मरने के बाद वह संपत्ति समाज की है। जहां सम्पत्ति का समाजीकरण हो जाता हैं वहां सात पीढ़ी की चिंता को कोई अवकाश नहीं मिलता। साम्यवाद द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमांकन का यह सूत्र आर्थिक जीवन की जटिलता को समाप्त करने का एक हेतु बनता है, निमित्त बनता है।

सापेक्षवाद के इन दो पहलुओं—आध्यात्मिक सापेक्षता और सामाजिक सापेक्षता का विस्तार किया जाए तो आशा की जा सकती है कि आर्थिक जीवन की जटिलताएं कम होंगी। यदि इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो अपराध, शोषण, हिंसा, युद्ध आदि पर ध्यान देने की कोई सार्थक निष्पत्ति होगी। ऐसा नहीं लगता। या तो हम स्वामित्व की सीमा के सूत्रों को पकड़ें या इस चर्चा को छोड़ दें और जो कुछ हो रहा है उसे होने दें। जो कुछ चल रहा है, उसे चलने दें, किन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति यथास्थिति नहीं चाहता। वह समाज का विकास और समृद्धि चाहता है, समाज को स्वस्थ बनाना चाहता है। इसके लिए व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमांकन पर उसे अवश्य विचार करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. वैचारिक जीवन और समन्वय

मनुष्य : एक विशिष्ट प्राणी

दुनिया में अनन्त-अनन्त प्राणी हैं। विश्व का एक-एक कण, आकाश का एक-एक प्रदेश जीवों से भरा हुआ है। इतने जीव हैं, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती, जिन्हें नापा नहीं जा सकता। असंख्य नहीं, अनंत-अनंत जीव हैं इस संसार में। इन सब जीवों में मनुष्य एक प्राणी है। उसकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। जो विशेषताएं मनुष्य में हैं, वे दूसरे प्राणियों में नहीं हैं। अन्तर्ग्रहीय या अन्तर्नक्षत्रीय किसी भी भूखण्ड में रहने वाले प्राणी में मनुष्य जितनी विशेषता नहीं है।

मनुष्य की अपनी तीन मौलिक विशेषताएं हैं—विचार, वचन और व्यवहार। विचार करने की क्षमता मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। वचन की जो शक्ति मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। व्यवहार की क्षमता भी जैसी मनुष्य में है, वैसी किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। ये तीन ऐसे गुण हैं, ये तीन ऐसी विशेषताएं हैं, जो मनुष्य को शेष सारे जगत् के प्राणियों से विभक्त कर देती हैं। उसके अस्तित्व को विभक्त कर देती हैं, उसकी अलग पहचान बनाती हैं।

विकास का कारण : वैचारिक क्षमता

चिन्तन मनुष्य की अपनी विशेषता है। मनुष्य जितना सोचता है, चिंतन करता है, वह एक विलक्षण बात है। अपने चिंतन के बल पर उसने बहुत विकास किया है। उसने अपने चिंतन से जगत् को बदल दिया। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में आदमी कहां से कहां पहुंच गया है। विचार ने साहित्य को जन्म दिया, कला को जन्म दिया, सैकड़ों-सैकड़ों नई शाखाओं को जन्म दिया। सब कुछ विचार के कारण हुआ है। विचारशक्ति ने एक नई सृष्टि की और वह मनुष्य की मौलिक विशेषता बन गया।

समृद्ध शब्दकोश

मनुष्य की दूसरी विशेषता है—वचन। पशु-पक्षी भी बोलते हैं किंतु उनकी कोई विशेष भाषा नहीं है। उनका शब्दकोश बहुत सीमित है। उनके शब्दकोश से एक पृष्ठ भी पूरा नहीं भर पाता। किसी की भाषा में छह शब्द हैं, किसी की भाषा में पांच शब्द हैं और किसी की भाषा में दस शब्द हैं। मनुष्य ने भाषा-कोश, शब्दकोश का इतना विस्तार किया कि लाखों-लाखों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दों का कोष बन गया। अगर संयोगी शब्दों का संग्रह करें तो करोड़ों शब्दों का कोश बन जाए। एक ही भाषा का नहीं अपितु संस्कृत, प्राकृत, जर्मन, अंग्रेजी, रशियन आदि दुनिया की अनेक भाषाओं के बहुत विशाल शब्दकोश हैं। मनुष्य की वचन-शक्ति के कारण ये संभव बने हैं। उसने बोलने के तरीकों का विकास किया है। कैसे बोलना चाहिए? कैसे गाना चाहिए? इन सब में मनुष्य ने अपनी विशिष्टता और दक्षता का परिचय दिया है।

व्यवहार में निरन्तर परिष्कार

मनुष्य की तीसरी विशेषता है—व्यवहार। एक भैंसा हजार वर्ष पहले जैसा व्यवहार करता था आज भी वैसा ही व्यवहार करता है। हजारों वर्ष पहले भी वह गाड़ी से जुतता था, आज भी वह गाड़ी से जुतता है। व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। गुस्सा आता है तो गुस्से का प्रदर्शन करता है और किसी को मार डालता है। सांप हजार वर्ष पहले भी फुफकारता था, आज भी फुफकारता है। हजार वर्ष पहले भी डंक मारता था, आज भी मारता है। व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसने अपने व्यवहार में परिवर्तन किया है, परिष्कार किया है। आज व्यवहार की कितनी शाखाएं बन गईं, व्यवहार के कितने शास्त्र बन गए, व्यवहार का मनोविज्ञान बन गया। व्यवहार के आधार पर विधि-निषेधों का एक अंबार खड़ा हो गया। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इन दो शब्दों—विधि और निषेध पर विशाल साहित्य रचा गया। विधिशास्त्र और निषेधशास्त्र का व्यापक विकास हुआ।

व्यवहार होता है त्रयात्मक

सन्मति तर्क की टीका में एक सुन्दर प्रसंग आता है व्यवहार का। पूछा गया— व्यवहार क्या है? उत्तर दिया गया—व्यवहार त्रयात्मक होता है। उसके तीन अंग हैं—प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा। किसी कार्य में प्रवृत्ति, किसी कार्य से निवृत्ति और किसी कार्य की उपेक्षा— व्यवहार के ये तीन आधार हैं। मनुष्य ने अपने सारे व्यवहार को तीन भागों में विभक्त कर दिया। वह किसी कार्य में प्रवृत्त होता है, किसी कार्य से निवृत्त होता है और किसी कार्य की उपेक्षा करता है। जो अच्छा नहीं है, उसे छोड़ता है। जो उपादेय है, उसमें प्रवृत्ति करता है। जो उपेक्षणीय है, उसकी उपेक्षा करता है। प्रत्येक व्यवहार के ये तीन आधार बनते हैं। यदि सारे व्यवहार का समीकरण करें तो वह इन तीनों में समाहित हो जाएगा।

चिन्तन का नया सन्दर्भ : अनेकान्त

व्यवहार अपने तक सीमित नहीं रहता। विचार स्वगत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन और व्यवहार प्रसरणशील हैं, बाहर जाते हैं। हमारा वचन दूसरे तक पहुंचता है। हमारा व्यवहार दूसरे को प्रभावित करता है, दूसरे को छूता है। वचन और व्यवहार दोनों दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन तीनों पर एक नई दृष्टि से विचार करना है।

भगवान् महावीर ने अनेकान्त दृष्टि की प्रस्थापना की। इस विषय की विशद मीमांसा हुई कि हम अपने विचार, वचन और व्यवहार को पहले अनेकान्त दृष्टि से देखें फिर उसका प्रयोग करें। अनेकान्त दृष्टि से देखने पर तीन बातें प्रतिफलित होंगी—

१. विचार का आग्रह न हो।
२. वचन का विवाद न हो।
३. व्यवहार का असंतुलन न हो।

विचार का आग्रह : एक आदत

सामान्यतः प्रत्येक आदमी में अपने विचार को अंतिम मान लेने की मनोवृत्ति होती है। वह अपने प्रत्येक विचार को अंतिम मान लेता है। यह वृत्ति एक ही आदमी में नहीं है, दुनिया के सभी लोगों में उपलब्ध है। किसी में कुछ कम है, किसी में कुछ अधिक है। प्रत्येक आदमी सोचता है कि मैं जो सोचता हूं, वह बिलकुल ठीक है, सही है। जिनमें विचार करने की थोड़ी शक्ति है, वे सुलझे हुए व्यक्ति होते हैं। उनमें विचार का आग्रह नहीं होता। जिनमें विचार करने की क्षमता कम हैं, वे अल्पज्ञ हैं। प्रायः देखा जाता है—जो व्यक्ति चिंतन से दरिद्र होते हैं, वे अपने विचार को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। वे सोचते हैं, उनका विचार किसी सर्वज्ञ से कम नहीं है। सर्वज्ञ भी शायद कहीं सोचने में भूल कर सकते हैं, किन्तु वे जो सोचते हैं, उसमें कहीं भूल नहीं हो सकती। विचार का आग्रह एक आदर्श बन गया। यह आदर्श आनुवंशिक भी हो सकता है, पारंपरिक भी हो सकता है। किन्तु विचार का आग्रह मनुष्य की एक आदत बन गई है, यह स्पष्ट तथ्य है। जहां विचार मनुष्य की मौलिक विशेषता है, वहां विचार का आग्रह मनुष्य की मौलिक समस्या भी बना हुआ है।

विशेषता समस्या भी बन जाती है

वचन भी मनुष्य की विशेषता के साथ एक समस्या भी बना हुआ है। आदमी जल्दी ही विवाद खड़ा कर देता है। हर बात विवाद बन जाती है। सुजानगढ़ से लाडनूं कितनी दूर है? एक व्यक्ति कहेगा—१२ किलोमीटर दूर है। दूसरा कहेगा—बारह नहीं, तेरह किलोमीटर दूर है। आस-पास दस व्यक्ति खड़े हैं किन्तु सबका कथन भी अलग-अलग ही होगा। वचन एक जैसा निकल जाए—यह भाग्य से ही कहीं मिलता है। एक व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहेगा—आज भोजन अच्छा बना है। दूसरा तत्काल प्रतिवाद करेगा—क्या खाक अच्छा बना ? बिलकुल खराब बना है। कोई कहेगा—नमक नहीं है, कोई कहेगा नमक बहुत ज्यादा है और बात-बात में एक विवाद खड़ा हो जाएगा। वचन हो और विवाद न हो—यह भाग्य से ही कहीं-कहीं खोजा जा सकता है।

समन्वय का दृष्टिकोण

प्रत्येक वचन के साथ विवाद जुड़ा हुआ है और मनुष्य इस मौलिक समस्या से आक्रान्त है। व्यवहार भी एक समस्या है। कोई आदत बन गई और कहा जाए कि इस आदत को छोड़ो। यह आदत बुरी है। तंबाकू पीते हो, शराब पीते हो, मादक वस्तु का सेवन करते हो, यह अच्छा नहीं है। पान-पराग खाते हो, जर्दा खाते हो, यह अच्छा नहीं है। मनुष्य कहता है—ये कैसे छूट सकते हैं ? मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। प्रायः ९० व्यक्ति यही कहेंगे कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। किसी की आदत है झगड़ा करना। उसे कहा जाए कि एक परिवार में रहना है तो झगड़ा मत करो। उसका कथन होगा—नहीं, मैं नहीं बदल सकता। पूरा जीवन इसी प्रकार बिता दिया, इतने साल हो गए अब क्या बदलूंगा ? मैं नहीं बदल सकता, मैं नहीं बदलूंगा।

जब तक समन्वय का दृष्टिकोण विकसित नहीं होता तब तक आदत को बदला नहीं जा सकता। छोड़ना, लेना और उपेक्षा करना—इन तीनों के योग का नाम है समन्वय। अगर मनुष्य के व्यवहार में ये तीनों बातें नहीं हैं तो वह शान्तिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। यदि हम पुरानी आदत को छोड़ना नहीं जानते, नई आदत का निर्माण करना नहीं जानते और कुछ बातों की उपेक्षा करना नहीं जानते तो झगड़ों से, विवादों से और युद्धों से बचा नहीं जा सकता।

समन्वय के बिना विश्वशांति नहीं

आज विश्वशांति की चर्चा चल रही है। कहा जा रहा है—अणु-शस्त्रों की सीमा होनी चाहिए, अणुशस्त्रों की समाप्ति होनी चाहिए। विश्व के सिर पर जो अणुअस्त्रों का खतरा मंडरा रहा है, मनुष्य जाति के लिए वह एक बड़ा खतरा है। वह समाप्त होना चाहिए। इसकी बहुत वर्षों तक चर्चा चली, पर कोई परिणाम नहीं आया। परिणाम क्यों नहीं आया ? विश्व शांति के लिए कुछ छोड़ना जरूरी है और कुछ की उपेक्षा करनी जरूरी है। ये तीन सूत्र जब तक हमारे व्यवहार के साथ नहीं जुड़ेंगे तब तक विश्वशांति की चर्चा केवल वाचिक चर्चा ही रहेगी, सार्थक नहीं होगी। इसकी सार्थकता के लिए तीनों बातें बहुत जरूरी हैं। जिस राष्ट्र के पास अणुअस्त्रों का भंडार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वह अपने भंडार को छोड़ना नहीं चाहता, कम करना नहीं चाहता और नई बात को लेना नहीं चाहता। कैसे विश्वशांति हो सकती है? जैसे ही छोड़ने की बात आई, समाप्ति का संकल्प हुआ कि अणुअस्त्रों के भंडार को कम करना है। पहला कदम उठा और व्यवहार बदलना शुरू हो गया। व्यवहार की एक छोटी-सी चिनगारी आई—निवृत्ति करना है, कुछ छोड़ना है, नष्ट करना है। जो भंडार भरा हुआ है उसे नष्ट कर देना है। थोड़ा परिवर्तन शुरू हो गया, व्यवहार बदलना शुरू हो गया।

निवृत्ति : प्रवृत्ति

रूस में अब तक एक अधिनायकवाद चल रहा था। एक अलग प्रकार का व्यवहार था, एक लोहावरण था। प्रजातंत्र के वे राष्ट्र, जो लोकतन्त्र में विश्वास करते हैं, रूस से घबराते हैं। आज रूस में वातावरण बदल गया है, बदल रहा है। जहां अधिनायकवाद था वहां लोकतन्त्र की प्रथम किरण अपना प्रकाश फैला रही है। राष्ट्रपति प्रणाली आ रही है। अपने निर्णय के विपक्ष में बोलने का अधिकार दिया जा रहा है। विरोधी बात को सुनने का, समझने का और सहन करने का वातावरण तैयार किया जा रहा है। निवृत्ति से यह व्यवहार बदला। जो तानाशाही और अधिनायकवाद था उससे निवृत्ति हुई है और लोकतंत्रीय विधि में प्रवृत्ति हुई है। एक की निवृत्ति और दूसरे की प्रवृत्ति से व्यवहार बदलता है।

पसंद नहीं है आदत को छोड़ना

लोग जिस बात को पकड़ लेते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते। आदतें जिसकी जो बन गईं, वे बन ही गईं, उन्हें छोड़ना किसी को पसन्द नहीं है। सबसे ज्यादा अगर कोई नापसन्द चीज है तो वह है अपनी आदत को छोड़ने की बात। रेडियो सुनना पसन्द हो सकता है। पसंद है टी० वी० देखना, पसंद है स्वादिष्ट भोजन करना और गप्पे हांकना। सब बातें पसंद आती हैं एक को छोड़कर। यदि अपनी आदत को कोई बदलने को कहे तो वह पसंद नही है। अपनी आदत से इतना मोह और इतना चिपकाव हो गया कि उसे छोड़ना ही नहीं चाहते।

एक प्रसिद्ध कहानी है। एक दरिद्र आदमी था। उसने निश्चय किया—कहीं बाहर चला जाऊं और कमाई कर पेट भरूं। फिर उसने सोचा—चला तो जाऊंगा पर यह दारिद्र्य साथ ही चलेगा तो फिर जाने से फायदा क्या होगा? वह एकांत में बैठा। एक योजना बनाई। उसने दारिद्र्य से कहा—दारिद्र्य! तुम बहुत अच्छे आदमी हो। मेरी बात सुनो। दारिद्र्य ने कहा—बोलो क्या बात है? बात यह है कि मैं परदेश जाना चाहता हूं। तुम मेरा एक काम करो; यहां बैठे रहो और मेरे घर की रखवाली करो। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात मान लो और मुझे विदा करो। दारिद्र्य बोला—तुमने यह कैसी बात कही। सज्जन आदमी तो चले जाए और मैं यहां रह जाऊं। यह नहीं हो सकता। सज्जन को छोड़ना मैं नहीं जानता। तुम परदेश जाओगे तो मैं तुमसे आगे पहुंचूंगा। तुम्हारा संग छोड़ना मुझे कभी पसंद नहीं।

पहले अपनी शांति हो

दारिद्र्य दरिद्र को छोड़ना नहीं चाहता और आदत शायद आदमी को छोड़ना नहीं चाहती। वह आदत को बदलना नहीं चाहता। जब तक हमारी प्रवृत्ति और हमारे व्यवहार के साथ इन तीनों का समन्वय नहीं होगा तब तक शांति की चर्चा सार्थक नहीं बनेगी। कहां प्रवृत्ति करना है, कहां निवृत्ति करना है और कहां उपेक्षा करना है। हमें बुरी आदतों को छोड़ना है, अच्छी आदतों का निर्माण करना है और अपने आप में संतुलित और मध्यस्थ रहना है। उपेक्षा का मतलब है—मध्यस्थता। यह समन्वित व्यवहार जब तक नहीं होता, हमें विश्वशांति की ही नहीं, अपनी शांति की बात करने का भी अधिकार नहीं होता। जो आदमी अपनी शांति ही नहीं पा सकता, वह विश्वशांति की बात क्या करेगा और क्या चर्चा करेगा। सबसे पहले अपनी शांति का प्रश्न है, उसके बाद विश्व शांति का प्रश्न पैदा होता है।

प्रश्न है शक्ति-संतुलन का

बड़ा जटिल प्रश्न है व्यवहार का। एक समाधान दिया गया कि सबसे पहले विचार का आग्रह छोड़ें। विचार के आग्रह को छोड़ने का उपाय निर्दिष्ट करते हुए कहा गया—सह-अस्तित्व का बोध जितना प्रखर होगा, वैचारिक आग्रह छूटता चला जाएगा। सापेक्षता का दृष्टिकोण जितना प्रखर होगा, विचार का आग्रह छूटता चला जाएगा। एक आदमी एक बात सोचता है और दूसरा आदमी दूसरी बात सोचता है। किसका विचार सत्य मानें? एक यह सोचता है कि अणुअस्त्रों का निर्माण किए बिना आज विश्वशांति नहीं हो सकती। विश्व के बहुत बड़े भाग का चिन्तन है—शक्ति-संतुलन के बिना शांति नहीं हो सकती। यदि अमेरिका के पास अणुअस्त्रों का विशाल भंडार है और किसी दूसरे के पास नहीं है तो युद्ध का अधिक खतरा है। जितना अणुअस्त्रों का भंडार अमेरिका के पास है उतना ही विशाल भंडार यदि रूस के पास है तो युद्ध का खतरा टल जाता है।

दो मार्ग : दो दृष्टिकोण

आज का चिन्तन है शक्ति-संतुलन। शक्ति-संतुलन के बिना शान्ति नहीं हो सकती। पूछा जाए—इतना अणुअस्त्रों का अंबार क्यों लगाया जा रहा है? उत्तर होगा—विश्वशांति के लिए। अशांति के लिए बिलकुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। अमेरिका जानता है यदि मैंने अणुअस्त्रों का प्रयोग किया तो रूस मुझे नहीं छोड़ेगा। अमेरिका के अणुअस्त्रों का भंडार रूस को डरा रहा है तो रूस के अणुअस्त्रों का भंडार अमेरिका को डरा रहा है। दोनों डर रहे हैं, इसलिए संतुलन बना हुआ है। कोई भी इनका प्रयोग करने की बात नहीं सोच रहा है। यह एक चिंतन है। क्या इसे गलत मानें ?

अहिंसा की दृष्टि से सोचने वाले लोग यह मानते हैं कि शस्त्रों का निर्माण होना ही अशांति का कारण है। आज विश्व में जितनी अशांति और जितना भय का वातावरण बना है, यह सब अणुअस्त्रों के कारण ही बना है इसलिए सारे शस्त्रों को समाप्त कर देना चाहिए। वे मानते हैं—शांति का मार्ग है—शस्त्रों की समाप्ति।

अतीत : वर्तमान

विश्वशांति के लिए शस्त्रों का निर्माण और विश्वशांति के लिए शस्त्रों की समाप्ति। इन दो विचारों में कौन-सा सही है और कौन-सा गलत है। किसे झूठ मानें और किसे सत्य मानें। अगर अणुअस्त्रों को बनाने वालों को गलत मानें तो शायद न्याय नहीं होगा। यह माना जा सकता है कि आज पुराने जमाने की तरह कोई भी व्यक्ति जल्दी तलवार नहीं उठा सकता। एक जमाना था, थोड़ी-सी कोई बात होती, म्यान से तलवार निकल जाती। आज ऐसा कोई नहीं करता। आज कोई समस्या आती है तो संयुक्तराष्ट्र संघ में इकट्ठे होते हैं और समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हैं, चिंतन करते हैं। एक-एक समस्या के लिए सैकड़ों-सैकड़ों मीटिंगें करते हैं, एक-एक विषय पर निरन्तर चर्चाएं करते हैं। अभी कुछ मास पूर्व रूस और अमेरिका में मध्यमदूरी के प्रक्षेपास्त्रों की समाप्ति के लिए एक समझौता हुआ है। क्या इन प्रक्षेपास्त्रों को समाप्त करने की बात एक ही मीटिंग में तय हो गई ? यह प्रस्ताव सन् ८० से ही चल रहा था और आज तक न जाने कितनी मीटिंगों के बाद यह बात यहां तक पहुंची है। आज सीधी तलवार नहीं निकलती। आज पुराने जमाने वाली यह बात नहीं रही कि या तो सामने वाला मर जाएगा या तलवार निकालने वाला मर जाएगा। उस समय इससे आगे और कुछ नहीं था। आज सब जानते हैं कि किसी एक राष्ट्र ने अणुअस्त्रों का प्रयोग किया तो सारा संसार उसकी चपेट में आ जाएगा।

सापेक्षता की समझ विकसित हो

जैन न्याय के दो प्रसिद्ध शब्द हैं नय और दुर्नय। अनेक सत्यांशों को सापेक्षदृष्टि से देखना नय है और उन्हें निरपेक्ष सत्य मानना दुर्नय है। हमारा सारा व्यवहार, वचन और विचार सापेक्ष है। कोई भी विचार निरपेक्ष नहीं है, इसका अर्थ है—कोई भी विचार परिपूर्ण नहीं है। कोई भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन निरपेक्ष नहीं है, इसका अर्थ है—प्रत्येक वचन सत्यांश का वाचक है, पूर्ण सत्य का वाचक नहीं है। प्रत्येक व्यवहार सापेक्ष है, इसका अर्थ है—देश, काल के अनुसार व्यवहार बदलता रहता है। यह सापेक्षता की समझ विकसित होने पर विचार में अनाग्रह का विकास होता है, वचन विवाद से मुक्त हो जाता है और व्यवहार में बन जाता है प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा का संतुलन। इससे एक साधना का सूत्र हाथ लगता है। हम प्रवृत्ति करने में स्वतंत्र हैं। अपेक्षित नई आदत का निर्माण कर सकते हैं। हम निवृत्ति करने में भी स्वतंत्र हैं। अवांछनीय पुरानी आदत को छोड़ सकते हैं। उपेक्षणीय क्षणों का मूल्यांकन करने में भी हम स्वतन्त्र हैं। यह साधना का सूत्र नयवाद की बहुत बड़ी देन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. सामुदायिक जीवन और सहिष्णुता

सामुदायिक जीवन एक कठोर साधना है। जिसे साधना का अभ्यास नहीं है, वह समूह का जीवन नहीं जी सकता। अकेले में न कोई शब्द, न कोई कलह और न कोई संघर्ष। एक से दो और दो से अधिक होते ही इन सब का प्रारम्भ हो जाता है। फिर प्रारम्भ होता है तनाव, वैमनस्य, वैर और विरोध। यह सामुदायिक जीवन का एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू है—सहयोग, सौमनस्य और उपयोगिता। इनका आधारभूत तत्त्व है—सहिष्णुता। सहिष्णुता सामुदायिक जीवन का एक अलंकरण है। छोटे और बड़े सभी कहते हैं—सहन करना सीखो। पर सह-अस्तित्व, सापेक्षता और सामुदायिकता की चेतना जागे बिना सहिष्णुता फलित नहीं होती।

अन्याय के प्रतिकार का निर्दोष उपाय

प्रश्न होता है—क्या अन्याय को भी सहन करें? न्याय को सहन करना भी कठिन काम है। फिर यह परामर्श कैसे दिया जाए कि आप अन्याय को सहन करें। यह परामर्श दिया जा सकता है कि न्याय के साथ अन्याय न करें। अन्याय का प्रतिकार करना आवश्यक है। वह सहिष्णुता के साथ ही किया जा सकता है। असहिष्णुता के साथ अन्याय का प्रतिकार करना एक अन्याय को जन्म देना है। अन्याय के प्रतिकार का निर्दोष उपाय है—सहिष्णुता का प्रयोग। अन्याय को सहन करना दुर्बलता है। अन्याय के प्रति अपनी ओर से अन्याय न हो—यह विवेक है। इस विवेक चेतना के द्वारा अन्याय का सही ढंग से प्रतिकार किया जा सकता है। अन्याय का प्रतिकार एक समर्थ व्यक्ति ही कर सकता है। सहिष्णुता का अर्थ है—सामर्थ्यपूर्ण समायोजन।

संवेग नियंत्रण से ही सहिष्णुता का विकास

सहिष्णुता का अर्थ है—शक्तिशाली होना। आदि से अंत तक शक्तिशाली वही हो सकता है, जिसका अपने संवेगों पर नियंत्रण होता है। सहिष्णुता का अर्थ है—संवेग पर नियंत्रण। इसके अभाव में किसी को कोई सहन नहीं करता। शिष्य गुरु की सीख को सहन नहीं करता और पुत्र पिता की सीख को पंसद नहीं करता। बया ने बंदर को सीख दी—वर्षा हो रही है। कांप रहे हो। एक झोंपड़ी बना लो। फिर आराम से रह सकोगे। सीख अच्छी थी। बया जैसा छोटा प्राणी बंदर को सीख दे, क्या यह ठीक है? बंदर का पारा चढ़ गया। झोंपड़ी तो नहीं बनाई। बया के घोंसले को उजाड़ दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्दर एक जानवर है। उसमें संवेग पर नियंत्रण करने की क्षमता विकसित नहीं है और उसे नियंत्रण का प्रशिक्षण भी नहीं दिया जा सकता। इसलिए वह ऐसा कर सकता है। क्या आदमी ऐसा नहीं कर सकता? जिस आदमी को संवेग नियंत्रण का प्रशिक्षण नहीं मिला है, वह भी अच्छी सीख सुनकर अपने घर का निर्माण नहीं करता, सीख देने वाले के घर को उजाड़ सकता है।

असहयोग भी सहिष्णुता है

सहिष्णुता का एक अर्थ है—असहयोग। न प्रवृत्ति और न निवृत्ति किंतु उपेक्षा करना। उपेक्षा का अर्थ है असहयोग। गांधीजी ने असहयोग का आंदोलन चलाया। शासनतंत्र ठप्प हो गया। गाली के प्रति गाली देने का मतलब है गाली देने वाले का सहयोग करना। क्रोध के प्रति क्रोध करने का मतलब है क्रोध करने वाले का सहयोग करना। क्रोध करने वाले की उपेक्षा करो, उसका क्रोध आगे नहीं बढ़ेगा। गाली देने वाले की उपेक्षा करो, उसकी गाली आगे नहीं बढ़ेगी। मौत का भय सबसे बड़ा भय है। जो मौत से डरता है, वह मौत का सहयोग करता है। जो मौत के भय से मुक्त हो जाता है, वह उसे सहयोग नहीं करता। सहयोग करने वाला मौत को जल्दी बुलावा देता है और असहयोग करने वाला पूर्ण आयु को जी सकता है।

सहिष्णुता का अर्थ है—सुधार के लिए अवसर देना। गुरु कभी-कभी शिष्य के अविनय को सहन कर लेते हैं। पिता कभी-कभी पुत्र की तुच्छता को सह लेता है। इसका अर्थ कमजोरी नहीं, सुधरने का अवसर देना है। जो बड़े लोग सहन करना नहीं जानते, वे सामुदायिक जीवन जीने की कला को नहीं जानते। वे परिवार या समुदाय को साथ लेकर चलना नहीं जानते।

सामुदायिक जीवन : महान् प्रयोग

सामुदायिक जीवन अपने आप में एक बड़ा प्रयोग है। कोई व्यक्ति हिमालय की गुफा में अकेला बैठा है। वह अकेला ही है। वहां सहिष्णुता की कसौटी नहीं हो सकती। सहिष्णुता की कसौटी समाज में होती है। जो समाज में रहे और अकेलेपन की अनुभूति के साथ जिए, वही सहिष्णु हो सकता है। अध्यात्म का सूत्र है—अकेलेपन की अनुभूति। उपाध्याय विनयविजय ने उसका चित्रण इन शब्दों में किया है—

एक उत्पद्यते तनुमानेक एव विपद्यते।
एक एव हि कर्म चिनुते, सैकः फलमश्नुते॥

व्यक्ति अकेला आता है, अकेला जाता है। अकेला कर्म का संचय करता है और अकेला ही उसका फल भोगता है। इस अध्यात्म सूत्र में रहना और व्यवहार में जीना—यह अनेकान्त है। हम रहें अपने आप में और जिएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार में तभी शान्त सहवास हो सकता है, सामुदायिक जीवन स्वस्थ बन सकता है।

विरोध : अविरोध

अनेकान्त ने एक सूत्र दिया वैचारिक सहिष्णुता का। हमें बहुत सारे विचार विरोधी प्रतीत होते हैं। विरोधी विचार को सहन न करना हमारी प्रकृति बन गई और इसलिए बन गई कि हम अनेकान्त का मर्म नहीं जानते। हमें सत्य की पहचान भी नहीं है। अनेकान्त का तात्पर्य है विरोध में अविरोध की खोज। कोई विरोध ऐसा नहीं है जिसके तल में अविरोध न हो। कोइ अविरोध भी ऐसा नहीं है, जिसके तल में विरोध न हो। विरोध और अविरोध—दोनों एक साथ रहते हैं। इस अवस्था में हम केवल विरोध को पकड़कर असहिष्णु क्यों बनें ?

नयवाद : राग-द्वेष मुक्त दृष्टिकोण

महावीर ने दो नयों का प्रतिपादन किया—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। एक विचार है—आत्मा कर्म का कर्त्ता है और उसके फल का भोक्ता है। दूसरा विचार है—आत्मा कर्म का कर्त्ता है पर फल का भोक्ता नहीं है। दोनों विरोधी विचार हैं और दोनों ही सत्य हैं। द्रव्यार्थिक नय इस दृष्टि को मान्यता देता है—जो कर्त्ता है, वही भोक्ता है। पर्यायार्थिक नय का दृष्टिकोण इससे भिन्न है। उसके अनुसार कर्म का कर्त्ता अन्य होता है और उसे भोगने वाला कोई अनागत होगा।

नयवाद राग-द्वेष से मुक्त रहने का दृष्टिकोण है। जहां सत्य है, वहां राग-द्वेष के लिए अवकाश नहीं है। जहां राग-द्वेष है, वहां सत्य के लिए अवकाश नहीं है। आदमी का आकर्षण राग-द्वेष में अधिक है, लड़ाई झगड़ों में अधिक है। कभी-कभी मैं सोचता हूं—यदि वैचारिक आग्रह नहीं होता, मान्यताओं की खींचातानी नहीं होती तो दिन और रात कैसे बीतता। चौबीस घंटा का समय बहुत बड़ा समय है। नींद का समय अधिक से अधिक आठ घंटा मान लें। दो घंटे का समय शरीर-चर्या का और आठ घंटे का समय काम-काज का फिर भी छह घण्टे का समय शेष रह जाता है। यह कैसे बीतता ? राग-द्वेष की घुड़दौड़ इतनी आकर्षक है कि उसे देखते-देखते पल-भर में समय बीत जाता है। आकर्षण इसके साथ जुड़ा हुआ है, फिर सहिष्णुता की बात कैसे आगे बढ़े ?

सहिष्णुता के सूत्र

असहिष्णुता जिन्हें सता रही है, मानसिक तनाव बढ़ रहा है, भावनाएं उद्दिप्त हो रही हैं। वे लोग शांति की खोज में निकल पड़ते हैं। उनके लिए सहिष्णुता की साधना एक समाधान है। सहिष्णुता के लिए दृष्टिकोण को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् बनाना जरूरी है। एक शिकारी शिकार करने गया। दृष्टि कमजोर थी। सामने शिकार को देख गोली चलाई। अपने सहायक से पूछा—गोली किस जानवर पर लगी। सहायक बोला—महाशय! एक पेड़ पर लगी है। दृष्टिकोण सही नहीं है तो जानवर और पेड़ में कोई फर्क नहीं रहता।

सहिष्णुता का पहला सूत्र बनता है—सम्यग् दृष्टिकोण। दूसरा सूत्र बनता है—साहसिका—एक साथ बैठना। समस्या को सुलझाने के लिए एक मंच पर एक साथ बैठना आवश्यक होता है। तीसरा सूत्र है—एक दूसरे को समझने का प्रयत्न। समझ की दूरी व्यक्तियों में दूरी पैदा कर देती है। पारस्परिक समझ दूरी मिटा देती है। व्यवस्था भंग करने वाले की सहिष्णुता टूट जाती है। वह दूसरों की सहिष्णुता में भी बाधा पहुंचाता है।

विश्वशांति का दर्शन : सहिष्णुता

सहिष्णुता मानसिक शांति का दर्शन है। यही विश्वशांति का दर्शन है। व्यक्ति अशान्त है तो विश्वशान्ति नहीं हो सकती। मन अशान्त है तो विश्वशांति नहीं हो सकती। सहिष्णुता की पहली भूमिका है—परिस्थितियों को झेलना। दूसरी भूमिका है—दूसरे व्यक्ति को सहन करना। तीसरी भूमिका है—अपने से भिन्न विचारों को सहन करना। चौथी भूमिका है—राग और द्वेष की तरंगों का सामना करना, उनसे पराजित न होना। यह मार्ग राग से वीतरागता की ओर जाने का मार्ग है। जो व्यक्ति जितना वीतराग उतना अनेकान्ती। जो व्यक्ति जितना वीतराग उतना अहिंसक। जो व्यक्ति जितना वीतराग उतना सहिष्णु। अनेकान्त, अहिंसा और सहिष्णुता को कभी बांटा नहीं जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. मानसिक स्वास्थ्य

हिंसा और स्वास्थ्य

हिंसा पहले भी थी, आज भी होती है और भविष्य भी ऐसा नहीं होगा कि जगत् हिंसा से बिल्कुल मुक्त हो जाए। प्रश्न है—हिंसा क्यों होती है? मनुष्य मानसिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं है, इसलिए हिंसा हो रही है। हिंसा का कारण है—मनुष्य का मानसिक दृष्टि से स्वस्थ न होना। स्वास्थ्य और अहिंसा एक भाषा में एकार्थक बन जाते हैं। स्वास्थ्य का अर्थ है—अहिंसा और अहिंसा का अर्थ है स्वास्थ्य। स्वास्थ्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है —शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य।

भूख एक बीमारी है

शारीरिक अस्वास्थ्य हिंसा का एक कारण है। जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ होता है, बीमार होता है, वह हिंसा करता है। बहुत गहराई से समीक्षा करें तो निष्कर्ष होगा—जिसे भूख लगती है, वह बीमार है। भूख एक बीमारी है। संस्कृत शब्दकोश में भूख का अर्थ किया गया है—जठराग्नि की पीड़ा। जठर की अग्नि से होने वाली पीड़ा या बीमारी। सांख्य दर्शन ने भी भूख को बीमारी माना है। कुछ बीमारियां कभी-कभी होती हैं किंतु यह प्रतिदिन होने वाली बीमारी है। जो रोज बीमार होता है, बारह महीनें ही बीमार रहता है, वह बीमार नहीं कहलाता। व्यक्ति उससे इतना परिचित हो जाता है कि उसे वह बीमारी प्रतीत ही नहीं होती। कभी-कभार जो वेदना होती है, उसे ही वह बीमारी मानता है। यह एक सचाई है कि जो आदमी भूख से पीड़ित है, वह अस्वस्थ है, बीमार है। उसे मिटाने के लिए वह हिंसा करता है। अगर आदमी पूरा स्वस्थ होता तो उसे हिंसा करने की आवश्यकता ही नहीं होती। जिसे भूख नहीं लगती, वह हिंसा नहीं करता। जिसे प्यास नहीं लगती, वह हिंसा नहीं करता। हिंसा करने का उसके सामने कोई प्रयोजन ही नहीं होता। हिंसा के कारणों की यह सूक्ष्म मीमांसा है, जो शरीर की आवश्यकताओं के साथ जुड़ी हुई है।

हिंसा का कारण है—मानसिक अस्वास्थ्य

हिंसा का दूसरा कारण है—मानसिक अस्वास्थ्य। हिंसा वह व्यक्ति करता है जो मानसिक दृष्टि से बीमार है। यदि जगत् का सर्वेक्षण किया जाए तो दुनिया का बहुत बड़ा भाग मानसिक दृष्टि से बीमार मिलेगा। एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक रोगी वह होता है, जिसे पागलखाने में भर्ती किया जाता है और एक प्रकार का मानसिक रोगी वह होता है जिसे पागलखाने में भर्ती नहीं किया जाता है। जो पागलखाने में भर्ती हो रहे हैं उनका बहुमत नहीं है। अल्पमत के साथ यही व्यवहार होता है। बहुमत उन्हें पागलखाने में भर्ती कर देता है। जो पागलखाने में भर्ती होने के योग्य नहीं माने जा रहे हैं, उसका कारण उनका बहुमत में होना है। मानसिक बीमार इतने ज्यादा हैं कि कौन किसको भर्ती करे और कौन किसकी चिकित्सा करे? चिकित्सा करने वाला भी मानसिक दृष्टि से स्वयं बीमार है।

बहुत बड़ा भाग विक्षिप्त है

कहा जाता है—एक बार एक नगर में ऐसी हवा चली, सारे लोग पागल हो गए। पागलपन इतना गहराया कि उन्होंने अपने सारे कपड़े उतार डाले, निर्वस्त्र हो गए। केवल दो व्यक्ति बचे—एक राजा और एक मंत्री। शेष सारे निर्वस्त्र और बेभान। राजा बड़ी मुसीबत में फंस गया। उसने मंत्री से कहा—चलो! देखें! क्या बात है? किसी तरह समस्या को सुलझाएं। राजा और मंत्री बाजार में आए। दोनों अपनी राजसी पोषाकों में थे। उनके आस-पास भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग चिल्लाने लगे—देखो! ये पागल आदमी आए हैं। इन्हें पकड़ो, मारो। सारे लोग राजा और मंत्री को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े। वे उन्हें मारने के लिए कटिबद्ध हो गए। राजा ने मंत्री से कहा—अब क्या करें, कैसे निकलें? मंत्री बोला—राजाजी! खैरियत तो इसी में है कि हम भी कपड़े उतार कर इन जैसे बन जाएं। अन्यथा प्राणों का बचना भी मुश्किल ही होगा। इनका पागलपन जानलेवा भी बन सकता है। निरुपाय बने हुए राजा और मंत्री को अंततः पागलों जैसा ही बनना पड़ा। लोगों ने कहा—अब इनका पागलपन उतरा है।

एक बहुत बड़ा भाग पागल बन जाए, नंगा हो जाए और उन पागलों के बीच दो कपड़े वाले जाए तो क्या स्थिति बनती है, इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। या तो वे टिक नहीं सकेंगे या उन्हें पागल बनना पड़ेगा।

व्यापक रोग

मानसिक दृष्टि से यह दुनिया बहुत बीमार है। जो व्यक्ति शस्त्रों का निर्माण करता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं है। जो वैज्ञानिक शस्त्रों की खोज कर रहा है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं है। जो राजनेता शस्त्रों का अंबार लगाकर राष्ट्र की सुरक्षा का प्रयत्न करता हैं, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं हैं। यह अस्वस्थता इसलिए है कि मानसिक दृष्टि से सब बीमार हैं, पागल बने हुए हैं। एक राष्ट्र बीमार बनता है तो दूसरे राष्ट्र को भी बीमार बनना पड़ता है और वह बन जाता है। यह बीमारी इतनी व्यापक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि सब बीमार बन रहे हैं।

दानव के साथ रहना पसन्द नहीं

गुरु और शिष्य एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। एक अजनबी उधर से निकला। शिष्य को देखते ही वह उबल पड़ा। गालियां देने लगा। शिष्य कुछ देर तक शांति से सुनता रहा। अजनबी बोलता ही चला जा रहा था। शिष्य का संतुलन गड़बड़ा गया। वह क्रुद्ध हो गया। उसने भी प्रत्युत्तर में गालियों की बौछार कर दी। गुरु अपना कंबल उठा कर चल पड़ा। गुरु के इस व्यवहार से शिष्य का मन और अधिक आहत हुआ। वह बोला—गुरुदेव! बड़ी अजीब बात है। इसने मुझे इतनी गालियां दीं और आप शांत भाव से बैठे-बैठे सुनते रहे। जब मैंने गालियां देना शुरू किया, आप कंबल बांधकर जाने की तैयारी करने लगे। मैं समझ नहीं पाया इसका क्या अर्थ है? यह आपका कैसा व्यवहार है मेरे प्रति? गुरु ने मुस्कराते हुए कहा—वत्स! गाली देने वाला क्रोध में होता है। क्रोध दानव होता है। जब तक तुम शांत थे तब तक तुम देव थे। मैं तुम्हारे साथ बैठा था। जब तुम गालियां देने लगे, दानव बन गए। दानव के साथ रहना मुझे पसन्द नहीं, इसलिए मैं जा रहा हूं।

समस्या है संतुलन की

आज संतुलन कहीं नहीं है। यदि एक राष्ट्र संतुलन खो देता है तो दूसरा राष्ट्र भी अपना संतुलन खोए बिना नहीं रह सकता। यदि अमुक राष्ट्र परमाणु बम बनाएगा तो मुझे भी बनाना जरूरी है। यदि पाकिस्तान बनाए और हिन्दुस्तान नहीं बनाए तो वह सुरक्षित नहीं रह सकता। यह स्पष्ट है। अतः उसे भी परमाणु बम बनाना चाहिए। एक संतुलन खोए तो दूसरे को भी संतुलन खोना जरूरी है। यह दुनिया का एक सम्यक् व्यवहार हो गया। एक मानसिक दृष्टि से बीमार होता है तो दूसरे को भी मानसिक दृष्टि से बीमार होना जरूरी है। एक व्यक्ति आवेशपूर्ण व्यवहार करे तो दूसरे को भी वैसा करना जरूरी है। यदि ऐसा न करे तो मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह जाए पर व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहना नहीं चाहता, बीमार होना चाहता है।

इस अवस्था में क्या यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि शस्त्र का निर्माण, शस्त्र का नियोजन, शस्त्र का व्यापार और शस्त्र का प्रयोग—ये सब मानसिक बीमारी के चिह्न हैं।

धर्म और स्वास्थ्य

प्रश्न होता है—हम मानसिक दृष्टि से किसे स्वस्थ मानें? मानसिक दृष्टि से स्वस्थ कौन हो सकता है? उसकी परिभाषा क्या है? महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कहा—जो धर्म है, वह मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की व्याख्या है। आधुनिक भाषा में मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य और प्राचीन भाषा में धर्म—दोनों में कोई अन्तर नहीं लगता। जितने धर्म के सूत्र हैं, वे मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के सूत्र हैं।

लक्षण मानसिक स्वास्थ्य का

मानसिक स्वास्थ्य का एक लक्षण है—जो व्यक्ति अपने सुख के लिए दूसरों के दुःख का निमित्त नहीं बनता, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है। स्वयं सुखी रहना चाहता है और दूसरे को दुःख देना नहीं चाहता, वह मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। दूसरे को सुख देना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण नहीं बनता। जो दुःख नहीं देता, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है। अपने आपको सुखी रखने के लिए यह अनिवार्य है कि व्यक्ति दूसरे को दुःखी न बनाए।

सामंजस्य परिस्थिति के साथ

मानसिक स्वास्थ्य का दूसरा लक्षण है—परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता। जो व्यक्ति परिस्थितियों के साथ सामंजस्य करना जानता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। इस परिभाषा को जब व्यापक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया जाए तो एक नया प्रकाश उपलब्ध होता है। एक मुनि के लिए बाईस परीषहों का विधान किया गया। संख्या की दृष्टि से बाईस परीषह निर्दिष्ट हैं किन्तु ये बाईस सौ भी हो सकते हैं। परीषह का अर्थ है—परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित करना। भूख लग गई और खाने को नहीं है। इस अवस्था में आदमी तड़पने लग जाता है, त्राहि-त्राहि करने लग जाता है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो इस परिस्थिति को शांत भाव से झेल लेते हैं। एक दिन खाने को नहीं मिला, दो दिन नहीं मिला, चार दिन नहीं मिला फिर भी वे बिलकुल शांत एवं तटस्थ रहते हैं। जैसी परिस्थिति आती है, उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। वे व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं। जो व्यक्ति त्राहि-त्राहि करने लग जाता है, वह मानसिक दृष्टि से बीमार होता है।

चिन्तन का कोण कैसा हो ?

परीषहों को सहने का अर्थ है—कठिनाइयों को झेलने की क्षमता का होना, जो भी नई परिस्थिति आए, उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का होना। अभी दो महीनों से भयंकर गर्मी पड़ रही थी। प्रतिदिन गर्म हवाएं और धूल भरी आंधियां चल रही थीं। सारा आकाश धूल से आच्छादित रहता। सूर्य का प्रकाश भी धूल के पीछे छिप जाता। एक मुनि के मन में आ सकता था— कहां फंस गए। दिन भर आंधियों में जीना क्या जीना है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारा वातावरण धूलमय है, कहां जाएं ? क्या करें ? कितना अच्छा होता यदि हम दिल्ली में होते, आंधी और गर्मी का पता ही नहीं चलता। क्यों दिल्ली से लाडनूं आए और क्यों इस समस्या से त्रस्त हो गए ? न जाने कब वर्षा होगी ? कब ठंड होगी और कब गर्मी से झुलसते हुए शरीर को राहत मिलेगी ? ऐसा सोचने का परिणाम है—मानसिक बीमारी का प्रारंभ।

सतही तौर पर न देखें

परीषह प्रकरण में मुनि के लिए बतलाया गया—सर्दी को सहो, गर्मी को सहो, गाली को सहो, मच्छर काटे तो उसे सहो। निरंतर सहो, सहते रहो, कष्टों को झेलते चले जाओ। ऐसा लगता है कि कष्ट सहने के सिवाय और कोई काम ही नहीं है एक मुनि के। अनेक लोग कहते हैं—जैन धर्म है ही क्या ? उसमें केवल कष्टों को झेलना है। उसी का नाम है—जैन धर्म। ऊपरी और सतही दर्शन में लगता है—समुद्र शंख और सीपियों से भरा हुआ है, उसमें कोई मूल्यवान् संपदा नहीं है। जब तक सतही दर्शन रहेगा, हमारा दृष्टिकोण भिन्न प्रकार का होगा। जिन लोगों ने अतल गहराइयों में जाकर देखा है, उन्हें पूछा जाए कि समुद्र कैसा है ? वह कितना सुन्दर है ? कितना भव्य है ? वहां क्या है ? कितनी औषधियां और वनस्पतियां हैं ? कितने रत्न और रसायन भरे पड़े हैं ? समुद्र का एक दूसरा रूप ही सामने आता है। जो व्यक्ति सतही तौर पर सिद्धांतों को देखता है, उसे बड़ा अजीब सा लगता है। वही व्यक्ति जब उनकी गहराई में चला जाता है तो सारा दृष्टिकोण बदल जाता है, उसे एक नया सत्य प्राप्त होता है।

परीषह : संदर्भ स्वास्थ्य का

परीषह क्या है ? यदि मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में इस प्रश्न पर विमर्श किया जाए तो निष्कर्ष होगा—ये सारे परीषह मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण हैं। इनके आधार पर मानसिक स्वास्थ्य की व्याख्या की जा सकती है। प्रायः मनोवैज्ञानिकों ने स्वस्थ मन की जो परिभाषा की है, उसमें सबसे ज्यादा महत्त्व दिया है समंजन को, एडजेस्टमेंट को। समंजन करना यानी नई परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित करना। कितनी भी कठिन और जटिल परिस्थिति आए, उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर लेना मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है। गहराई में जाने पर पता चलता है कि ये परिस्थितियां सभी के जीवन में आती हैं। सर्दी किसे पीड़ित नहीं करती ? कौन सर्दी को सहन नहीं करता ? गर्मी किसे बाधित नहीं करती ? कौन नहीं सहता है गर्मी को ? हर आदमी को सर्दी-गर्मी सहनी ही पड़ती है।

दो मार्ग : सुविधा और सहिष्णुता

सर्दी को न सहना पड़े—इस दिशा में अनेक प्रयत्न चले हैं। वातानुकूलन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाए, हीटर का प्रयोग किया जाए, अधिकाधिक गर्म कपड़े पहने जाएं, जिससे सर्दी न लगे। कहीं-कहीं सिगड़ी को गले में डालकर आदमी जीते हैं। इस दिशा में जाने वाले व्यक्ति का प्रयत्न होता है कि सर्दी कष्ट न दे, उससे सुरक्षा की जा सके, बचाव किया जा सके। गर्मी आए तो गर्मी न सताए। पंखा चले, वातानुकूलित मकान हो, कूलर हो, एयरकंडीशंड आफिस हो। वह सारी सुविधाएं जुटाना चाहता है, पाना चाहता है। ये सारे प्रयत्न मानसिक दृष्टि से बीमार होने के प्रयत्न हैं।

अध्यात्म के क्षेत्र में कहा गया – जो भी परिस्थिति आए, चाहे सर्दी आए, चाहे गर्मी आए। तुम अपनी क्षमता और योग्यता को इतना विकसित करो कि उसे झेल सको, सह सको। सर्दी को सहने की क्षमता बढ़े, गर्मी को सहने की क्षमता बढ़े – ऐसा प्रयत्न अपेक्षित है।

उपाय पर ही निर्भर न हों

ये दोनों दृष्टिकोण हमारे सामने हैं। सामाजिक आदमी परिस्थिति को झेले ही, उसके लिए कोई उपाय न करे—यह संभव प्रतीत नहीं होता। किन्तु वह ऐसा उपाय न करे जो ज्यादा बाधक बन जाए, मानसिक बीमारी को बढ़ाने का निमित्त बन जाए। ऐसा उपाय भी हो रहा है। वह वांछनीय नहीं है। एक मार्ग है उपाय की खोज। किन्तु केवल उपाय पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए, अपनी शक्ति और क्षमता का विकास भी करना चाहिए, जिससे मानसिक बल बढ़े, मानसिक स्वास्थ्य बढ़े। हमने अपनी सुख-सुविधा का पूरा इन्तजाम कर लिया। पंखा, कूलर, हीटर आदि सारे साधन हमारे पास हैं। यदि बिजली चली जाए तो क्या होगा। हम तड़फने लगेंगे। यदि हमारी मानसिक क्षमता विकसित है तो हम ऐसी विषम स्थिति में तड़फेंगे नहीं, हमारा मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित नहीं होगा। जब बिजली चली जाती है, लोग बड़े बेहाल हो जाते हैं, छटपटाने लगते हैं। हमें ऐसी स्थिति का निर्माण करना है, जिससे कोई भी तात्कालिक समस्या हमारी बीमारी का कारण न बने, दुःख का कारण न बने। हम मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकें, हर स्थिति को झेल सकें।

आत्म निरीक्षण : पहली कसौटी

जब मानसिक स्वास्थ्य विकसित होता है, व्यक्ति के भीतर कुछ परिवर्तन घटित होते हैं। वे परिवर्तन मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण बन जाते हैं। मानसिक स्वास्थ्य का पहला लक्षण है—आत्म-निरीक्षण की मनोवृत्ति का विकास। आदमी अपने आपको नहीं देखता और कोई गलती होती है तो उसे दूसरे पर आरोपित करने का प्रयत्न करता है। वह कहता है—उसने ऐसा कर दिया मैं क्या करूं ? ऐसी ही परिस्थिति थी। मुझे बाध्य होकर यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य करना पड़ा। ये तर्क व्यक्ति को आत्म निरीक्षण से दूर ले जाते हैं। पर-दर्शन से पैदा होने वाले ये तर्क व्यक्ति की आदतों में स्वस्थ मोड़ नहीं ला सकते। इनसे व्यक्ति की बीमार मानसिक दशा ही अभिव्यक्त होती है। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से बीमार होता है, वह सारा दोष दूसरे पर ही डालने का प्रयत्न करता है। उसे अपना कोई दोष लगता ही नहीं। उसके सामने आत्म-निरीक्षण की बात ही नहीं होती।

आज राजनीति के क्षेत्र में या अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में कहीं भी आत्म-निरीक्षण की बात दिखाई नहीं देती। ईरान के विमान को गिराया गया। यात्री-विमान था। दो सौ नब्बे व्यक्ति मारे गए। इस घटना का कोई औचित्य नहीं बताया जा सकता। निरपराध प्राणियों को मौत के घाट उतार देने का प्रयत्न जघन्य अपराध है। किन्तु वहां भी शायद आत्म निरीक्षण की बात बहुत कम है, तर्क बहुत ज्यादा हैं।

धर्म का सबसे पहला सूत्र है—आत्म-निरीक्षण। आत्म-निरीक्षण करना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से बीमार होता है, वह पर-निरीक्षण करता है।

व्रत : दूसरी कसौटी

मानसिक स्वास्थ्य का दूसरा लक्षण है—व्रत। व्रत का अर्थ है—सीमा करना। आहार करना जितना जरूरी है आहार की सीमा करना भी उतना ही जरूरी है। आहार करना शरीर के लिए आवश्यक है और ऊनोदरी का व्रत करना मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति ऊनोदरी व्रत रखता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है और जो ऊनोदरी का व्रत नहीं रखता, वह मानसिक दृष्टि से बीमार है।

बात किए बिना व्यक्ति का काम नहीं चलता, व्यवहार नहीं चलता। किन्तु जो अनावश्यक बतियाता है, बेकार बातें करता है वह मानसिक दृष्टि से बीमार है। आवश्यक बातचीत करने वाला मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। वह सीमा को जानता है। कितनी बात आवश्यक करणीय है—इस तथ्य से वह परिचित होता है।

आराम करना बहुत जरूरी है। विश्राम के बिना श्रम नहीं हो सकता। श्रम और विश्राम—दोनों जुड़े हुए हैं। जितना आवश्यक है, उतना आराम करना अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। किंतु दिन में लेट गए और तीन घंटे तक पड़े-पड़े खटिया तोड़ते रहे, यह बीमारी का लक्षण है।

नींद लेना स्वास्थ्य का लक्षण है। सीमित समय नींद लेना मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति दिन भर नींद में डूबा रहता है, अध्ययन के समय नींद लेता है, ध्यान में नींद लेता है, चलते समय नींद लेता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वह मानसिक दृष्टि से बीमार है।

मानसिक स्वास्थ्य की जांच हो

आहार का व्रत, बातचीत का व्रत, आराम का व्रत, नींद का व्रत—ये चार व्रत मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण हैं। कम से कम प्रत्येक मुमुक्षु में इन चार व्रतों का विकास होना चाहिए। अगर ये व्रत नहीं लेते हैं तो मानना चाहिए कि मानसिक बीमारी के तत्त्व पनप रहे हैं। जितने मुमुक्षु हैं, उनकी शारीरिक दृष्टि से जांच होती है। कितने स्वस्थ हैं, कितने अस्वस्थ हैं? उनका परीक्षण होता है। क्या यह जांच नहीं हो सकती कि वे मानसिक दृष्टि से कितने स्वस्थ हैं, कितने अस्वस्थ हैं? आजकल मनोवैज्ञानिक 'आई क्यू' की जांच करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में बौद्धिक अंकों की जांच होती है। जैसे "आई क्यू" की जांच होती है, बौद्धिक क्षमता को परखा जाता है वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य की जांच भी होनी चाहिए। एक ऐसी प्रश्नावली बने, जिसे अध्यात्म में प्रवेश करने वाला प्रत्येक मुमुक्षु भरे। उससे मानसिक स्वास्थ्य की सम्यक् परीक्षा संभव बन सकेगी। जितना मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है उतना ही धार्मिक स्वास्थ्य अच्छा बन जाता है। यदि मानसिक स्वास्थ्य कमजोर होता है तो धर्म का विकास भी कमजोर बन जाता है।

तीसरी कसौटी : दायित्व-बोध

मानसिक स्वास्थ्य का तीसरा लक्षण है—दायित्व-बोध। जिस व्यक्ति में दायित्व की चेतना जागृत होती है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। दायित्व-बोध का होना जरूरी है। इस काम का मुझ पर दायित्व है, इस दायित्व को मैंने ओढ़ा है, मुझे यह दायित्व दिया गया है। जिसमें यह दायित्व-बोध का भाव विकसित होता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। जो अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभाता, उस पर ध्यान नहीं देता, वह मानसिक बीमारी से ग्रस्त बन जाता है।

चौथी कसौटी : कर्त्तव्य-बोध

मानसिक स्वास्थ्य का चौथा लक्षण है—कर्त्तव्य-बोध। किस समय क्या काम करना है, मेरा कर्त्तव्य क्या है—इसका बोध जागृत होना चाहिए। कोई व्यक्ति बीमार है तो उसके प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है? अपने आप कर्त्तव्य बोल जाए। एक व्यक्ति को अपेक्षा है, उसके प्रति क्या कर्त्तव्य है? इस चेतना का जागना स्वस्थता के लिए आवश्यक है। जिस व्यक्ति, समाज और संगठन में दायित्व बोध और कर्त्तव्य बोध की चेतना जितनी विकसित होती है, वह व्यक्ति, समाज और संगठन उतना ही विकसित, स्वस्थ और शक्तिशाली होता है। बातें और योजनाएं बहुत हो सकती हैं किन्तु कर्त्तव्य की चेतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागे बिना उनकी क्रियान्विति संभव नहीं है। क्रियान्विति के बिना किसी बात या योजना का कोई मूल्य नहीं होता। कोरे आलेखन, प्रवचन और सिद्धांत से समाज निर्माण का स्वप्न सार्थक नहीं होता।

कोरा सिद्धांत कारगर नहीं होता

चीन की एक प्रचलित लोककथा है। एक पुस्तक रखी थी रसोईघर में। मालिक किसी कार्य से बाहर चला गया। चूहे इकट्ठे हो गए। जहां रसोई बनती है, वहां चूहे इकट्ठे हो ही जाते हैं। चूहों को देखकर पुस्तक ने कहा—निकट मत आओ। चूहे बोले—क्यों? पुस्तक ने कहा—जानते नहीं हो, मैं क्या हूं। मेरे पास आओगे तो खत्म हो जाओगे। चूहों ने पूछा—ऐसी क्या बात है? पुस्तक बोली—मेरे में है चूहों को मारने की विधियां, चूहों को पकड़ने की विधियां। यह सुनकर चूहे हंसे और उन्होंने एक साथ पुस्तक पर धावा बोल दिया। कुतर डाला पुस्तक को। उसकी कतरन-कतरन बना दी। चूहे इस सचाई को जानते थे कि कोरे सिद्धांत से कुछ नहीं होता, जब तक करने की क्षमता नहीं होती। यह एक बड़ी सचाई है—जब तक कोरा सिद्धान्त रहता है उसकी क्रियान्विति नहीं होती, इस दुनिया में उसका कोई अर्थ नहीं होता।

कर्त्तव्य-बोध : चेतना का शक्तिशाली रूप

कर्त्तव्य-बोध मनुष्य की चेतना का सबसे शक्तिशाली रूप है। चेतना पीछे रहती है, सामने नहीं आती। सामने आती है क्रिया। जैन दर्शन और शैव दर्शन में यह बात बहुत स्पष्ट है कि चेतना और क्रिया को अलग नहीं किया जा सकता। चेतना हमेशा पर्दे के पीछे रहती है और क्रिया सामने आ जाती है। कर्मशास्त्र की भाषा में देखें। ज्ञानावरण का क्षयोपशम यानी चेतना का विकास तब तक हमारे किसी काम का नहीं होता जब तक अन्तराय कर्म का क्षयोपशम उसके साथ न जुड़ जाए, नाम कर्म का उदय साथ में न जुड़ जाए। शरीर-नामकर्म का उदय, अन्तराय कर्म का क्षयोपशम और ज्ञानावरण का क्षयोपशम—इन तीनों का योग मिलता है तब काम बनता है। पर सबसे आगे रहती है क्रिया और पीछे रहती है चेतना। कर्त्तव्य के आधार पर व्यक्ति की चेतना बोलती है। किस व्यक्ति ने कैसा काम किया और इसके पीछे चेतना कैसी है? जिसमें कर्त्तव्य का बोध नहीं होता, कर्त्तव्य की चेतना जागृत नहीं होती, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति नहीं होता।

पांचवीं कसौटी : संतोष

मानसिक स्वास्थ्य का एक लक्षण है—संतोष। अपना जो मुख्य कार्य है, उसमें संतोष मानना। विद्यार्थी का ध्यान परीक्षा में है। कितने अंक मिलने चाहिए—इस ओर ध्यान लगा रहता है। गहराई से पढ़ना है, विद्यार्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना है—इस ओर उसका ध्यान नहीं है। दो प्रकार के कार्य होते हैं—मुख्य और गौण। आज की समस्या है—विद्यार्थी पढ़ता है कालेज में, विश्व-विद्यालय में। उसका ध्यान पढ़ने में उतना नहीं है जितना अच्छी नौकरी को प्राप्त करने में है। माता-पिता भी यही सोचते हैं कि उनका पुत्र अच्छी सर्विस में चला जाए। आजीविका कैसी मिले—यह गौण बात मुख्य हो गई। अध्ययन में गहराई आए—यह मुख्य बात गौण हो गई। मानसिक बीमारी का लक्षण है—मुख्य कार्य में संतोष का न होना और प्रासंगिक कार्य में संतोष मानना।

जीवन की विसंगति

धर्म निर्जरा के लिए है, आचार निर्जरा के लिए है। यदि निर्जरा की बात गौण हो जाए, प्रदर्शन की बात मुख्य हो जाए तो धर्म एक विडंबना बन जाता है। जो गौण था प्रदर्शन, वह मुख्य बन गया। मुख्य थी निर्जरा, वह गौण हो गई। यह एक जीवन की विसंगति है जो मानसिक बीमारी को पनपने का अवसर देती है।

हमें इस सचाई का अनुभव करना है कि हमारा ध्यान मुख्य कार्य में ही लगे। उसी से हम संतुष्ट हों। गौण बात का प्राप्त होना दूसरे नंबर पर है। वह प्रासंगिक फल है।

समाधान का आयाम

प्रश्न होता है—यह संभव कैसे बने ? मानसिक स्वास्थ्य का विकास कैसे किया जाए ? मानसिक बीमारी से कैसे बचा जाए ? हिंसा, अपराध, शस्त्रीकरण, मारकाट, आतंकवाद आदि-आदि समस्याओं के समाधान के लिए अनेक विधियां विकसित हो रही हैं। क्या वे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के बिना सार्थक बन पाएंगी ? इस प्रश्न के समाधान के कुछ आयाम बन सकते हैं। इनमें सबसे पहला है—शिक्षण। शिक्षण की व्यवस्था सम्यक् हो। यह प्रेक्षाध्यान शिविर शिक्षण की एक सम्यक् व्यवस्था ही है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति को जानने और समझने का मौका मिलता है कि शिक्षण के द्वारा आत्म-विश्वास को पैदा किया जा सकता है। आत्म-विश्वास की कमी के कारण मानसिक बीमारी पनपती है, मनोबल का ह्रास होता है। हर कोई कहता है—मैं ऐसा नहीं कर सकता, मैं यह नहीं कर सकता। इसका अर्थ है—वह अपना आत्म-विश्वास खो चुका है। शिक्षण के द्वारा यह आत्म-विश्वास पैदा किया जा सकता है कि तुम ऐसा कर सकते हो।

मैं महावीर बन सकता हूं

मैं मानता हूं—महावीर की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि उन्होंने किसी दूसरे पर भरोसा नहीं किया। जो ईश्वर पर भरोसा करते हैं, वे अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपको कमजोर मानते हैं। ईश्वर भला करेगा, ऐसा करेगा, वैसा करेगा। मैं स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता, वही होगा जो ईश्वर की मर्जी होगी। महावीर ने कहा—तुम अपने ईश्वर को जगाओ। ईश्वर तुमसे अलग नहीं है। तुम्हारे भीतर उतनी क्षमता है जितनी क्षमता महावीर में है। महावीर तुमसे अलग नहीं हैं। जैसे तुम हो, वैसे ही महावीर हैं। जैसे महावीर महावीर बने वैसे तुम भी महावीर बन सकते हो। यह आत्म-विश्वास पैदा हो जाए तो जीवन में एक नया प्रकाश मिल सकता है। 'मैं महावीर बन सकता हूं', यह आत्म-विश्वास शिक्षा के द्वारा मिल सकता है, अभ्यास के द्वारा उत्पन्न हो सकता है।

व्यक्ति अपनी जांच स्वयं करे

मानसिक स्वास्थ्य का दूसरा उपाय है—सुझाव। वर्तमान मनोविज्ञान की भाषा में उसे सजेशन या ऑटो सजेशन कहा जाता है। स्वयं अनुप्रेक्षा का प्रयोग करना, ऑटो-सजेशन का प्रयोग करना या दूसरा व्यक्ति अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराए, सुझाव दे—ये दोनों महत्त्वपूर्ण उपाय हैं। इनके प्रयोग से काफी परिवर्तन सम्भव है। इनसे मानसिक स्वास्थ्य के विकास को बहुत गति मिल सकती है।

हिंसा-अहिंसा, धर्म-अधर्म, शस्त्रीकरण-निःशस्त्रीकरण—इन संदर्भों में मानसिक स्वास्थ्य का यह संक्षिप्त विश्लेषण है। इस चर्चा का निष्कर्ष है—हर व्यक्ति अपनी जांच स्वयं करे। ऐसी प्रश्नावली तैयार हो, जिससे व्यक्ति अपने आपको जांच सकें, अपना परीक्षण कर सके। मानसिक दृष्टि से स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य की परीक्षा कर सके। अध्यात्म में प्रवेश पाने वाले व्यक्तियों के लिए यह उपक्रम अत्यंत लाभदायक हो सकेगा। मानसिक स्वास्थ्य का जितना विकास होगा, उतना जनता का भी भला होगा, उनका स्वयं का भी भला होगा और अध्यात्म में प्रवेश पाते समय भी वे अध्यात्म का बहुत हित साध सकेंगे, स्व-पर कल्याण में अधिक हेतुभूत बन सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. भावात्मक स्वास्थ्य

दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कुछ लोग सदा प्रसन्न रहते हैं। कठिन परिस्थिति आने पर भी उनमें विषाद, खिन्नता और उदासी नहीं आती। वे अपनी प्रसन्नता को नहीं खोते। कुछ लोग ऐसे भी होते है कि २४ घंटे तक विषाद उनसे छूटता ही नहीं है। सुख का अवसर हो तो भी उनका चेहरा मुरझाया हुआ रहता है। उदासी और खिन्नता टपकती ही रहती है। ऐसा क्यों होता है? क्या परिस्थिति प्रभावित करती है? परिस्थिति यदि प्रभावित करती तो प्रसन्न रहने वाले को भी प्रभावित करती पर उसे कठिन परिस्थिति भी प्रभावित नहीं कर पाती। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके दुःख सदा उद्दीप्त रहता है। कभी बात कर देख लो दुःख तैयार है, हीन भावना तैयार है, उदासी तैयार है, निराशा तैयार है। जितने निषेधात्मक और नकारात्मक भाव हैं, वे सब उनके पास बने के बने रहते हैं। इसका कारण है—स्वभाव।

किस व्यक्ति ने किस प्रकार के स्वभाव का निर्माण किया है। एक व्यक्ति ने प्रसन्न रहने के स्वभाव का निर्माण किया है तो दूसरे व्यक्ति ने खिन्न और दुःखी रहने के स्वभाव का निर्माण किया है। स्वभाव का निर्माण संवेगों के आधार पर होता है। जो व्यक्ति जिस प्रकार के संवेग में ज्यादा जीता है, उसका वैसा ही स्वभाव निर्मित हो जाता है।

स्वभाव और संवेग

बहुत गहरा संबंध है संवेग और स्वभाव में। संवेग सूचक है स्वभाव का। स्वभाव बतला देता है कि अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार के संवेग में जी रहा है। पहले संवेग को समझना जरूरी है। भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए संवेग की पहचान और भाव की पहचान जरूरी है। मनोविज्ञान में चवदह मूल मनोवृत्तियों को माना गया है, चवदह ही संवेग माने गए हैं। साहित्य में संवेगों की चर्चा आती है—स्थाई मनोभाव और संचारी मनोभाव। जो स्थाई भाव हैं, संचारी भाव हैं, वे संवेग हैं। कर्मशास्त्र में या अध्यात्म शास्त्र में जितनी कर्म की प्रकृतियां हैं, उतने ही संवेग बन जाते हैं।

उल्लास एक संवेग है। दुःख का भाव एक संवेग है। जो व्यक्ति उल्लास के संवेग में जीता है उसे दुःख कम छूता है या नहीं छूता। जो व्यक्ति दुःखभाव के संवेग में ज्यादा जीता है, बिना बुलाए उस के दुःख आ टपकता है, बुलाने की आवश्यकता ही नहीं होती, पास में ही रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरा सा दरवाजा खोलो और वह भीतर आने को तैयार है।

भय एक संवेग है। हीन भावना और उत्कर्ष की भावना संवेग हैं। घृणा की भावना और काम-भावना संवेग हैं। ये सारे संवेग हैं। व्यक्ति स्वयं इस बात पर ध्यान दे कि वह किस प्रकार के संवेग में जी रहा है और उस संवेग में जीने पर उसमें किस प्रकार के स्वभाव का निर्माण हो रहा है।

प्रश्न है जागरूकता का

स्वभाव और संवेग—दोनों जुड़े हुए हैं। जो व्यक्ति अपने स्वभाव को अच्छा बनाना चाहे, अपने भावनात्मक स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहे, उसे संवेगों के प्रति बहुत जागरूक रहना होता है।

जागरूकता जीवन की सफलता का बड़ा सूत्र है। हम जागरूक बनें अपने संवेगों के प्रति। कौन सा संवेग ज्यादा सक्रिय हो रहा है? संवेग का मेरे स्वभाव पर क्या परिणाम होगा? इतनी सी जागरूकता आती है तो स्वभाव भी अच्छा बन जाता है, भावनात्मक स्वास्थ्य भी अच्छा बन जाता है, व्यवहार भी अच्छा बन जाता है। प्रश्न है जागरूकता का। हम संवेगों को जानते ही नहीं है और जान जाते हैं तो जागरूक नहीं होते, समझ नहीं पाते।

बच्चा आया दादा के पास और बोला—डुगडुगी वाला आया है। मुझे भी एक ले दो। दादा बोला—ठीक नहीं है, नहीं लेनी है। तू बार-बार बजाएगा और मेरी नींद में बाधा डालेगा। मैं नहीं खरीदूंगा। बच्चे ने कहा—आप इस बात की चिंता न करें। जब तक आप जागते रहेंगे मैं उसे नहीं बजाऊंगा। आप जब सो जाएंगे तभी उसे बजाऊंगा।

हम ठीक समझ ही नहीं पाते। बेचारे दादा ने कहा था तू मेरी नींद में बाधा डालेगा और बच्चे ने कहा—जब आप जागेंगे तब तक बजाऊंगा ही नहीं। जब आप सो जाएंगे तभी बजाऊंगा।

इष्ट स्मरण : एक महान् सूत्र

हम समझ नहीं पाते हैं इस सचाई को। कैसे संवेग से छुटकारा पाया जा सकता है और कैसे स्वभाव को बदला का सकता है। धर्म के क्षेत्र में एक बात कही जाती है—निरंतर अपने इष्ट का स्मरण करें, अपने गुरु का स्मरण करें। किसी पवित्र भाव को बराबर बनाए रखें। बात बहुत छोटी सी लगती है किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि हम विचार करें तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बहुत बार बहुत गहरा सूत्र देना भी कठिनाई पैदा करता है। सूत्र तो गहरा दे दिया और पकड़ने वाला उसे नहीं पकड़ पा रहा है, बात अधर में लटक जाती है। यह सूत्र इसलिए दिया कि दिन भर में जितने समय तुम अपने इष्ट का, अपने गुरु का, अपने मंत्र का जप करोगे, उनका ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करोगे। उसका अर्थ होगा—तुम्हारे संवेग अच्छे रहेंगे, तुम्हारी भावना अच्छी रहेगी। कोई भी बुरा संवेग तुम्हारे पास नहीं आएगा। तुम्हारे स्वभाव का बुरा निर्माण नहीं होगा। जिस भाव में जीओगे वैसे बनोगे। एक पवित्र भाव रहता है तो स्वभाव पवित्र बन जाता है, अपने आप बुरा स्वभाव बदल जाता है। जो व्यक्ति अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत आनंद—इस चतुष्टयी की स्मृति में जीता है उसका स्वभाव इतना बढ़िया होता है कि वह अपने लिए और दूसरों के लिए कोई भी खतरनाक काम नहीं कर सकता, समस्या पैदा करने वाला काम नहीं कर सकता। जो आनंद में जी रहा है वह दूसरे को सताएगा नहीं, दुःख नहीं देगा और न स्वयं ही दुःखी बनेगा। वह अपनी चेतना में जिएगा और जब वह चेतना में जिएगा तो कोई भी मूर्खतापूर्ण काम नहीं करेगा।

स्वभाव निर्माण की प्रक्रिया

सत्, चित् और आनंद—ये तीन बहुत प्रचलित शब्द हैं। जो सत् में जीता है, चित् में जीता है और आनंद में जीता है, उनकी अनुभूति रखता है, बार बार स्मृति रखता है, वह अपने ऐसे स्वभाव का निर्माण करेगा, जिस स्वभाव से सत् निकलेगा, चित् निकलेगा और आनंद निकलेगा। उसमें से असत्, अचित् और दुःख नहीं निकलेगा और दूसरों के लिए भी वह खतरनाक नहीं बनेगा।

बहुत बड़ा एक सूत्र दिया गया था पवित्र स्मृति का—'शिवसंकल्पमस्तु मे मनः' मेरा मन पवित्र संकल्प वाला बने। मेरा मन निरंतर पवित्र बना रहे। जैन साहित्य का एक पारिभाषिक शब्द है—ज्यादा से ज्यादा शुभ योग बना रहे। यह बहुत प्रचलित शब्द है कि अशुभ योग की प्रवृत्ति न हो, शुभ योग की प्रवृत्ति हो। मनोविज्ञान के संदर्भ में यदि इस सूत्र की व्याख्या करें तो स्वभाव निर्माण की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। शुभ योग की प्रवृत्ति होगी, अशुभ योग की प्रवृत्ति नहीं होगी—इसका अर्थ है—पवित्र भावों में हमारा जीवन बीतेगा, हमारे क्षण बीतेंगे, हमारा समय बीतेगा। पवित्र स्वभाव अपने आप बनता रहेगा। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य, क्रोध, अभिमान, माया—ये सब अशुभ योग हैं। यदि इन अशुभ योगों में प्रवृत्ति होगी तो स्वभाव भी वैसा ही बनता चला जाएगा। इसलिए सूत्र दिया गया कि अशुभ योग की प्रवृत्ति न हो, शुभ योग की प्रवृत्ति हो।

सामायिक: स्वभाव निर्माण का संकल्प

जैन श्रावक सामायिक करते हैं। सामायिक करने का अर्थ समता की साधना कहा गया है। हम क्यों नहीं मानें कि सामायिक करने का अर्थ है—स्वभाव निर्माण का संकल्प, संवेगों को पवित्र बनाने का संकल्प। सामायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मतलब है—अशुभयोग की प्रवृत्ति न करना और शुभ योग की प्रवृत्ति करना। सावद्ययोग का प्रत्याख्यान यानी अशुभ योग की प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान। जब अशुभ प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान होगा तो आदमी सहज ही शुभ स्वभाव के निर्माण में चला जाएगा। सामायिक को स्वभाव निर्माण की प्रक्रिया माना जा सकता है।

सदाशिव बनने का फार्मूला

तंत्र-शास्त्र और शैव-दर्शन का शब्द है—सदाशिव। वह कभी अशिव नहीं होता। सदाशिव रहने का एक फार्मूला है सामायिक। प्रत्येक व्यक्ति संकल्प करें कि मैं ५० मिनट के लिए अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होता हूं और शुभ प्रवृत्ति करता हूं। इसका अर्थ है वह पवित्र स्वभाव को और अधिक मजबूती देता है। इसका परिणाम होगा—व्यक्ति का मन उन संवेगों के प्रति कभी न झुकेगा, कभी न जाएगा, जो संवेग विषाद पैदा करने वाले हैं।

जब संवेग जागते हैं, बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है। संवेग में व्यक्ति का स्वभाव भी कैसा ही हो जाता है और व्यवहार भी कैसा ही बन जाता है।

संवेग से जुड़ा है व्यवहार

एक कर्मचारी जल्दी घर पहुंचा। पत्नी ने कहा—अभी तो दो बजे हैं। तुम्हारे अवकाश का समय पांच बजे होता है। तीन घंटा पहले कैसे आ गए? वह बोला—मैंने कोई काम किया था और मेरा बॉस बिगड गया। बॉस ने गुस्से में कहा—जाओ! तुम जहन्नुम में, नर्क में चले जाओ। उसने ऐसा कहा तो मैं घर पर आ गया। बॉस ने जहन्नुम में भेजा और उसने अपने घर को जहन्नुम बना लिया।

जब आदमी गुस्से में होता है, उसका सारा चिंतन और सारा व्यवहार बदल जाता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है। स्वभाव भी विचित्र प्रकार का होने लग जाता है।

भावनात्मक स्वास्थ्य का एक सूत्र है—हम अपने संवेगों के प्रति जागरूक रहें। कौन सा संवेग बार-बार उद्दीप्त हो रहा है? उस संवेग का मेरे ऊपर क्या प्रभाव होगा? यदि संवेग के प्रति जागरूकता की बात आती है तो स्वभाव को बदलने में, भावनात्मक स्वास्थ्य को अच्छा बनाने में सुविधा हो जाती है।

पाचनक्रिया और स्वभाव

स्वभाव के साथ संबंध है पाचनक्रिया का। जिस व्यक्ति की पाचनक्रिया ठीक नहीं होती, वह भावनात्मक स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रख सकता। सीधा संबंध लगता है—पाचनक्रिया ठीक नहीं है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। पाचन ठीक नहीं होगा तो चयापचय की क्रिया ठीक नहीं होगी किन्तु इसका भावनात्मक स्वास्थ्य पर भी बहुत असर होता है। जिस व्यक्ति का पाचन ठीक नहीं है उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है। बहुत सारे लोग चिड़चिड़े होते हैं, बात-बात पर चिड़ जाते हैं। छोटी-सी बात होती है और चिड़ जाते हैं, हर बात पर चिड़ना उनका स्वभाव ही बन जाता है। अच्छी बात से भी चिड़ जाते हैं और बुरी बातों से तो चिड़ते ही है। यह पाचन क्रिया का दोष है। पाचन ठीक नहीं होता है तो चिड़चिड़ापन आ जाता है।

स्वास्थ्य के साथ पाचनक्रिया का बहुत गहरा संबंध है। भावात्मक स्वास्थ्य का दूसरा बिन्दु है पाचनक्रिया के प्रति जागरूक रहना। यह भी प्रकारान्तर से धर्म का एक सूत्र है।

पाचन-तंत्र से स्वभाव में विकृति

मैंने स्वयं अनुभव किया है—जिसका पाचन-तंत्र और उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ नहीं होता, वह स्वभाव से भी स्वस्थ नहीं होता। पाचन-तंत्र ठीक नहीं होता है तो स्वभाव में विकृतियां आ जाती हैं। खाते खूब हैं किन्तु सफाई होती नहीं है। मल का निष्कासन ठीक प्रकार से नहीं होता है, कब्ज रहता है, कोष्ठबद्धता रहती है तो सारा स्वभाव गड़बड़ा जाता है। उदासी, बेचैनी और गुस्सा ज्यादा आना, बुरी बात सोचना, बुरे विचार आना, बुरी कल्पना करना, हत्या या मारकाट का विचार आना—इस प्रकार के विचार आने लग जाते हैं। हमें जागरूक होना है इन दो तंत्रों के प्रति—पाचन-तंत्र के प्रति और उत्सर्जन तंत्र के प्रति। कुछ लोग इसमें जागरूक नहीं होते। उनका दिमाग भी ठीक काम नहीं करता। स्मृति भी ठीक काम नहीं करती। स्मृति-दोष और उत्सर्जन तंत्र में बहुत गहरा संबंध है। प्रसन्नता से भी उसका बहुत गहरा संबंध है। हमारा जितना ध्यान खाने पर केंद्रित है उतना उत्सर्जन पर केन्द्रित नहीं है। होना तो यह चाहिए कि खाने की अपेक्षा उत्सर्जन पर अधिक ध्यान केन्द्रित हो। ऐसा होगा तो भावशुद्धि भी रहेगी, विचारशुद्धि भी रहेगी और बुरे विचार, बुरी कल्पना और बुरे स्वप्न भी नहीं आएंगे।

स्वभाव और अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

स्वभाव और अन्तःस्रावी ग्रंथियों में भी परस्पर गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति की अन्तःस्रावी ग्रन्थियां ठीक ढंग से काम करती हैं, उसका स्वभाव अच्छा होता है और वह भावात्मक स्वास्थ्य का जीवन जीता है। जिसकी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां ठीक काम नहीं करतीं, उसका स्वभाव विकृत होता चला जाता है। उदाहरण के लिए छोटी-सी बात लें। जिसकी पैंक्रियाज ठीक काम नहीं करती, उसके सूगर की बीमारी हो जाती है। जिसे सूगर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीमारी है, उसके स्वभाव में भी बहुत बदलाव आ जाएगा । उदासी, खिन्नता और चिड़चिड़ापन—ये सारे उसके स्वभाव बनने लग जाएंगे ।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का संतुलित होना बहुत आवश्यक है । हम उसके प्रति जागरूक रहें । यद्यपि यह कार्य स्वतः होने वाला है, हमारे वश की बात नहीं है । फिर भी भाव के साथ उनका बहुत बड़ा संबंध है । यदि भाव पवित्र होगा तो अन्तःस्रावी ग्रंथियों का संतुलन बना रहेगा । भावनात्मक स्वास्थ्य में गड़बड़ी आएगी तो अन्तःस्रावी ग्रंथियों में भी गड़बड़ी आ जाएगी । यह एक चक्र है—यदि अन्तःस्रावी ग्रंथियां ठीक काम कर रही हैं तो भाव भी ठीक काम कर रहे हैं, भावनात्मक स्वास्थ्य भी ठीक हो रहा है और यदि भावनात्मक स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो मानना चाहिए कि अंतःस्रावी ग्रन्थियां भी संतुलित नहीं हैं, स्वस्थ नहीं हैं ।

समस्या है अन्तर्द्वन्द्व

मूल प्रश्न है—हम अपने भावों के प्रति जागरूक रहें । इसमें एक बड़ा खतरा है और वह खतरा है मानसिक संघर्ष का । व्यक्ति के भीतर एक अन्तर्द्वन्द्व चलता है, मानसिक संघर्ष चलता है । वह संघर्ष का जीवन जीता है । व्यक्ति जानता है कि बहुत खाना अच्छा नहीं है, ज्यादा गरिष्ठ भोजन करना अच्छा नहीं है । किन्तु इच्छा इतनी प्रबल होती है वह खाए बिना रह नहीं सकता । जब भी कोई प्रसंग आएगा वह खाये बिना नहीं रहेगा । खाने के बाद वह सोचता है—मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था । यह बुरा हुआ है । खाएगा भी और बुरा भी सोचेगा ।

कुछ लोगों में नशा करने की आदत हो जाती है । नशा करते हैं और साथ में यह भी जानते हैं कि यह बुरा है । ऐसा नहीं करना चाहिए । कुछ व्यक्तियों को अप्राकृतिक मैथुन की आदत हो जाती है । वे जानते हैं इससे सारी शक्तियां समाप्त होती हैं, पागलपन की स्थिति बन जाती है और एड्स तक की स्थिति बन जाती है । जानते हैं यह काम अच्छा नहीं है पर इच्छा प्रबल होने पर रहा ही नहीं जाता । फिर कहते हैं कि यह बुरा हुआ, ऐसा नहीं करना चाहिए था । यह है मानसिक संघर्ष । इसका नाम है अन्तर्द्वन्द्व । यानी अच्छा नहीं जानते हुए भी कार्य को करना । एक आदमी ऐसा है जो बुरा करता है किन्तु जानता नहीं है कि बुरा है, उसमें कम से कम मानसिक संघर्ष तो नहीं होता । जो व्यक्ति यह जानता है कि यह करना बुरा है फिर भी करता है और करने के बाद भी यह सोचता है कि ऐसा नहीं करना चाहिए था, बहुत बुरा हुआ । यह अन्तर्द्वन्द्व भावनात्मक स्वास्थ्य को बहुत बिगाड़ता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघर्ष अतीत और वर्तमान का

प्रत्येक व्यक्ति के सामने प्रश्न है—इस मानसिक संघर्ष को कैसे मिटाए ? इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को कैसे समाप्त करे ? इसके लिए उपायों की खोज जरूरी है। भावक्रिया का, जागरूकता का, वर्तमान में जीने का जो सूत्र है, वह भावनात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। एक जीवन है अतीत का और एक जीवन है वर्तमान का। एक हमारे साथ आ चुका और एक आ रहा होगा। अनागत अभी आया नहीं। हमारे जीवन के तीन प्रकार बन गए—अतीत का जीवन, वर्तमान का जीवन और भविष्य का जीवन। अतीत का जीवन भावनात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से कैसा रहा, यह तो नहीं कहा जा सकता। आगे उसका परिणाम भुगतना है, किन्तु वर्तमान में भी अगर व्यक्ति जागरूक बन जाता है तो समस्या से छुटकारा पा सकता है। यद्यपि एक सीधा संघर्ष है अतीत और वर्तमान में। हर व्यक्ति कहता है यह वही तो है जिसने ऐसा किया था। अतीत का जीवन वर्तमान पर हावी रहता है, अतीत का जीवन वर्तमान का साक्षी रहता है और सामाजिक जीवन में अतीत की छाप ज्यादा होती है। वर्तमान की छाप उसके सामने धुंधला जाती है

हावी है वर्तमान पर अतीत

परिवार नियोजन का अधिकारी प्रचार करने एक गांव में गया। गांव के लोगों ने उसकी स्थिति का पता लगा लिया। यह अधिकारी कौन है ? इसकी क्या स्थिति है ? इसका परिवार कितना है? उसने बहुत प्रचार किया—दो से ज्यादा नहीं। बहुत प्रचार किया। उस अधिकारी के १० बच्चे हैं। यह जानकर लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ। एक व्यक्ति बोल उठा—महाशय! परिवार नियोजन का प्रचार करते हैं और आपके १० बच्चे हैं। अधिकारी बोला—भाई ! क्षमा करें। मैं पहले विकास विभाग में था और वहां से इस विभाग में आया हूं।

वर्तमान पर अतीत हावी रहता है। हम वर्तमान को देखते हैं किन्तु अतीत से हटकर नहीं देखते। सामाजिक परिवेश में या सामुदायिक जीवन में वर्तमान बाद में सामने आता है, अतीत पहले ही बोल उठता है। इसलिए हम अतीत को बिल्कुल अस्वीकार भी नहीं कर सकते। अध्यात्म के क्षेत्र में स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। अध्यात्म के मूल्य और मानदंड बिल्कुल बदले हुए होते हैं। अगर हम वाल्मिकी को डाकू की दृष्टि से ही देखें तो यह सामाजिक परिवेश हो सकता है, अध्यात्म की भूमिका बिलकुल नहीं हो सकती। अध्यात्म की भूमिका में आज यदि डाकू संत बन गया तो वह संत ही है, डाकू था ही नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीत : अध्यात्म का दृष्टिकोण

अर्जुनमालाकार, जो प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करते थे, एक ही क्षण में मुनि बन गए। वे उसी राजगृही नगर में जब भिक्षा के लिए जाते तो लोग कहते कि साधु बना है मेरे पिता को मारकर, मेरे भाई को मार कर। जहां भी जाते, गालियों की बौछार मिलती। कितनी अवज्ञा और कितनी अवेहलना ! यह बात तब होती है जब अतीत हावी होता है। अगर यह अध्यात्म की भूमिका होती तो महावीर साधु बनाते ही नहीं। अगर अध्यात्म की भूमिका होती तो वे कभी संत बनते ही नहीं। अध्यात्म की भूमिका में कहा जाएगा— अशुभ योग में से शुभ योग में आ गया, अशुभ भाव में से शुभ भाव में आ गया और स्वभाव बदल गया। जिस व्यक्ति ने यह सोच लिया कि अब मैं वह नहीं करूंगा, जो मेरे द्वारा प्रमादवश पहले किया गया था। "फिर नहीं करूंगा" जिसकी मनोदशा ऐसी बन गई, उसका स्वभाव बदल गया। सामाजिक भूमिका में अगर स्वभाव बदलता है तो सामाजिक लोग इसे स्वीकार नहीं करेंगे। अध्यात्म का स्वीकार है—स्वभाव बदल सकता है और स्वभाव के बदल जाने पर व्यक्ति बदल जाता है। व्यक्ति जिस पर्याय में जी रहा था, वह पर्याय बदल गया। व्यक्ति मर गया। वह जो था, वह तो है ही नहीं।

स्वभाव एक पर्याय है

विमर्श का बिन्दु है—स्वभाव ध्रुव है या एक पर्याय है ? अगर ध्रुव है तो बदलने की आवश्यकता ही नहीं है और प्रयत्न करने पर भी बदला नहीं जा सकता। जैसा है वैसा का वैसा ही रहेगा। त्रिपदी है— उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की। स्वभाव ध्रौव्य के साथ जुड़ता है तो बदलने का प्रयत्न करना भी हमारी समझदारी नहीं और वह बदलेगा भी नहीं। अगर स्वभाव पर्याय है तो पर्याय का अर्थ होगा उत्पन्न होना और व्यय हो जाना। पर्याय से हम चिपके कैसे रह सकते हैं। हम कैसे कह सकते हैं कि मेरा तो ऐसा ही स्वभाव है यह बदलेगा नहीं ? जो आदत पड़ गई है, वह अब छूटेगी नहीं। इस त्रिपदी के सिद्धांत को जानने वाला कोई भी यह कह नहीं सकता।

पर्याय बदल सकता है

मनुष्य एक पर्याय है। मनुष्य नाम का कोई भी द्रव्य नहीं है। वह एक पर्याय है। मनुष्य, पशु, पक्षी—ये सब पर्याय हैं। पैदा हुए हैं और नष्ट हो जाएंगे। मनुष्य जीवन भी एक पर्याय है। हमारा स्वभाव कौन-सा शाश्वत सत्य आ गया कि बदलेगा ही नहीं। स्वभाव बदल सकता है पर पहले हमारा दर्शन सम्यक् होना चाहिए। जब दर्शन ही सम्यक् नहीं है तो फिर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचरण और व्यवहार की बात ही कहां से आएगी। न जाने कितने लोग यह मान बैठे हैं कि मेरा स्वभाव नहीं बदलेगा, मेरी आदत नहीं बदलेगी। जो लोग धर्म के क्षेत्र में, साधना के क्षेत्र में आ गए, उनकी भी धारणा यही है कि मेरी आदत तो अब बदलेगी ही नहीं। साधु जीवन में आ जाने के बाद भी कभी-कभी ऐसी धारणा बना लेते है कि अब तो यह आदत बदलने की नहीं है। बड़ा आश्चर्य होता है! उन्होंने स्वभाव को भी शाश्वत सत्य मान लिया है, एक अस्तिकाय मान लिया। उन्होंने यह मान लिया कि मेरा स्वभाव ऐसा था, है और रहेगा। कितना मिथ्यादर्शन है। पांच अस्तिकाय को विपरीत मानना ही मिथ्यादर्शन नहीं है। जो अशाश्वत है उसे शाश्वत मान लेना भी मिथ्या दर्शन है। अनित्य को नित्य मान लिया, अशाश्वत को शाश्वत मान लिया। यह भी मिथ्यादर्शन है। यह मिथ्यादर्शन बदलना चाहिए, यह धारणा बदलनी चाहिए। स्वभाव बदलता है और जो भावात्मक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं है, वह पाया जा सकता है। उसमें विकास किया जा सकता है। यह गतिशील भावना रही तो संभावना उज्ज्वल बन जाएगी और स्थिर बन गए तो कोई संभावना शेष नहीं रहेगी।

संकल्प स्वभाव परिवर्तन का

साधना का अर्थ है गतिशीलता। निरंतर गति और निरन्तर परिवर्तन की बात। जो परिवर्तन की बात नहीं सोचता, वह शायद अध्यात्म में प्रवेश पाने का अधिकारी ही नहीं है। उस व्यक्ति में पहली बात यह होनी चाहिए कि मैं अशुभ योग की प्रवृत्तियों और आदतों को बदलना चाहता हूं। इसलिए अध्यात्म में प्रवेश पाना चाहता हूं। यह अर्हता आए तो शायद एक नया रूप निखरेगा। पुरानी भाषा थी—संसार में आग लग रही है इसलिए मैं साधु बनना चाहता हूं, साध्वी बनना चाहती हूं। जन्म-मरण की लाय लग रही है यह भी एक सचाई है, वास्तविकता है। आज हम दूसरी भाषा में सोचें। वह भाषा होगी—मैं अपने पुराने स्वभाव को बदलना चाहता हूं और नए स्वभाव का निर्माण करना चाहता हूं इसलिए अध्यात्म में प्रवेश पाना चाहता हूं। मैं पुराने संस्कारों से मुक्ति पाना चाहता हूं और नए संस्कारों का निर्माण करना चाहता हूं इसलिए अध्यात्म में प्रवेश पाना चाहता हूं। मैं अशुभ योग की प्रवृत्तियों को कम करना चाहता हूं और शुभ योग की प्रवृत्ति का जीवन जीना चाहता हूं इसलिए अध्यात्म में प्रवेश पाना चाहता हूं। यह सम्यक् दर्शन स्पष्ट हो जाए तो अध्यात्म में प्रवेश पाने का अधिकार होता है और वही व्यक्ति भावात्मक स्वास्थ्य का जीवन जी सकता है।

सबसे ज्यादा मूल्यवान् भावनात्मक स्वास्थ्य

बहुत महत्त्वपूर्ण है भावनात्मक स्वास्थ्य। हमने जीवन को तीन भागों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बाट दिया—एक शारीरिक जीवन, एक मानसिक जीवन और एक आध्यात्मिक जीवन। शारीरिक जीवन से ज्यादा मूल्यवान है मानसिक जीवन और उससे ज्यादा मूल्यवान है भावनात्मक जीवन। यह भावनात्मक जीवन भावनात्मक स्वास्थ्य पर निर्भर है। उसका विकास कुछ दृष्टिकोणों, कुछ मान्यताओं को बदल कर ही किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. सही निदान : सही चिकित्सा

जीवन की यात्रा

संत अशरफअली बहुत प्रसिद्ध संत थे। वे सहारनपुर से लखनऊ जा रहे थे। पास में सामान ज्यादा था। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा—सामान ज्यादा है अलग से टिकिट बना लिया जाए। गार्ड ने बात सुनी। वह उनका शिष्य था। उसने कहा—गुरुदेव ! आपके साथ मैं चल रहा हूं फिर अलग से टिकिट बनाने की जरूरत क्या है ? आपका सामान पहुंच जाएगा।

संत ने कहा—तुम कहां तक जाओगे ?

वह बोला—मैं लखनऊ तो नहीं जाऊंगा पर आपका सामान पहुंच जाएगा।

संत—कैसे पहुंचेगा ?

गार्ड—दूसरे गार्ड की ड्यूटी लगा दूंगा।

संत—क्या तुमको पता है मुझे कहां जाना है ?

गार्ड—आपको तो लखनऊ जाना है ?

संत—नहीं, मुझे और आगे जाना है।

गार्ड—कहां जाना है ?

संत—और आगे जाना है। जिंदगी का सफर बहुत बड़ा है। बहुत आगे जाना है। तुम तो सामान पहुंचा दोगे पर मैं बहुत आगे जाऊंगा। बिना टिकिट बनाए सामान ले जाना एक अपराध है और मेरे इस अपराध का जिम्मेवार वहां कौन होगा ? कौन साक्षी बनेगा ?

गार्ड की आंखें खुल गई। वह मौन हो गया। टिकिट बन गई।

निदान और चिकित्सा

जिन्दगी की जो यात्रा है, बहुत लम्बी है। हम लोग कर्मवाद में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि अपना किया हुआ भुगतान होता है और वह आगे तक चलता है तो चिंतन की धारा बदल जाती है। हमारा दर्शन जीवन का दर्शन बने। दर्शन कोरा दर्शन ही नहीं रहे। तत्वज्ञान कोरा तत्वज्ञान ही नहीं रहे, वह जीवन का दर्शन बने। वह जीवन का दर्शन तभी बनता है जब यह बात ठीक समझ में आ जाए कि बीमारी का निदान करना है, चिकित्सा करनी है। निदान और चिकित्सा। आजकल बड़े-बड़े शहरों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कोरे निदान केन्द्र हैं वहां चिकित्सा नहीं होती, मात्र निदान होता है। अध्यात्म के क्षेत्र में दो केन्द्रों की जरूरत है—एक निदान का केन्द्र और एक चिकित्सा का केन्द्र। आश्चर्य की बात है कि जहां शारीरिक बीमारियों के लिए सैंकड़ों-सैंकड़ों निदान केन्द्र बने हुए हैं और सैंकड़ों-सैंकड़ों चिकित्सा केन्द्र बने हुए हैं, वहां अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसा कोई केन्द्र अभी स्थापित नहीं है। बीमारी है, पर बीमारी क्या है इसका मनुष्य को ज्ञान नहीं है। व्यक्ति स्वयं निर्णय नहीं कर पाता कि बीमारी क्या है। उसे जानने के लिए निदान कराना होता है। जब तक निदान सही नहीं होता, चिकित्सा की बात सामने ही नहीं आती। जब सही निदान और सही चिकित्सा होती है तब स्वास्थ्य की बात, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की बात आ सकती है।

परीक्षण जरूरी है

समस्या है—न कहीं निदान-केन्द्र और न कहीं चिकित्सा-केन्द्र। क्या यह नहीं हो सकता कि आध्यात्मिक संस्थान—पारमार्थिक शिक्षण संस्था एक निदान केन्द्र बने और चिकित्सा-केन्द्र भी बने। वहां निदान हो, और जो भी आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए प्रवेश पाए, वह सबसे पहले अपना निदान कराए कि स्थिति क्या है।

आजकल कोई विदेशी आता है तो सबसे पहले उसका टेस्ट होता है। कहीं एड्स की बीमारी लेकर तो नहीं आया है। यदि बीमारी है तो प्रवेश वर्जित है। वह नहीं आ सकता। अध्यात्म साधना के क्षेत्र में यह परीक्षण जरूरी है, निदान जरूरी है। निदान के उपकरण क्या होंगे? क्या साधन होंगे? इन पर यदि हम विचार करें तो हमारा तत्ववाद बहुत सहयोगी बनता है। पांच आस्रव की जो अवधारणा है, वह आध्यात्मिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है।

बीमारी के मूल स्रोत तीन हैं

अध्यात्म के क्षेत्र में जितनी बीमारियां पैदा होती हैं, उनके मूल स्रोत तीन हैं—मिथ्या दृष्टिकोण, अविरति और प्रमाद। कषाय मूल बात नहीं है। कषाय तो इनके माध्यम से आ ही जाता है। चंचलता भी कोई बीमारी नहीं है, मूल दोष नहीं है। चंचलता दोष तब बनती है जब वह इनका वहन करती है। वह एक ऐसा मजदूर है जो किराए पर बोझ उठाता है। वह एक ऐसी हवा है जो भार ढोती है और बहुत गर्म हो जाती है, बहुत ठंडी हो जाती है। बेचारा मजदूर भार ढो रहा है। उसका अपना क्या है? बेचारी हवा भार ढोती है। उसका अपना क्या है? कुछ भी नहीं है। चंचलता कोई मूल बीमारी नहीं है, वह मात्र बीमारी की संवाहक है। जब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह मिथ्या दृष्टिकोण के साथ जुड़ेगी तो मिथ्यात्व का वहन करेगी, अविरति के साथ जुड़ेगी तो अविरति का वहन करेगी और जब प्रमाद के साथ जुड़ेगी तो प्रमाद का वहन करेगी। जब इनके साथ नहीं जुड़ती है तो वह कुछ भी नहीं है। योग अपने आप में न शुभ होता है और न अशुभ होता है। हमारे तीन योग हैं—मन योग, वचन योग और काय योग। मन न शुभ और न अशुभ। वचन न शुभ और न अशुभ। शरीर का योग न शुभ और न अशुभ। ये अपने आप में कुछ नहीं हैं, किन्तु जब ये मिथ्या दृष्टिकोण, अविरति और प्रमाद के साथ जुड़ते हैं तो अशुभ बन जाते हैं और तपस्या आदि के साथ जुड़ते हैं तो शुभ बन जाते हैं। वे शुभ और अशुभ बनते हैं किन्तु प्रकृति से शुभ-अशुभ नहीं हैं। मिथ्या दृष्टिकोण, अविरति और प्रमाद प्रकृति से ही अशुभ हैं। योग ऐसा नहीं है।

बीमारी का कारण : मिथ्या दृष्टिकोण

हमें सबसे पहले निदान करना है कि दृष्टिकोण कहीं गलत तो नहीं है। गलत दृष्टिकोण के कारण तो कोई बीमारी नहीं हो रही है। बहुत सारी बीमारियां और बहुत सारे रोग मिथ्या दृष्टिकोण के कारण पैदा होते हैं। यह न सोचें कि हम नव तत्त्व को जानते हैं, इसलिए सम्यक् दृष्टि बन गए हैं। बीमारी कैसे होगी ? सम्यक् दृष्टि बहुत सापेक्ष शब्द है। तत्त्व के विषय में हमारी रुचि सापेक्ष हो गई किन्तु जीवन व्यवहार के प्रति मिथ्या दृष्टिकोण बहुत चलता है। मिथ्या धारणाएं व्यक्ति को बीमार बनाती हैं।

आकांक्षा : एक बीमारी

दूसरा है अविरति। एक आकांक्षा, इच्छा हजारों-हजारों रूप ले लेती है। किसी व्यक्ति में वस्तु के प्रति लालसा है। किसी में भोजन के प्रति लालसा है, किसी में किसी व्यक्ति के प्रति लालसा है। एक इच्छा अपने परिवेश और वातावरण के अनुसार हजारों रूपों में बदल जाती है। उस इच्छा वाले व्यक्ति को प्राचीन योग साहित्य में, अध्यात्म के साहित्य में रागचरित व्यक्ति कहा गया है।

दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं—रागचरित और द्वेषचरित। जो व्यक्ति द्वेष प्रधान होते हैं उनमें राग कम होता है, द्वेष प्रबल हो जाता है। वे द्वेष प्रधान व्यक्ति झगड़ा करना, झंझट करना, गालियां देना, निंदा करना, चुगली करना—इन कार्यों में लगे रहते हैं। द्वेष प्रधान व्यक्ति कहेगा—अमुक व्यक्ति ने यह गलती कर दी। उसने चरित्र में यह गलती कर दी, मैं नहीं करता हूं। वह रागचरित आदमी को गलत मानता है और अपने द्वेष को बिलकुल सही मानता है। जो रागचरित व्यक्ति होता है, वह द्वेष करने वाले व्यक्ति को गलत मानता है। वह कहेगा—कितना झगड़ालू है, कितना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदमाश है, जहां भी जाता है समस्या पैदा कर देता है। किन्तु अपने आपको गलत नहीं मानता। यह है मिथ्या दृष्टिकोण। उसने अपनी धारणा मिथ्या बना ली। अपने से विपरीत आचरण वाले को तो गलत मानता है और अपने गलत आचरण को सही मानता है। अपने इस मिथ्या दृष्टिकोण के कारण वह गलत बात को पोषण दे रहा है, बीमारी को पोषण दे रहा हैं। बीमारी को सबसे ज्यादा पालने का साधन बनता है—मिथ्या दृष्टिकोण।

कोई पर्याय शाश्वत नहीं

जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण सही नहीं है, जिसकी धारणाएं सही नहीं हैं, मान्यताएं सही नहीं हैं, वह कुछ करेगा ही नहीं। बहुत लोग ऐसे होते हैं, जो बीमार तो हैं पर अपने आपको स्वस्थ मान रहे हैं। अपनी बीमारी का उन्हें अहसास नहीं हो रहा है। आवश्यकता है—दृष्टिकोण को इतना सहज और सरल बनाया जाए, इतना सम्यक् बनाया जाए, जिससे कम से कम यह अनुभव हो कि हमारे अन्दर ये-ये बीमारियां हैं। अपनी बीमारी का अहसास बराबर बना रहे। यह एक निदान है। इससे पता चलता है कि मिथ्या मान्यता के कारण कितनी बीमारियां पलती हैं और मुझे कौन-सी बीमारी है।

बीमारी का दूसरा स्रोत है—अविरति। अध्यात्म का एक सूत्र है—जो पर्याय है, वह अस्थिर है, अनित्य है। तात्त्विकदृष्टि से भी यह सही है और व्यवहार की दृष्टि से भी यह सही है। तात्त्विक दृष्टि से हम यह मानते हैं कि कोई पर्याय दीर्घकालीन हो सकता है, दस, बीस या पचास वर्ष चल सकता है किन्तु कोई भी पर्याय शाश्वत नहीं हो सकता। व्यवहार की दृष्टि से देख रहे हैं कि कोई भी पीढ़ी शाश्वत नहीं है। १०० वर्ष पहले की पीढ़ी आज मुश्किल से कहीं खोजने पर मिलेगी। सारी समाप्त है। इस अवस्था में अविरति के प्रति हमारा दर्शन बदल जाता है।

अविरति है आकांक्षा। पदार्थ के प्रति आकांक्षा, व्यक्ति के प्रति आकांक्षा और वस्तु के प्रति आकांक्षा। एक आकांक्षा है, जो निरन्तर व्यक्त होती रहती है। उसका निदान हो सकता है, आत्म-निरीक्षण के द्वारा पता लग सकता है कि मुझ में कौन-सी अविरति का रूप ज्यादा प्रगट हो रहा है, कौन सी इच्छा ज्यादा व्यक्त हो रही है।

सही निदान का उपक्रम : आत्म-निरीक्षण

यह आध्यात्मिक रोग का सही निदान है, आन्तरिक रोग का सही निदान है। अपनी अविरति का पता लगा लेना और अपने भीतर से उठने वाली इस रागात्मक या रागजनित प्रवृत्ति का पता लगा लेना—बहुत महत्त्व-पूर्ण कार्य है। अस्वास्थ्य में बहुत तारतम्य होता है। बीमारी एक प्रकार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होती। कोई बीमारी इतनी स्पष्ट होती है कि तुरन्त पता लग जाता है और कोई बीमारी ऐसी होती है कि उसका पता लगाना कठिन होता है। आजकल निदान के बहुत साधन विकसित हो गए हैं किन्तु अनेक बीमारियों का निदान अभी भी अप्राप्य है। अनेक लोग कहते हैं—कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, मद्रास आदि सारे स्थलों पर चेक करवा लिया। डाक्टर कहते हैं—बीमारी नहीं है और मैं बीमारी भोग रहा हूं। यह निदान की वर्तमान स्थिति है। यह स्थिति आध्यात्मिक व्यक्तियों में भी बनती है। कुछ लोग कहते हैं—मैं अमुक अमुक संतों के पास गया, अमुक महात्मा के पास गया, अमुक मुनि-महाराज के पास गया और जितने अध्यात्म के लोग हैं उन सबके पास गया किन्तु समस्या का समाधान नहीं हुआ, कहीं भी निदान नहीं हुआ। इसका एक कारण हो सकता है—इतने तीव्र और सूक्ष्मदर्शी उपकरण हमारे पास नहीं हैं।

बहुत सरल है छिपाना

अध्यात्म के क्षेत्र में इतने सूक्ष्म उपकरणों के विकास की जरूरत है जिनके द्वारा यह पता लगाया जा सके कि व्यक्ति में यह बीमारी कहां बैठी हुई है? और इसका निवारण कैसे किया जा सकता है? वे उपकरण यांत्रिक नहीं, चारित्रिक होंगे। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति मिले, जिसके कोई समस्या न हो। हर व्यक्ति के मन में समस्या है, जिस पर वह कंट्रोल नहीं कर पाता। वह अपनी समस्या, अपनी बात कह देता है। पूरी बात तो शायद कोई भी कह नहीं पाता। सबके मन में एक आवरण है, एक संकोच है। जो लोग आध्यात्म के क्षेत्र में जी रहे हैं, वे छद्मस्थ हैं। छद्म का अर्थ है—आवरण। आवरण हमारे साथ है। हमारे पास पर्दा है। हम ढांकना जानते हैं, बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। इतनी कुशलता से जानते हैं कि अपनी बीमारी का किसी को पता ही नहीं लगने देते। हम किसी को नहीं बताना चाहते हैं कि हम बीमार हैं। बीमारी को ढांकने के लिए हमारे पास बहुत आवरण हैं, छद्म हैं इसीलिए हम छद्मस्थ बन गए। वीतराग बनने के बाद चेतना अनावृत होती है, छद्म समाप्त होता है। ढांकने की जरूरत नहीं रहती।

ऋजु व्यक्ति सहज धार्मिक

भगवान् महावीर ने कहा—धर्म उसी व्यक्ति में टिकता है जो ऋजु होता है, जो ढांकना नहीं जानता। जो ढांकना जानता है, वह तो मायाचार करेगा। वह ऋजु नहीं होगा। ढांकना बहुत सरल है। बिना सिखाए आदमी सीख जाता है।

अध्यापक ने विद्यार्थी से कहा—बताओ! ऐसा कौन-सा काम है, जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना किए हो जाता है। विद्यार्थी बोला—फेल होना ऐसा काम है जो बिना किए हो जाता है, प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं होती।

यह ढांकने वाली बात ऐसी है जो बिना सिखाए होती है। कहीं पढ़ाना नहीं पड़ता, हर व्यक्ति जानता है। छद्म करने वाला व्यक्ति जानता है कि किस बात को कैसे ढांका जा सकता है और कैसे उस पर पर्दा डाला जा सकता है। अपनी गलती हो जाने पर भी ढांकने का प्रयत्न होता है।

इस बात की अपेक्षा है कि हम ऋजुता का प्रयोग करें। यह प्रयोग एक अनावरण का प्रयोग होगा। इससे सही निदान होने में सुविधा होगी। निदान वहीं सही होगा जहां ऋजुता होगी।

प्रश्न है आस्था का

बीमारी का तीसरा कारण है—प्रमाद। बहुत सारी बीमारियां प्रमाद-जनित होती हैं। मनुष्य में आलस्य भी है, मूर्च्छा भी है, अकर्मण्यता भी है, नींद भी है। ये अनेक कारण हैं, जो बीमारियां पैदा करते हैं। इन सारी बीमारियों के निदान के लिए और कोई साधन न मिले तो व्यक्ति को आत्मा-लोचन या आत्म-निरीक्षण करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति देखे—कौन-सी बीमारी है और उसे वह नहीं मिटा पा रहा है। क्या उसे दूसरों का परामर्श लेना चाहिए? दूसरों के सामने भी अपनी बात रखकर अपना निदान कराना चाहिए? निदान के पश्चात् उसकी चिकित्सा करानी चाहिए? इस निरीक्षण का एकमात्र उद्देश्य होता है—स्वस्थ होना। जब यह आस्था प्रबल बन जाए, यह संकल्प प्रबल बन जाए कि मुझे स्वस्थ होना है, 'जिस क्षेत्र के लिए मैं आया हूं मुझे उसी में जीना है', जब यह आस्था प्रबल होगी तो निदान भी संभव बनेगा, चिकित्सा भी संभव बनेगी।

आस्था मजबूत हो

पहला प्रश्न है आस्था का। क्या हम सचमुच अध्यात्म के क्षेत्र में विकास करना चाहते हैं? क्या हम सचमुच अध्यात्म के क्षेत्र में पूरा जीवन जीना चाहते हैं? क्या हम सचमुच अध्यात्म के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं? अगर यह आस्था मजबूत हो तो हमारा मार्ग स्पष्ट बनेगा। अगर आस्था मजबूत न हो और हम सोचें—जब तक सुविधा है, ठीक वातावरण है, अनुकूलता है तब तक इस मार्ग पर चलेंगे और जब ये स्थितियां नहीं रहेंगी तो दुनियां बहुत बड़ी है, दूसरा मार्ग अपना लेंगे। जब इस प्रकार की आस्था बन जाती है तब न निदान का प्रश्न प्रस्तुत होता है, न चिकित्सा का प्रश्न प्रस्तुत होता है। निदान और चिकित्सा का प्रश्न आस्था पर निर्भर है। यह आस्था जागे—मुझे जीना है, मरना नहीं है। अध्यात्म में रहने का मतलब है जीना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अध्यात्म के क्षेत्र से बाहर चले जाने का मतलब है मरना। जब जीने के प्रति दृढ़ आस्था होगी, निदान और चिकित्सा की बात आएगी। जहां आस्था ही नहीं है वहां न निदान की जरूरत है और न चिकित्सा की जरूरत है।

सबसे पहले हमारी आस्था मजबूत बने। प्रेक्षाध्यान में अनुप्रेक्षा का प्रयोग, संकल्प का प्रयोग है। रात को सोते समय संकल्प दोहराया और नींद टूटते ही पहला संकल्प मन में आए कि मुझे आध्यात्मिक जीवन जीना है, मुझे अध्यात्म के क्षेत्र में विकास करना है, अपने व्यक्तित्व को आध्यात्मिक बनाना है। अगर इस संकल्प को कई बार कायोत्सर्ग की मुद्रा में शांतभाव से दोहराया जाए तो आस्था पुष्ट बनेगी, संकल्प दृढ़ होगा। हम जिस संकल्प को लेकर चलते हैं और जब वह संकल्प पुष्ट बनता है तो रास्ता साफ हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अध्यात्म के क्षेत्र में आने वाला व्यक्ति कोई प्रमाद नहीं करता, उसमें कोई अविरति नहीं होती, मिथ्या मान्यताएं नहीं होतीं। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। उसमें मिथ्या दृष्टिकोण भी हो सकता है, प्रमाद भी हो सकता है, कोई अविरति भी जाग सकती है। यदि संकल्प मजबूत है तो ये सारे अपने आप समाप्त हो जाएंगे। आवश्यकता है पुरुषार्थ की और आवश्यकता है पराक्रम की। यदि आस्था ही प्रबल नहीं है तो कुछ नहीं होगा।

प्रसन्नता का आधार

एक गृहस्थ व्यक्ति हमेशा प्रसन्न रहता था। कभी दुःखी नहीं होता। पड़ोसी सदा कहता—क्या बात है, तुम इतने खुश रहते हो। कभी तुम्हें नाराज नहीं देखा, कभी दुःखी नहीं देखा और कभी उदास नहीं देखा। तुम्हारे चेहरे को कुम्हलाया हुआ नहीं देखा। इतना प्रफुल्ल कि कभी पतझड़ देखा ही नहीं। एक दिन उसका जवान और इकलौता बेटा चल बसा। पड़ोसी ने सोचा—सदा कहता है कि कोई बात नहीं, मैं तो खुश ही रहता हूं, आज पता चलेगा। पड़ोसी मन में और और भावनाएं संजोए वहां गया। वह मुस्करा रहा है, हंस रहा है, चेहरे पर कोई शिकन नहीं, कोई सिलवट नहीं। वैसा ही खिलता हुआ फूल-सा चेहरा। वह अवाक् रह गया यह देखकर। सब लोग चले गए। पड़ोसी उस व्यक्ति के पैर पकड़ कर बोला—भाई! मैं तो नतमस्तक हो गया हूं। इकलौता जवान लड़का अचानक चल बसा, कोई आधार नहीं रहा, कोई प्राण नहीं रहा फिर भी तुम मुस्करा रहे हो। चेहरे पर एक भी शिकन नहीं। यह कैसे हो सकता है? उसने कहा—मैंने इस सचाई को समझा है, पकड़ा है कि दुनिया में जो कुछ है वह अस्थिर है। जीवन का एक भी क्षण स्थिर नहीं है। नदी का प्रवाह बहता चला जा रहा है। पानी आता है और चला जाता है। जो क्षण आया, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चला गया। जीवन का हर क्षण अस्थिर है। मैं भी अस्थिर हूं और मेरा लड़का भी अस्थिर है। अस्थिर था इसलिए चला गया। यदि नहीं होता तो नहीं जाता फिर मैं क्यों दुःख करूं।

यह एक सत्य समझ में आ जाता है तो हमारी आस्था का आधार बन जाता है। हमारी आस्था बदल जाती है। हमें इस बात का अन्वेषण करना है कि हमने किस आस्था को पकड़ा है और किस आस्था के आधार पर अपना कदम आगे बढ़ाया है? हमारी आस्था क्या है? क्या हमने इस सचाई को पकड़ा है और इस आस्था को बनाया है कि जीवन का हर क्षण अस्थिर है?

आस्था का महत्त्वपूर्ण सूत्र

भगवान् महावीर की वाणी में एक बड़ा मार्मिक संकेत मिलता है, आस्था का महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होता है। जब एक साधक के मन में, एक आध्यात्मिक व्यक्ति के मन में कोई काम जागे, लालसा जागे, भोग की भावना जागे, आहार की आसक्ति जागे तब वह सोचे—'न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई' ये दुःख, जो मुझे सता रहे हैं, चंचल बना रहे हैं, वे क्षणिक हैं, स्थाई नहीं है। आज गर्मी का मौसम है। एक मुमुक्षु सोचे—मेरा भाई संसार में है। पंखे के नीचे बैठता होगा, कूलर भी चलता होगा, बर्फ या आईस्क्रीम खाता होगा, ठंडे पेय पीता होगा। हम पारमार्थिक शिक्षण संस्था में आ गए। न कूलर, न ठंडा पेय और न आईस्क्रीम। कुछ भी नहीं है। कैसा जीवन? वे कितने सुख में जी रहे हैं और हम कहां आ गए? मन में ऐसी बात आ सकती है और ऐसी बात कभी आ जाए तो आस्था का सूत्र क्या होगा? 'न मे चिरं दुःखमिणं भविस्सई'। चाहे गर्मी सता रही है, चाहे खाने की कोई इच्छा सता रही है। प्रत्येक मुमुक्षु सोचे—यह दुःख चिरकालिक नहीं है। सब अशाश्वत है, कोई भी शाश्वत नहीं है। दुःख का क्षण आया है और चला जाएगा। दूसरा क्षण आ जाएगा। हमेशा एक-सा पर्याय नहीं रहता। कभी राग का पर्याय आ गया, कभी द्वेष का पर्याय आ गया, कभी वीतरागता का पर्याय आ गया। पर्याय बदलता रहता है। ये जितनी कामनाएं, जितनी वासनाएं, जितनी इच्छाएं और जितनी आकांक्षाएं पैदा होती हैं, वे सब क्षणिक हैं और क्षण भर के बाद चली जाने वाली हैं। यदि इस सचाई को हम पकड़ लेते हैं तो हमें दुःख नहीं होता, अपनी आस्था से डगमगाने का मौका नहीं मिलता।

चिकित्सा हर बीमारी की

ऐसा भी हो सकता है—कोई ऐसी आकांक्षा जाग जाए, जो बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझाने-बुझाने पर भी शांत नहीं होती। कोई तीव्र राग, तीव्र द्वेष, तीव्र आकांक्षा की भावना ऐसी जाग गई, जिसका शमन नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति को शांत करने के लिए एक आलंबन और दिया गया। मुमुक्षु सोचे—यह बीमारी नहीं जा रही है किन्तु इस शरीर को चले जाना है। अभी नहीं जा रही है, कल चली जाएगी, परसों चली जाएगी। परसों भी नहीं जाएगी तो कम से कम शरीर के साथ अवश्य चली जाएगी। एक दिन शरीर को चले जाना है। यह स्थाई नहीं है। इस सचाई का उद्घाटन कर आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए एक ऐसा चिकित्सा का सूत्र दिया गया, जिसके आधार पर बहुत बड़ी चिकित्सा की जा सकती है, हर बीमारी की चिकित्सा की जा सकती है। जिस व्यक्ति ने इस सूत्र को गहराई से पकड़ा है, वह बहुत सारी कठिनाइयों से पार पा सकता है।

अध्यात्म के महत्त्वपूर्ण प्रयोग

अध्यात्म में चिकित्सा के सूत्र भी बहुत बतलाए गए। आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय, तपस्या आदि अनेक सूत्र बतलाए गए। एक छोटा-सा प्रयोग—केवल दोनों नथुनों से श्वास लेना और बाएं नथुनों से वेग के साथ निकाल देना। यह प्रयोग बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसमें न कोई धारणा, न कोई ध्यान, न कोई तपस्या। मात्र प्राणायाम का प्रयोग। किन्तु इससे अपनी इच्छा पर या इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने की क्षमता विकसित हो सकती है। इंद्रिय-विजय के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने चिकित्सा के बहुत सारे सूत्र दिए। एलोपैथिक के क्षेत्र में डाक्टरों ने चिकित्सा के बहुत सारे सूत्र दिए। अध्यात्म के आचार्यों ने भी चिकित्सा के हजारों-हजारों सूत्र दिए। किन्तु जबसे अध्यात्म में प्रयोग की बात कम हुई, वे सूत्र खोते चले गए। आचार्यवर के अनुग्रह से ध्यान का पुनः उन्नयन हुआ। आज सैंकड़ों प्रयोग हमारे सामने प्रस्तुत हैं और वे बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं। इस स्थिति में निदान की बात और अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सबसे पहले स्वस्थ होने का संकल्प, आस्था को प्रबल बनाना, अपना निदान कराना और चिकित्सा के सूत्र खोजना—यह व्यक्तित्व विकास का महत्त्वपूर्ण क्रम है।

रागचरित : द्वेषचरित

शिष्य ने पूछा—मैं रागचरित से ग्रस्त हूं। क्या करूं? गुरु ने कहा नीले रंग का ध्यान करो। शिष्य ने पूछा—भंते! द्वेषचरित हूं, मैं क्या करूं? गुरु ने कहा—हरे रंग का ध्यान करो। यह बात बहुत सरल लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती है पर रागजनित व्यक्ति के लिए नीले रंग का ध्यान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह लेश्या ध्यान का प्रयोग है। अनेक व्यक्ति संध्या करते हैं किन्तु आज संध्या का वह विशुद्ध रूप नहीं रहा। एक ब्राह्मण के लिए संध्या करते समय लाल रंग, सफेद रंग और नीला रंग—तीन रंगों का ध्यान करना जरूरी है, जिससे वह अपने राग पर नियन्त्रण रख सके और अपनी आध्यात्मिक चेतना का विकास कर सके। एक मुनि के लिए लेश्याओं का ध्यान करना जरूरी था, वह भी उतना नहीं रहा। ये सूत्र बहुत छोटे-छोटे हैं किन्तु हैं बहुत महत्त्वपूर्ण। भावनात्मक समस्याओं को सुलझाने के लिए और भावनाओं को ठीक रखने के लिए इन सूत्रों का प्रयोग बहुत आवश्यक है। केवल जरूरत इस बात की है कि हमारी दृष्टि तेज बने, तीक्ष्ण बने, हमारी देखने की क्षमता आगे बढ़े।

दृष्टि पारदर्शी बने

रमेश ने दिनेश से पूछा—बताओ! पक्षी की आंखें कैसी होती हैं? वह कितनी दूर से देख लेता है? कितनी ऊंचाई से देख लेता है? दिनेश ने कहा—बहुत तेज होती हैं। रमेश ने पूछा—तुम्हें क्या पता? दिनेश बोला—मुझे पता है। क्योंकि आज तक मैंने किसी पक्षी को चश्मा लगाते हुए नहीं देखा, इसलिए उसकी आंखें बड़ी तेज होती हैं और न ही किसी पक्षी की आंख में मोतियाबिन्द देखा।

न आंख पर मोतिया आए और न आंख पर चश्मा लगाना पड़े—ऐसी पारदर्शी दृष्टि अध्यात्म के क्षेत्र में बन जाए, इतनी तेज आंख बन जाए तो किसी भी बीमारी का निदान एवं चिकित्सा संभव हो जाएगी।

अपेक्षा है—हमारी दृष्टि तेज बने, पारदर्शी बने, तीव्र बने, जिस पर न कभी मोतिया आए और न ही कभी आध्यात्मिक आंख पर चश्मा लगाने की जरूरत ही महसूस हो। उस दृष्टि के द्वारा हम स्वयं अपने गहनतम अन्तराल में छिपी हुई बीमारियों का निदान कर सकें और अपने गुरु के पास जाकर उसकी चिकित्सा करा सकें, चिकित्सा के सूत्र को पा सकें। यह उपक्रम जीवन के लिए बहुत कल्याणकारी होगा और अध्यात्म के क्षेत्र में साधना के लिए जिसने अपना पैर रखा है वह बहुत सौभाग्यशाली और महत्त्वपूर्ण बन जाएगा। इस सचाई को हम निरन्तर याद रखकर अपनी जीवन-यात्रा को सुखपूर्वक आगे बढ़ा सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैतिकता : नया संदर्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. इच्छा और नैतिकता

नैतिकता के लिए इच्छा को जानना बहुत जरूरी है। इच्छा को जाने बिना और उस पर अनुशासन किए बिना कोई भी व्यक्ति नैतिक नहीं बन सकता। इच्छा का संसार बहुत बड़ा है। भगवान् महावीर ने कहा है—इच्छा हु आगाससमा अणंतिया—इच्छा आकाश की भांति अनन्त है। इच्छा का अनुमापन आकाश से किया गया है। जितना बड़ा आकाश उतना बड़ा इच्छा का जगत्।

इच्छा का जगत् अनंत है

मैकंजी ने एक किताब लिखी है—यूनिवर्स ऑफ डिजायर—इच्छा का जगत्। इच्छा का एक जगत् है और वह अनंत है। कभी उसका अंत नहीं आता। उसका आर-पार नहीं पाया जा सकता। हर क्षण, हर व्यक्ति में अलग-अलग इच्छाएं पैदा होती रहती हैं।

इच्छाएं दो प्रकार की होती हैं—चेतन इच्छा और अचेतन इच्छा। चेतन इच्छा प्रगट होती है तो हमें उसका पता लग जाता है। इसका जगत् कुछ छोटा होता है। अचेतन इच्छा का संसार बड़ा है, अनंत है। हमारे भीतर इतनी इच्छाएं हैं कि उनकी न सीमा है और न नाप है। हम जो कुछ करते हैं, उसके पीछे एक इच्छा होती है।

प्रत्येक व्यवहार इच्छा-प्रेरित

मनोविज्ञान के जन्मदाता फ्रायड ने लिखा—मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार के पीछे एक इच्छा होती है। आदमी एक अंगुली हिलाता है तो उसके पीछे एक इच्छा होती है। रोटी खाता है तो उसके साथ भी इच्छा जुड़ी हुई होती है। प्रत्येक व्यवहार के पीछे इच्छा होती है। इस सत्य को एक मनोवैज्ञानिक ने प्रगट किया और यह वास्तविक भी है। हमारा सारा व्यवहार अनुबंधित व्यवहार होता है। जहां कोई इच्छा नहीं होती और कोई व्यवहार घटित हो जाता है, हम उसे आकस्मिक मानते हैं। अनेक व्यक्ति कहते हैं—मेरी इच्छा तो नहीं थी, पर पता नहीं मैं वहां क्यों चला गया। इच्छा तो नहीं थी पर हाथ हिल गया। इच्छा के बिना होने वाली घटना को आकस्मिक माना जाता है, स्वाभाविक नहीं। स्वाभाविक घटना वही है जिसके पीछे हमारी इच्छा होती है, इच्छा का कोई न कोई अनुबंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अव्यक्त इच्छा है अविरति

जैन दर्शन और उसकी साधना पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण शब्द आता है अविरति। अविरति की तुलना अचेतन इच्छा से की जा सकती है। यह अव्यक्त इच्छा है। व्यक्त इच्छा चेतन बन जाती है। अविरति अव्यक्त इच्छा है।

प्रश्न पूछा गया—हिंसक कौन? असत्यवादी कौन? उत्तर दिया गया—जो जीव को मारता है, वह हिंसक है। वह भी हिंसक है जिसके मन में जीव को मारने की इच्छा बनी हुई है। दोनों हिंसक हैं। जीव का प्रत्यक्षतः घात करने वाला उस समय के लिए हिंसक होता है किन्तु जीव को मारने की जिसके अचेतन मन में इच्छा बनी हुई है, वह व्यक्ति चौबीस घंटा हिंसक है। प्रवृत्ति की दृष्टि से कोई-कोई आदमी कुछ समय के लिए हिंसक बनता है।

जो झूठ बोलता है वह असत्यवादी है। यह प्रवृत्ति की दृष्टि से है। अवचेतन मन में झूठ बोलने की जो इच्छा बनी हुई है, उसकी अपेक्षा वह आदमी चौबीस घंटा झूठ बोलने वाला है, असत्यवादी है।

महाव्रत : अचेतन इच्छा का नियमन

प्रवृत्ति का जगत् बहुत छोटा है। अचेतन इच्छा का जगत् बहुत बड़ा है। इसीलिए साधना के क्षेत्र में इस बात पर ध्यान दिया गया कि विरति होनी चाहिए। हमारा अनुशासन केवल चेतन इच्छा पर ही नहीं, अचेतन इच्छा पर भी होना चाहिए। अचेतन इच्छाओं के नियमन का नाम है महाव्रत और उनका नियमन करने वाले का नाम है मुनि। जो अचेतन इच्छाओं पर नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकता, वह मुनि नहीं बन सकता। जो अचेतन इच्छाओं पर एक सीमा तक नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकता, वह न श्रावक बन सकता है, न अणुव्रती बन सकता है और न नैतिक बन सकता है। अणुव्रती और नैतिक वही बन सकता है जो एक सीमा तक अचेतन इच्छाओं का नियमन करना प्रारंभ कर देता है।

संघर्ष इच्छाओं का

इच्छाओं का संघर्ष बहुत बड़ा संघर्ष है। आदमी में मानसिक द्वन्द्व चलता है। एक प्रेरणा उसे लक्ष्य की ओर आकर्षित करती है तो दूसरी प्रेरणा उसे रोकना चाहती है। यह द्वन्द्व चलता रहता है। मेंटल-टेंसन आज की बड़ी बीमारी है। इसका मूल है मानसिक द्वन्द्व, इच्छाओं का संघर्ष। एक आदमी ने नैतिक जीवन जीने का लक्ष्य निर्धारित कर डाला। एक प्रेरणा जागी और लक्ष्य बन गया। जैसे ही वह उस ओर चलना प्रारंभ करता है, दूसरी-दूसरी इच्छाएं विरोध प्रस्तुत करती हैं, अवरोध पैदा करती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिद्वन्द्वी इच्छाएं जागती हैं और अव्यक्त ध्वनि में कहती हैं—कैसा पागलपन! क्या ईमानदारी से, नैतिकता से कभी धंधा चला है ? धन का अर्जन हुआ है ? कैसे ब्याहोगे अपनी बेटियों को ? खर्च के लिए कहां से आएगा पैसा ? ये प्रतिद्वन्द्वी इच्छाएं ऐसा घेरा डालती हैं कि उस व्यक्ति का नैतिक बने रहने का लक्ष्य धरा रह जाता है और अनैतिक आचरण प्रारंभ हो जाता है।

दूसरा बाधक तत्त्व है अहं भाव। यह भी व्यक्ति को नैतिक और सदाचारी रहने नहीं देता। अहं मूल इच्छा पर आवरण डाल देता है।

अर्थ मानसिक द्वन्द्व का

भगवान ऋषभ के पुत्र बाहुबली समरांगण में विजयी बन गए। फिर वे मुनि हो गए। मुनि बनने के बाद उन्होंने सोचा—भगवान् ऋषभ के चरणों में उपस्थित हो जाऊं। संकल्प कर डाला। दूसरे ही क्षण अहं आगे आ गया। अहं के परिवेश में उन्होंने सोचा—मेरे निन्यानवें छोटे भाई भगवान् के पास दीक्षित हो चुके हैं। वे संयम-पर्याय में मुझसे बड़े हैं। मुझे उन सबको वंदना करनी होगी। क्या मैं बाहुबली किसी के सामने झूकूंगा ? क्या बड़ा भाई छोटे भाईयों के सामने नत होगा ? ऐसा नहीं हो सकता। ऋषभ के चरणों में जाने का बाहुबली का संकल्प टूट गया और वे वहीं कायोत्सर्ग की मुद्रा में स्थित हो गए। चरण स्तब्ध हो गए, रुक गए। अहं का वेग प्रबल था। वे उसके आगे हार गए।

यह है अपने द्वारा अपना संघर्ष, स्वयं से स्वयं का युद्ध। इसमें लड़ने वाला कोई दूसरा होता ही नहीं। मानसिक द्वन्द्व का अर्थ है—लड़ने वाला भी स्वयं और प्रतिपक्षी भी स्वयं। द्वन्द्वी भी स्वयं और प्रतिद्वन्द्वी भी स्वयं। पक्ष भी स्वयं और प्रतिपक्ष भी स्वयं। अपनी ही इच्छाएं सामने आकर ऐसा संघर्ष छेड़ देती हैं कि व्यक्ति आगे कुछ कर ही नहीं सकता।

इच्छाओं का विवेक

जब इच्छाओं का संघर्ष पैदा हो जाता है, अनेक इच्छाएं पैदा हो जाती हैं तो आदमी को उचित इच्छा का चुनाव करना होता है। जहां इच्छा है वहां विवेक भी है। अगर विवेक नहीं होता तो इच्छा आदमी को अभिभूत कर देती। यह सुविधा है कि इच्छा के साथ विवेक चेतना भी है। हमें एक ऐसा मस्तिष्क मिला है जो इच्छाओं की काट-छांट करता है, चुनाव करता है। चुनाव करना महत्त्व की बात है।

अध्यापक ने विद्यार्थी से पूछा—एक ओर भैंस है और एक ओर बुद्धि। तुम क्या लेना पसंद करोगे ? अपनी इच्छा के अनुसार चुनाव करलो। विद्यार्थी बोला—मुझे भैंस लेना पसंद है क्योंकि वह मेरे पास नहीं है। अध्यापक बोला—मेरे सामने यह प्रश्न आता तो मैं भैंस को छोड़कर बुद्धि को लेना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसंद करता। विद्यार्थी ने कहा—ठीक ही है। जिसके पास जिसकी कमी होती है, वह उसी को चाहता है।

सही चीज का चुनाव दुष्कर होता है।

प्रश्न है चुनाव का

बादशाह ने बीरबल से कहा—अरे बीरबल ! यह क्या ? मेरी सभा के सभी सदस्य सुन्दर हैं, गौर वर्ण वाले हैं। केवल तुम ही असुन्दर हो, काले हो, ऐसा क्यों हुआ ? बीरबल बोला—जहांपनाह ! यह ठीक ही हुआ, क्योंकि भगवान् के घर जब बुद्धि और रंगरूप का बंटवारा हो रहा था तब इन सबने रंगरूप को चुना और मैंने बुद्धि को। मैं बुद्धिमान् हो गया और ये रंगरूप वाले हो गए।

चुनाव का प्रश्न अत्यन्त महत्त्व का प्रश्न होता है। इच्छाओं के संघर्ष में किस इच्छा को चुनना चाहते हैं और किसको पराजित करना चाहते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। जीवन प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओं का रंगमंच है। कभी अचानक सद् इच्छाएं जागती हैं, मनुष्य नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर प्रस्थित होने का संकल्प करता है। पर जब प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओं का प्रहार होता है तब टिकले वाला ही टिक पाता है।

मैं जब प्रव्रजित हो रहा था तब मेरे साथ ५-६ व्यक्ति और दीक्षित होने वाले थे। मैं अकेला मुनि बना, वे यों ही रह गए। इच्छाओं का ऐसा दबाव आया कि वे सब उनके नीचे दब गए, पराजित हो गए।

जब प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओं का प्रहार होना प्रारंभ होता है, अपने लक्ष्य पर या अपनी सद् इच्छा पर अडिग रहना कठिन हो जाता है। इच्छा को बनाए रखना एक समस्या हो जाती है।

अनैतिकता का कारण

अनैतिकता आज की प्रज्वलित समस्या है। सभी उसके परिणामों को भोग रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति को परिणाम भोगना पड़ रहा है। कहीं भी चले जाएं। सर्वत्र अनैतिकता का बोल बाला है। हर आदमी के मन में शिकायत है और हर आदमी उसे भोग रहा है। जो शिकायत करता है वह भी अनैतिक आचरण करता है। प्रश्न होता है कि बुराई को जानते हुए भी आदमी उसका आचरण क्यों करता है ? अनजान आदमी बुराई करता है तो माना जा सकता है कि वह अज्ञानवश वैसा कर रहा है, पर बुराई को जानने वाला वैसा करता है तो बात समझ में नहीं आती। जो यह नहीं जानता कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, वह यदि आग में हाथ डालता है तो बात समझ में आ जाती है। जो परिणाम को जानते हुए भी आग में हाथ डालता है तो असमंजसता पैदा हो जाती है। इसका समाधान यही है कि वैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति इच्छाओं के संघर्ष में जीते है। यह एक महायुद्ध है, जो दिमाग में निरंतर चलता रहता है। बहुत कम व्यक्ति इस चक्र से बच पाते हैं। ऐसी स्थिति में क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि आदमी नैतिक बन सकता है? अणुव्रती बन सकता है?

बंधन : मोक्ष

आदमी कितनी बार बंधता है और कितनी बार मुक्त होता है। समस्याओं का उलझना बंधन है और समस्याओं का सुलझना मोक्ष है। हम वर्तमान की बात करें। जिसका इच्छाओं पर अनुशासन नही हैं वह आदमी बंधता है, आगे से आगे बंधता चला जाता है। जिस व्यक्ति का अपनी इच्छाओं पर अनुशासन हो गया, मुख्य इच्छा का चुनाव कर प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओं को जिसने पराजित कर डाला, वह खुलता चला जाता है। उसकी सारी समस्याएं सुलझ जाती हैं।

शक्ति का स्रोत

यह वह बिन्दु है जहां ध्यान के प्रयोग को समझा जा सकता है। ध्यान के बिना एकाग्रता की शक्ति का विकास नहीं होता, निर्विचार चेतना का विकास नहीं होता और उसके बिना इच्छाओं पर अनुशासन करने की शक्ति का विकास नहीं होता। हमारा मनोबल इतना प्रबल हो कि उससे इच्छाओं का नियमन किया जा सके। इच्छा के संघर्ष में हम पराजित न हों, इच्छा को पराजित कर दें। ऐसा होना मनोबल के बिना संभव नहीं है। मनोबल एकाग्रता और निर्विचारता के बिना संभव नहीं होता। यदि हम एक विचार पर दस मिनिट भी टिक सकें तो दस दिन में पता चल सकता है कि शक्ति किसको कहते हैं? शक्ति कैसे फूटती है? शक्ति के इस स्रोत का स्वयं अनुभव होने लग जाता है। जो व्यक्ति आधा या एक घंटा एक विचार पर टिक पाता है, उसे देवता भी विचलित नहीं कर सकते।

परीक्षण मनोबल का

एक श्रावक था अरहन्नक। देवता उसके पास आकर बोला—अरहन्नक! तुम धर्म को छोड़ दो। तुम्हें कोई कष्ट नहीं दिया जाएगा अन्यथा मौत के घाट उतार दिए जाओगे। भय और प्रलोभन—दोनों दिखाए, पर अरहन्नक अडिग रहा। यह था मनोबल का निदर्शन।

ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं, जो तनिक प्रलोभन से डिग जाते हैं, धर्म-कर्म छोड़ देते हैं। एक व्यक्ति ने कहा—यह जूठन खा लो। उसने कहा—मैं शुद्धता में विश्वास करता हूं। कैसे खा लूं जूठन को? प्रलोभन दिखाया गया—यदि जूठन खाओगे तो सोने का कटोरा मिलेगा। उसने कहा—जूठन खाने में कौन सा दोष है? मां बच्चे का जूठन खाती है। बच्चे मां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का जूठन खाते हैं। लो, मैं भी खा लेता हूं। वह जूठन खा गया।

प्रलोभन ने उसको विचलित कर डाला। वह अपनी बात पर अडिग नहीं रह सका।

परिस्थिति को सहना आसान नहीं

साधक के सामने प्रतिकूल और अनुकूल—दोनों प्रकार की बाधाएं आती हैं। प्रतिकूल बाधाओं को सहना सहज होता है पर अनुकूल बाधाओं को सहना अत्यन्त कठिन होता है। वही व्यक्ति अनुकूल बाधाओं को सह सकता है जिसने एकाग्रता की शक्ति को विकसित कर लिया है। वह चट्टान जैसा रहने में सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति कायसिद्धि, वाक्सिद्धि, और मनःसिद्धि कर लेता है वही इस प्रकार की चेतना का विकास कर सकता है। उसमें कोई प्रकंपन नहीं होता, कोई विचलन नहीं होता। जो अपने शरीर, वाणी और मन को स्थिर रखना नहीं जानता, वह कभी ऐसा नहीं हो सकता। उसके लिए पग-पग पर विचलन है। ऐसा आदमी परिस्थिति आए न आए, डगमगा जाता है।

बाधक है इच्छा का द्वन्द्व

नैतिक होने के लिए आध्यात्मिक होना बहुत जरूरी है। आध्यात्मिक होने का अर्थ है—अपने भीतर प्रवेश करना, अन्तर्जगत् में होने वाले प्रकंपनों और घटनाओं का अनुभव करना। क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को जानना। इच्छा के प्रति जागरूकता बढ़ते ही उसे भोगने की बात कमजोर हो जाती है। कोई आदमी इच्छा को जानकर ही नैतिक बन सकता है। आज का कथन है—वर्तमान परिस्थिति नैतिक होने में बाधक है। यह निष्कर्ष सही नहीं है। बाधा परिस्थिति पैदा नहीं करती। बाधा पैदा करता है इच्छा का द्वन्द्व।

इच्छा का अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्व है। वह मानवीय चरित्र की अभिव्यक्ति है, जीवन-यात्रा का एक अनिवार्य अंग है। उसकी उपेक्षा करना संभव नहीं है और उसकी हर आज्ञा को शिरोधार्य करना खतरे से खाली नहीं है। इन दोनों के बीच में मार्ग खोजना है और वह है—इच्छा का परिष्कार। इसी का दूसरा नाम है—नैतिकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. नैतिकता और अचेतन मन

हमारी दुनिया में बहुत सारी रचनाएं जटिल होती हैं। उन सब में शरीर की रचना सबसे ज्यादा जटिल है। इसको समझने के लिए शरीरशास्त्रियों ने काफी काम किया और मानसशास्त्रियों ने भी काफी ध्यान दिया, प्राचीनकाल के दार्शनिकों ने भी इस क्षेत्र को छानने का प्रयत्न किया। अभी तक भी अज्ञात-अज्ञात बना हुआ है, रहस्य रहस्य बना हुआ है। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि मैंने शरीर को पूरा समझ लिया है। शरीर के भीतर मन भी है, वाणी भी है, चेतना भी है और प्राणशक्ति भी है। शरीरशास्त्री शरीर के अवयवों के बारे में बहुत जानता है, किन्तु प्राणशक्ति के बारे में बिलकुल अनजान है। योग के आचार्यों ने लिखा—जो नाड़ी को नहीं जानता, वह योग का अधिकारी नहीं बन सकता। नाड़ी-विज्ञान का अर्थ है—प्राण के प्रवाह की प्रणालियों को जानना। जो प्राण के प्रवाह की प्रणालियों को नहीं जानता, वह योग का अधिकारी नहीं बन सकता। अवयव का विज्ञान, प्राण का विज्ञान, मानसिक क्रिया का विज्ञान, वचन क्रिया का विज्ञान और उससे सूक्ष्म है चेतना का विज्ञान। इतने सारे ज्ञान और विज्ञान की परम्पराओं का संगम है हमारा शरीर। इसलिए इसकी रचना बहुत जटिल है।

दृष्टिकोण फ्रायड और यूंग का

चेतना की दृष्टि से उसके दो रूप सामने आते हैं—व्यक्त चेतना और अव्यक्त चेतना। मनोविज्ञान में इन्हें चेतन और अचेतन कहा गया है। 'फ्रायड' ने मन के दो संभाग बतलाए—चेतन मन और अचेतन मन। 'यूंग' ने इस अवधारणा को बदल दिया। उसने कहा—मन के दो संभाग ठीक नहीं हैं, क्योंकि मन के आधार पर बहुत निर्णय नहीं लिए जा सकते। मन बहुत जल्दी बदल जाता है। उसमें छिछलापन है, स्थायित्व नहीं है, गंभीरता नहीं है। जो इतना जल्दी बदल जाता है उसके आधार पर कैसे निर्णय किया जा सकता है? उन्होंने मन को छोड़ दिया और माइंड की उपेक्षा कर उसके स्थान पर 'साइक' शब्द का प्रयोग किया। यह अधिक दायित्व वाला है, अधिक स्थायी है। यूंग ने चित्त के दो संभाग कर दिए—चेतन और अचेतन। फ्रायड ने कहा था कि अचेतन मन में गंदगी भरी पड़ी है, कूड़ा भरा पड़ा है। वह दमित इच्छाओं का भंडार है। जो वासनाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं दमित हो जाती हैं, वे अचेतन में चली जाती हैं। वहां दबी पड़ी रहती हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वप्न के रूप में उभर कर सामने आती रहती हैं। यूंग ने इसका भी प्रतिकार किया। उन्होंने कहा—अचेतन मन केवल दमित इच्छाओं का भण्डार नहीं है। इसमें बहुत सारे अच्छे संस्कार भी हैं। दमित इच्छाए हैं तो साथ-साथ में अच्छाइयां भी हैं। स्वरूप बदल गया। कर्मशास्त्र में हजारों वर्ष पहले इस विषय पर बहुत काम हुआ था। उसके संदर्भ में आज के मनोविज्ञान की समीक्षा करते हैं तो यूंग का मत बहुत अधिक सम्मत बैठता है। जैन आचार्यों ने कर्मशास्त्र के आधार पर दो प्रणालियां निर्धारित कीं। एक प्रणाली का नाम है औदयिक प्रणाली, जिसे मनोविज्ञान की भाषा में 'रिटमुलेशन ऑफ टेन्सन' कहा जा सकता है। यह आवेशों को उत्तेजना देती है। दूसरी है—क्षायोपशमिक प्रणाली, यह उत्तेजना का विलय करती है, उसे शान्त करती है। औदयिक प्रणाली का प्रवाह और क्षायोपशमिक प्रणाली का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है।

दो प्रणालियां

हमारे अचेतन में, कर्मशास्त्र की भाषा में सूक्ष्मतम शरीर में संस्कारों का, बंधनों का भण्डार है। एक ओर बन्धन है तो दूसरी ओर बंधन काटने वाली प्रणाली भी है। केवल बंधन की प्रणाली ही नहीं है। बंधन को काटने वाली प्रणाली भी है। दोनों प्रणालियां निरन्तर काम कर रही हैं। इन दोनों प्रणालियों में एक संबंध भी है। औदयिक प्रणाली जब बाहर आती है तब क्षायोपशमिक प्रणाली उस पर नियमन करती है। क्रोध औदयिक प्रणाली का प्रवाह है। किसी आदमी को क्रोध आया। तत्काल क्षायोपशमिक प्रणाली सक्रिय हो जाएगी। वह कहेगी अभी गुस्सा मत करो, जरा ठहरो, कुछ रुको। कुछ देखो। फिर भी गुस्सा होता है। औदयिक प्रणाली का प्रवाह जब तीव्र होता है, क्रोध उभर आता है। क्षायोपशमिक प्रणाली का उपदेश मिलता है—क्रोध करते हो तो करो पर कम से कम इतना अभी मत करो। इससे बहुत हानि होती है। दोनों संकेत बराबर मिलते रहते हैं। औदयिक प्रणाली प्रबल होती है तो क्षायोपशमिक प्रणाली उस पर नियंत्रण भी रखती चली जाती है और अपने संदेश भी उसके पास पहुंचाती रहती है। दोनों में एक संबंध हो गया। दोनों साथ-साथ चलती हैं, मिलती नहीं हैं। समानान्तर रेखा की भांति अलग-अलग रहती हैं। व्यवहार की भाषा में ऐसा लगता है कि वे एक दूसरे के पूरक का काम करती हैं।

हम ज्यादा काम लेते हैं—चेतन चित्त से। जो इच्छाएं और आकांक्षाएं पैदा होती हैं, वे चेतन चित्त के स्तर पर होती हैं। एक इच्छा के पैदा होने पर हमारे सामने दो विकल्प प्रस्तुत होते हैं—१. इच्छा को पूर्ण करें २. या इच्छा का दमन करें। सामान्यतः दो बातें मानी जाती हैं, इच्छा पैदा करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या उसका दमन करना । हर इच्छा को पूरा करें—यह सामाजिक जीवन में संभव नहीं । कई इच्छाएं ऐसी होती हैं, जिनको पूर्ण नहीं किया जा सकता । उनको पूर्ण करना कभी संभव नहीं । इच्छा पर एक नियंत्रण है समाज की व्यवस्था का । इच्छा पर नियंत्रण है सभ्यता और शिष्टता का । उसका एक सूत्र है - अशिष्ट आचरण नहीं करना चाहिए । कुछ इच्छाएं ऐसी होती हैं, जिन्हें पूरा भी किया जा सकता है । वे पूर्ण हो जाती हैं । एक है अपूर्ण इच्छा, जिसको मनोविज्ञान की भाषा में दमित इच्छा कहा जाता है । इच्छा का दमन कर दिया, उसे पूरा नहीं किया । दमित इच्छा भीतर चली जाती है । अवचेतन में चली जाती है और वह बार-बार उभरती रहती है । वह सामान्य उपायों से निकलती नहीं, मिटती नहीं ।

इच्छा : दमन या भोग ?

दमित इच्छाएं, जो अचेतन इच्छाएं बन गईं, अचेतन में चली गईं, वे बार-बार उभरती रहती हैं । प्रश्न यह है कि इच्छा को पूरा करें या उसका दमन करें । पूरा करें यह संभव नहीं । बहुत सारे उस पर नियंत्रण करने वाले तत्त्व हैं और यदि दमित करें तो वह बार-बार उभरती रहती है । आखिर समाधान क्या होगा, कैसे हम उस इच्छा से छुटकारा पा सकेंगे । एक कोई रास्ता खोजना है । 'इच्छा पूर्ण कर लें' यह एक रास्ता है । पर इससे समाज व्यवस्था में उच्छृंखलता बढ़ती है । उस उच्छृंखलता के दुष्परिणाम भी आते हैं, आए हैं । आज एक छोटे बच्चे के मन में भी यह भावना बन गई कि इच्छा को रोकना नहीं चाहिए, उसे भोग लेना चाहिए, पूरा कर लेना चाहिए । इच्छा को पूरा करना भी एक समस्या है । इच्छा को पूरा करने का अर्थ है—अचेतन इच्छा को और अधिक बलवान बना देना, सशक्त बना देना । जिस इच्छा को भोगा, उस इच्छा का हमारा अभ्यास हो गया । जिसका अभ्यास हो जाता है, उसको टालना बहुत मुश्किल होता है । है । हम नए घर में जाएं, सीढ़ियों पर चढ़ें या सीढ़ियों पर से उतरें, वहां सावधानी बरतनी पड़ती है । क्योंकि हम उन सीढ़ियों से परिचित नहीं हैं । उन पर चढ़ने और उतरने का अभ्यास नहीं है । पर पांच-सात दिन चढ़ते रहें और उतरते रहें तो स्नायुओं को अभ्यास हो जाता है । फिर घबराने की कोई आवश्यकता नहीं होती । चाहे आंख मूंदकर सीढ़ियों पर चढ़ जाएं और चाहे उतर जाएं, कोई खतरा नहीं होता । आदमी की बात को छोड़ दें । कोई बैल गाड़ी के जुता हुआ है, दस कोश जाना है । एक दिन, दो दिन, दस दिन जिस रास्ते से गए फिर बैल को हांकने की कोई जरूरत नहीं है । उसे हांकने वाला मजे से सो जाता है, बैल अपने आप मार्ग पर चलता जाता है । कहां रुकना और कहां मुड़ना, वह अपने आप जान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेता है। यह होता है स्नायविक अभ्यास। इच्छा को पूरा करने का अर्थ है—एक स्नायविक आदत को डाल देना।

उलझन दोनों ओर

एक प्राकृतिक आदत होती है और एक अर्जित आदत होती है। हमारे स्नायुओं को हमने एक अभ्यास दे दिया और वह आदत बन गई। उसे बदलना बड़ा कठिन हो जाता है। पूरा करना भी एक समस्या है और पूरा न करना भी एक समस्या है। अगर पूरा न करें तो वह चेतन की दमित इच्छा अचेतन में चली जाती है और बार-बार उभरती रहती है। जैसे ही चिंतन मिला, निमित्त मिला, इच्छा उभरती है और वह सताती रहती है। दोनों ओर समस्याएं हैं। एक समस्या पर तो अधिक ध्यान दिया गया कि इच्छा का दमन अच्छा नहीं है किन्तु दूसरी समस्या पर कम ध्यान दिया गया कि हर इच्छा को पूरा करना भी अच्छा नहीं है। दोनों ओर से उलझन आ गई।

एक आदमी जा रहा था जंगल में। पीछे से आवाज आई—आगे मत जाओ। पूछा—क्यों? उत्तर मिला, आगे बाघ खड़ा है। सोचा, वापस चला जाऊं गांव में। वापस चला, नदी के पास आया, जो बीच में पड़ती थी। दूसरे आदमी ने कहा—आगे मत जाओ, आगे बाढ़ आ रही है। एक ओर बाघ आ गया और दूसरी ओर नदी की बाढ़ आ गई। वह बीच में ही रह गया।

हमारी स्थिति भी यही बन रही है। हम इच्छा को पूरा करें तो भी खतरा है और न करें तो भी खतरा है। इस समस्या पर अध्यात्म के आचार्यों ने, योग के आचार्यों ने अनुसंधान किया, कई प्रयोग किए और कुछ मार्ग सुझाए। मैं समझता हूं—वे मार्ग आज भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और मनोविज्ञान के क्षेत्र में काम करने वालों के लिए बहुत उपयोगी हैं। उनमें एक मार्ग है—अनुप्रेक्षा का। शास्त्रीयभाषा में अनुप्रेक्षा का प्रयोग करने से तीव्र विपाक मन्द विपाक बन जाता है। एक तीव्र लालसा पैदा हुई—काम की लालसा, सेक्स की लालसा, भय की वृत्ति, धन की लालसा या भोजन की आसक्ति। प्रश्न उठा कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? आचार्य ने कहा—अनुप्रेक्षा का प्रयोग करो। अनुप्रेक्षा के अनेक प्रयोग हैं, सूत्र हैं। अनुप्रेक्षा का एक सूत्र है—चिन्तन। उस बारे में चिन्तन करो। सारे पहलुओं पर चिन्तन करो। इसके प्रारम्भ का बिन्दु क्या होगा? मध्य का बिन्दु क्या होगा और अन्तिम बिन्दु क्या होगा? किसी भी इच्छा को सहसा स्वीकार मत करो। बहुत सारे लोग इच्छा के अनुसार ऐसा काम कर डालते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समीक्षा करें इच्छा की

एक युवक ने पैर पर पट्टी बांध ली। किसी ने पूछा—भाई ! पैर में पट्टी क्यों बांधी है ? बोला, मेरे पड़ोसी की टांग टूट गई है। उसने पट्टा बंधाया तो उसकी सहानुभूति में मैंने भी पट्टी बांध ली।

इसका कोई अर्थ नहीं है।

प्रत्येक इच्छा की सबसे पहले हमें समीक्षा करनी चाहिए कि इस इच्छा को पूरा करने से क्या लाभ होगा ? न करने से क्या हानि होगी ? इसका परिणाम क्या होगा ?

बीमार आदमी को मिठाई खाने की इच्छा हो गई। पेट खराब और पाचन की स्थिति बिलकुल कमजोर। पचा नहीं सकता कोरा दलिया भी, गरिष्ठ मिठाई को कैसे पचा पाएगा ? पर इच्छा पैदा हुई है, क्या करे ? इच्छा को पूरा करे या इच्छा का दमन करे ? पूरा करे तो भी सताएगी और दमन करे तो भी सताएगी। स्वास्थ्य भी बिगड़ जाएगा। ऐसी स्थिति में वह क्या करे ? उस समय यदि अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराया जाए या किया जाए तो बहुत अच्छा समाधान मिल सकता है। भोजन के प्रत्येक पहलू पर विचार करना, खाने पर विचार करना, खाने के परिणाम पर विचार करना, यह आवश्यक है।

"उतर्‌यो घाटी, हुयो माटी" यह सूत्र अनुप्रेक्षा का ही सूत्र है। स्वाद कितनी देर का है ? बस, जीभ पर डाला उतनी ही देर का है स्वाद। स्वाद का समय तो कुछ ही देर का होता है और वह भी उनके लिए जो ज्यादा लोलुप होते हैं, आसक्त होते हैं। उनका ध्यान आसक्ति में ही लगा रहता है। जीभ के सारे तन्तु स्वाद को ग्रहण नहीं करते। उसके कुछ ही तन्तु स्वाद को ग्रहण करते है। अगर वहां तक खाद्य पदार्थ नहीं जाता है और सीधा उतर जाता है तो स्वाद पूरा आता ही नहीं है। स्वाद के क्षण भी बहुत कम हैं। फिर आसक्ति किस काम की ? रुचि किस बात की ? लोलुपता किस बात की ? खाने की आसक्ति नहीं है, किन्तु एक संस्कार भीतर बना हुआ है, बन्धन बना हुआ है और वह बन्धन जब जाग जाता है तब वह एक इच्छा पैदा कर देता है, वृत्ति पैदा कर देता है। पतंजलि ने कहा—चित्त में जो वृत्तियां पैदा होती हैं, चित्त में जो तरंगे पैदा होती हैं उनका निरोध करने का नाम है योग। वृत्ति को रोकना जरूरी है। इच्छा को सफल बनाना जरूरी नहीं है।

इच्छा को विफल करना भी आवश्यक

एक क्षत्रिय बारह वर्ष तक शत्रु की खोज में घूमता रहा। बारह वर्ष के बाद सफलता हाथ लगी। वह अपने दुश्मन को पकड़ कर अपने घर के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंगन में ले आया। अपनी मां के सामने लाकर बोला, मां ! आज मुझे सफलता मिली है। यह वह दुश्मन है जिसने मेरे भाई को मारा था। अब यह मेरे हाथ में आया है। मैं तुम्हारी साक्षी से इसका गला काटूंगा। उसने हाथ में तलवार ली। वह बेचारा कांप रहा है। उसने सोचा— मैंने अपराध किया है। इसके भाई को मारा है। अब इसकी पकड़ में आ गया। बचने का कोई उपाय नहीं है। तत्काल उसे एक बात सूझी। पास में कोई तिनका पड़ा था। उसे उठाया और मुंह में डालकर बोला— "मैं तेरी गाय हूं।" मां वहीं खड़ी थी। मां बोली, बेटा ! बस, अब कुछ मत करना। तलवार नीचे रख दो। वह बोला, क्यों ? मैंने इतना पसीना बहाया, खून बहाया और इसके लिए चक्कर लगाता रहा, न खाने की सुध और न पीने की सुध। न नींद ली। कुछ भी नहीं किया। इतना श्रम कर इसे पकड़ा और तुम कहती हो कि तलवार नीचे रख दो। मां बोली, सब जगह क्रोध को सफल नहीं किया जा सकता। कुछ जगह क्रोध को विफल भी करना होता है। सफल मत करो। अब यह गाय बन गई है, क्योंकि इसने तिनका मुंह में ले लिया है। अब इसे मारा नहीं जा सकता।

जरूरी है शोधन

क्रोध को सब जगह सफल करना आवश्यक भी नहीं है और अच्छा भी नहीं है। स्थिति या संदर्भ हमें देखना होता है कि कौन-सी इच्छा कब और कैसे पूरी करनी चाहिए ? जब हम इच्छा पर अनुप्रेक्षा करते हैं तो हमारी बहुत सारी दृष्टियां अपने आप परिमार्जित हो जाती हैं। जैसे करेला बहुत कड़वा होता है। इसका साग बनाने वाली महिला जानती है कि इसका साग ऐसे ही नहीं बनाया जाता। पहले इसकी कड़वाहट को दूर करना होता है। विष का शोधन किया जाता है। संखिया भी दिया जाता है दवा के रूप में। पहले उसका शोधन किया जाता है। पारा बहुत उपयोगी है पर सीधा कच्चा पारा कोई खा नहीं सकता। गंधक कोरा खा ले तो शरीर फूट जाएगा। पारे का भी शोधन होता है और गंधक का भी शोधन होता है। ऐसे ही इच्छा का शोधन करना भी जरूरी है। अगर शोधन नहीं करते हैं तो इच्छा जहर बन जाती है। इच्छा शोधन करने का एक सूत्र है अनुप्रेक्षा। इच्छा एक पारा है। इच्छा एक गंधक है। इच्छा एक संखिया है। उसको सीधा जिसने पूरा कर लिया वह शारीरिक हानि भी उठायेगा, मानसिक हानि भी उठाएगा और खतरे में भी डूबता चला जाएगा। इच्छा को पूरा करने का यानी सेक्स की इच्छा को पूरा करने का परिणाम आया है एड्स की बीमारी, जो आज की बीमारियों में सबसे भयंकर बीमारी है। यह एक उच्छृंखल इच्छा की पूर्ति का परिणाम है। इच्छा के शोधन और परिष्कार का महत्त्वपूर्ण सूत्र है अनुप्रेक्षा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा-शोधन का सूत्र : आनंद की खोज

दूसरा सूत्र है—आनन्द के स्रोत की खोज। इच्छा के साथ आनंद का भाव जुड़ा रहता है। आदमी आनंद के क्षणों को छोड़ना नहीं चाहता। प्राचीन साहित्य में कहा गया— वर्तमान में जो सुख मिला है, वर्तमान में जो भोग मिला है, वर्तमान में जो सुविधा मिली है, वर्तमान में जो पदार्थ मिले हैं उन्हें छोड़ते हो और संन्यासी बनते हो, त्यागी बनते हो, यह तुम्हारा प्रयत्न वैसा ही प्रयत्न है कि आज की परोसी हुई थाली को छोड़कर कल की थाली की आशा करना। वैसी ही मूर्खता है कि खड़ी फसल को काटकर रेगिस्तान में बीज बोना।

एक मुस्लिम युवक ट्रेन में सिगरेट पी रहा था। परिवार के लोगों ने कहा—तुम सिगरेट को छोड़ दो, यह बहुत नुकसान करती है। फेफड़ा खराब होता है, कैंसर की बीमारी हो जाती है। तुम छोड़ दो। वह बोला—मैं मूर्ख हूं क्या ? मैं नहीं छोडूंगा। आप मुझे क्या समझाते हैं। घंटा भर संघर्ष चलता रहा। जीवन-विज्ञान के प्रशिक्षक उसी डिब्बे में बैठे थे। वे उनके संघर्ष को देखते रहे, सुनते रहे। जब वह थोड़ा थमा तो प्रशिक्षक ने युवक से कहा—भाई! तुम्हारी बात ठीक है। तुम सिगरेट तो नहीं छोड़ सकते पर मैं तुम्हें इससे भी बढ़िया सिगरेट पीना सिखा दूं तो ?

आदमी बढ़िया चाहता है। घटिया कोई भी नहीं चाहता।

वह युवक बोला—यदि बढ़िया सिगरेट मिल जाएगी तो इसको छोड़ दूंगा।

प्रशिक्षक ने कहा—आओ, मेरे पास बैठो। उसे बुला लिया और कहा कि तुम जब सिगरेट पीते हो, कश खींचते हो तो तुम्हे बड़ा मजा आता होगा।

उसने कहा—हां।

प्रशिक्षक ने कहा—देखो, तुम एक नथुने से श्वास लो और दूसरे से निकालो, फिर दुबारा उस नथुने से सांस लो और दूसरे से निकालो। यह अनुभव करो कि मैं सिगरेट के कश ले रहा हूं और कश को छोड़ रहा हूं।

उसने कहा—ऐसे नहीं। मैं इसे करके देखूंगा। वह अपने स्थान पर चला गया। उसने दीर्घश्वास और समवृत्ति श्वास का प्रयोग किया। कुछ क्षणों के बाद आकर बोला, यह तो बहुत अच्छा है। यह सिगरेट बहुत बढ़िया है। वह दीर्घश्वास और समवृत्ति श्वास का प्रयोग एक घंटे तक करता रहा। एक घंटे के बाद बोला—मैं शपथ लेता हूं, अब कभी सिगरेट नहीं पीऊंगा।

प्रशिक्षक ने कहा—ऐसे नहीं, कुरान की शपथ से कहो तो मैं मानूं।

उसने कहा, कुरान की शपथ से कहता हूं कि अब मैं सिगरेट नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीऊंगा। आपने बहुत बढ़िया सिगरेट मुझे दी है।

घरवालों का कलह भी शान्त हो गया और समस्या भी शांत हो गई। उसने नई सिगरेट पीना शुरू कर दिया।

यह तब संभव बना जब नया और अच्छा विकल्प सामने आया। बच्चा मिट्टी खाता है तो माता उसे वंशलोचन देती है। बच्चा उसे मिट्टी मानकर खाता है। वंशलोचन हानिकारक नहीं होता। बच्चे की मिट्टी खाने की आदत छूट जाती है।

नए विकल्प की खोज

एक नया विकल्प सामने आता है और विशेष आनंद का अनुभव होता है तो वृत्ति में परिवर्तन आ जाता है, इच्छा बदल जाती है। इच्छा के परिष्कार का और अचेतन इच्छा के परिष्कार का दूसरा साधन है नए विकल्प की खोज। जिस वृत्ति में जो आनंद आ रहा है उससे अधिक आनंद की खोज। खाने में स्वाद आता है किन्तु जिस व्यक्ति ने खेचरी मुद्रा का अभ्यास कर लिया, उसे जो रस और आनंद आएगा, फिर उसका खाने का रस छूट जाएगा, खाने की लोलुपता छूट जाएगी। जिसने खेचरी मुद्रा से स्रवित होने वाले रस का आनंद ले लिया, उसका खाने का स्वाद समाप्त हो जाएगा। जिस व्यक्ति ने अन्तर-यात्रा का अच्छा प्रयोग कर लिया, उसका जो काम-रस है, काम वासना का रस है, वह कम होने लग जाएगा, हल्का पड़ने लग जाएगा। जब तक कोई बड़ा आनंद हम नहीं ले लेते तब तक छोटा आनंद छूटता नहीं है। जिस इच्छा के साथ आनंद जुड़ा हुआ है, वह इच्छा छूट नहीं सकती। वह तभी छूट सकती है जब उससे बड़ा आनंद हमें मिलने लग जाए।

इच्छा का शमन विनिवर्तना से

तीसरा प्रयोग है विनिवर्तना का। उसका निवर्तन करना। अपने आपको उससे हटा लेना। उससे अलग कर देना। यह पृथक्करण है, भेद-विज्ञान है, अपने आपको भिन्न अनुभव करना है। मन में इच्छा पैदा हुई और हम अभ्यास करें कि मैं तो इच्छा नहीं हूं। अगर मैं इच्छा होता तो इच्छा निरंतर बनी रहती। इच्छा पैदा हुई है तो मेरे पास आई क्यों? आई है और पैदा हुई है। इसका अर्थ है—यह मेरे से भिन्न है। मैं इच्छा नहीं हूं। मैं चेतना हूं और मैं एक उपयोग हूं। इच्छा मुझसे भिन्न है। उससे भेद का अनुभव करें। विनिवर्तना इच्छा को बिल्कुल शान्त कर देती है। उससे इच्छा का शमन हो जाता है। उसका उभार भी कम होने लग जाता है। हमारी एक खोज चलती है इच्छा की पूर्ति में, दूसरी खोज चलती है इच्छा की विनिवर्तना में। दोनों खोजें अलग-अलग चलती हैं।

केश बड़ा जटिल था। वकील ने केश लड़ा और वह केश जीत गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुवक्किल बोला—वकील साहब ! आपने मेरी नौका पार लगा दी। बड़ा जटिल काम था। असंभव जैसा लग रहा था। आपने बहुत श्रम किया और हम विजयी बन गए। आपको मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूं। मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं। वकील ने कहा—शब्दों को खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है, बस रुपया दो।

शब्दों से वकील संतुष्ट नहीं होता। उसे शब्दों की जरूरत नहीं है। उसे जरूरत है रुपयों की। वे मिल जाए तो और कुछ भी देने की जरूरत नहीं है।

अस्वीकार करना सीखें

हमारी समस्या है—जो भी समस्या पैदा होती है हम उसे स्वीकार कर लेते हैं, अपना लेते हैं। हमें अस्वीकार की बात को समझना है। त्याग का अर्थ छोड़ना नहीं है। त्याग का अर्थ है अस्वीकार। स्वीकारा ही नहीं उसको। जब स्वीकारा ही नहीं तो वह आएगा कहां से। जब दरवाजा पहले ही बंद कर दिया तो पाहुना आएगा ही कहां से। पाहुनें को बुला लिया तो वह पक्का पाहुना बन जाएगा। जब हम इच्छा को स्वीकार लेते हैं तब वह पक्का पाहुना बन जाता है और सताता रहता है।

विनिवर्तना का अर्थ है अस्वीकार। भगवान महावीर से पूछा गया—विनिवर्तना से जीव को क्या मिलता है। उत्तर मिला—पहले जो बंधन किया है उसकी निर्जरा हो जाती है। यानी जो इच्छाएं हमने अचेतन में डाल दी हैं, जो संस्कार और जो आदतें अचेतन में चली गई हैं उन सब की निर्जरा हो जाती है, शोधन हो जाता है, सफाई हो जाती है।

मनोविज्ञान में माना गया है—चेतन और अचेतन चित्त में अदला-बदली होती है। चेतन की बात अचेतन में चली जाती है और अचेतन की बात उभर कर फिर चेतन में चली आती है। यह अदला-बदली का चक्र निरंतर चलता रहता है। अगर हम विनिवर्तना की बात सीख जाते हैं तो अदला-बदली को रोक सकते हैं। चेतन को बाहर की घटना से प्रभावित न होने दें तो अदला-बदली का क्रम बंद हो जाएगा। जब भीतर कोई रसद नहीं पहुंचेगी तो वह अपने आप शांत हो जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. नैतिकता और मन के खेल

वर्तमान का समाज मानसिक धरातल पर अधिक जी रहा है। जो समाज मन के धरातल पर जीता है, उसके लिए नैतिक होने में कठिनाई हो जाती है। आज जो नैतिकता की समस्या है, वह मूलतः मानसिक समस्या है। मानसिकता बदलती है, आदमी नैतिक बन जाता है। मानसिकता अच्छी नहीं होती है तो आदमी अनैतिक बन जाता है। नैतिकता का संबंध जितना मानसिकता से है उतना भौतिकता से या पदार्थ से नहीं है। पदार्थ के साथ नैतिकता का संबंध बाद में है और मानसिकता के साथ पहले है।

प्रश्न है नैतिकता का

समाधान खोजने वाले पदार्थ की स्थिति को बदलना चाहते हैं। अगर पदार्थ की स्थिति बदल जाए तो आदमी नैतिक बन जाए। यह शायद बहुत बड़ी भ्रांति है। इस भ्रांति में चलने वाला नैतिक नहीं हो सकता। प्राकृतिक प्रकोप आता है तब अकाल आ जाता है। जब समुद्री तूफान आता है, हजारों-हजारों, लाखों आदमी चपेट में आ जाते हैं। पदार्थ की स्थिति बदलती रहती है। किन्तु नैतिकता ऐसा तत्त्व नहीं है जो स्थिति के साथ बदल जाए। आज जो समाज नैतिक है और कल ऐसी स्थिति आई कि वह अनैतिक बन जाए। ऐसा नहीं होता। पदार्थ की स्थितियां तो बदल सकती हैं किन्तु नैतिकता इस प्रकार नहीं बदल सकती। नैतिकता हमारी एक मनोरचना है, मानसिकता है और वह ऐसे बदलती नहीं। मन की चंचलता के साथ जो समाज जीता है, उसके लिए नैतिक होने में बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है।

अनैतिकता का कारण

नैतिकता कब संभव है ? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है। इसका सीधा उत्तर है—जिस दिन मन के खेल खेलना आदमी बंद कर देता है, उस दिन नैतिकता की संभावना उज्ज्वल बन जाती है। मन का खेल बहुत चलता है। दुःख क्या है। मन का खेल है। महर्षि पतंजलि ने कहा—'दुःख-दौर्मनस्य-अंगमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः—ये चार बातें मन की चंचलता के साथ पैदा होती हैं। पहली बात है—दुःख। दूसरी है—दौर्मनस्य। तीसरी है—प्रकंपन। चौथी बात है—तेज श्वास और प्रश्वास। ये चारों मन की चंचलता के साथ जन्म लेती हैं। यदि विक्षेप नहीं है, मन की विक्षिप्त अवस्था नहीं है, चंचलता नहीं है तो दुःख पैदा नहीं हो सकता। आज जो अनैतिकता चल रही है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःख को मिटाने के लिए चल रही है। आदमी बड़ा दुःख का अनुभव कर रहा है। समस्या है रोटी की, एक बड़ा दुःख है। समस्या है लड़के-लड़कियों के विवाह की, एक बड़ा दुःख है। समस्या है मकान बनाने की, बड़ी समस्या है। समस्या है अच्छा जीवन जीने की। भौतिक समस्याएं हैं और इनसे आगे बड़ा आदमी बनने की समस्या है, धनकुबेर बनने की समस्या है, प्रसिद्धि पाने की समस्या है। सारे शारीरिक और मानसिक दुःख हैं और आदमी इन्हें बहुत भोग रहा है।

दुःख है चंचलता में

प्रश्न होता है—दुःख क्यों है? कब तक है? योग के आचार्यों ने दो शब्द दिये—समाहित चित्त और विक्षिप्त चित्त। विक्षिप्त चित्त के लिए ये सारे दुःख होते हैं और समाहित चित्त को कोई दुःख नहीं होता। दुःख की अवस्था पैदा होती है विक्षिप्त चित्त में और जब चित्त समाहित होता है तो दुःख समाप्त हो जाता है। अभाव हो सकता है, पर दुःख नहीं हो सकता। समस्या हो सकती है पर दुःख नहीं हो सकता। समस्या होना एक बात है और दुःख का संवेदन होना बिलकुल दूसरी बात है। अभाव होना एक बात है और उसका संवेदन होना बिलकुल दूसरी बात है। ऐसा आदमी जो हिमालय पर एक झोंपड़ी में बैठा है, पास में कोरा कंबल है और ताप के लिए धूनी है, बड़ा सुख का अनुभव करता है। एक आदमी जिसके पास बड़ा प्रासाद है और सारे सुख के साधन हैं, कहीं से भी सर्दी-गर्मी नहीं आ रही है पर भीतर में इतनी सर्दी और गर्मी है कि उसका कहीं अंत ही नहीं आता। प्रश्न है—दुःख कहां से आता है? दुःख है चंचलता में। जिसने अपनी चंचलता को कम कर दिया उसके लिए दुःख कम हो गए। जिसने चंचलता को कम नहीं किया, उसके लिए दुःख ही दुःख है। जब दुःख होता है और चित्त असमाहित होता है, विक्षिप्त होता है तो आदमी अनैतिक बन जाता है। उसके लिए अनैतिकता अनिवार्य बन जाती है। दुःख कैसे मिटाए? जिसको दुःख मान रखा है, उसे कैसे मिटाएं? मनुष्य को बहुत धन चाहिए। मन में एक चंचलता पैदा हो गई कि धन कमाना है, समृद्धिशाली बनना है पर कैसे बनूं? पुरुषार्थ से तो जितना आता है उतना ही आता है। तब जैसे-तैसे बनने की एक भावना पैदा होती है उस विक्षिप्त मन के द्वारा। यह बिन्दु है, जहां से साधन-शुद्धि का विचार समाप्त हो जाता है। कोई साधन-शुद्धि नहीं रहती।

संबंध इच्छा और मन का

इच्छा और मन की चंचलता—ये दो हैं। इच्छा स्वतंत्र है। उसका मन से कोई संबंध नहीं है। जिसके मन होता है उसमें भी इच्छा होती है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जिसके मन नहीं होता उसमें भी इच्छा होती है। एक पेड़-पौधे के भी इच्छा होती है और एक विकसित प्राणी के भी इच्छा होती है। इच्छा हमारी चेतना के साथ होने वाला एक सार्वभौम धर्म है। प्रत्येक प्राणी में इच्छा होती है। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं। जिसमें इच्छा न हो। वीतराग होने पर भी जीवन चलाने की इच्छा होती ही है।

इच्छा का संबंध बहुत गहरा है। एक सूत्र दिया गया—इच्छा का परिष्कार करो। जो अचेतन इच्छा है उसका परिष्कार करना नैतिक होने के लिए बहुत जरूरी है। इच्छा का अपरिष्कार भी बड़ी बाधा है। अपरिष्कृत इच्छाएं आदमी को अनैतिक बनाती हैं। जब इच्छाएं प्रबल हो जाती हैं तो उनका भार मन को ढोना पड़ता है।

इच्छा और मन का बहुत गहरा संबंध है। मन का एक काम है चिंतन, दूसरा काम है कल्पना और तीसरा काम है स्मृति। मनुष्य निरन्तर चिन्तन करता रहता है, अतीत की स्मृति में डूबा रहता है, भविष्य के ताने-बाने बुनता रहता है। प्रश्न होता है—मनुष्य के मन में कल्पना क्यों पैदा होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि में कल्पना इच्छा की अभिव्यक्ति करती है। कल्पना का मनोवैज्ञानिक अर्थ है इच्छा की अभिव्यक्ति। इच्छा पैदा हुई और उसे प्रगट करने के लिए फिर इच्छा पैदा हुई। चिंतन को मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक आयाम दिए गए हैं। इनमें दो मुख्य आयाम हैं—साहचर्य चिंतन और निर्देशक चिंतन। साहचर्य चिंतन का एक स्वरूप है—कल्पना। आदमी कल्पना करता है। अपनी एक इमेज बना लेता है कि मैं ऐसा हूं। एक आदमी से कहा गया—भाई! तुम्हारे घर की ऐसी स्थिति नहीं है और इतना कर्ज ले लिया, इतना खर्च किया, अब तुम्हारी आने वाली पीढ़ी तक को इसे भुगतना पड़ेगा। वह बोला—क्या करूं? हमारे परिवार का गरिमापूर्ण स्थान रहा है, प्रतिष्ठा रही है। उसे मैं खंडित कैसे करूं? उसने प्रतिष्ठा का एक ढांचा खड़ा कर लिया। सबने ऐसा किया है और मैं ऐसा नहीं करूंगा तो समाज क्या कहेगा। जैसे-तैसे चाहे ऋण लेकर भी करें पर उस प्रतिष्ठा को बनाए रखना होता है। यह एक कल्पना है, साहचर्य चिंतन है।

मन के खेल

तीन शब्द आते हैं—दिवास्वप्न, मनोविलास और स्वप्न। मनोविलास जिस आदमी का स्वभाव होता है। वह केवल मन से कल्पनाएं खड़ी करता रहता है, हवाई किले बनाता रहता है, दिवास्वप्न लेता रहता है। सोता नहीं है, जागते हुए स्वप्न लेता है और ऐसी कल्पनाएं करता है जिन्हें शेखचिल्ली का घड़ा कहा जाता है। व्यक्ति में अतृप्त दमित इच्छाएं होती हैं और वे समय-समय पर अभिव्यक्त होकर विचित्र व्यवहार और आचरण करती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। आदमी कल्पनाएं करता रहता है। न जाने आदमी कितने मनसूबे बांधता है! ये कल्पनाएं अनैतिकता के लिए बहुत अच्छा आलंबन और सहारा बनती हैं। अनैतिक होने में इनका बड़ा हाथ होता है। एक कल्पना वह होती है, जिसे वास्तविक कहा जा सके, तर्क-संगत कहा जा सके। किन्तु आदमी आधारहीन और ऐसी कल्पना कर लेता है, जिसका न सिर होता है और न पैर होता है। उसी के सहारे चलता है। वह पूरी नहीं होती है तो दुःख भोगता है। सारी कल्पनाएं मन के खेल हैं।

मूल समस्या क्या है ?

जब तक इन मन के खेलों से आदमी परे नहीं हो जाता तब तक नैतिकता की बात सोचना कठिन है। बहुत प्रयत्न हो रहा है कि समाज में नतिकता आए। किन्तु सारे प्रयत्न उल्टी दिशा में जा रहे हैं। प्रश्न है नैतिकता का और समस्या है कि अनैतिकता बढ़ती जा रही है। प्रश्न है स्वास्थ्य का और बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। दवाइयां बढ़ रही हैं, हॉस्पीटल बढ़ रहे हैं, साथ-साथ बीमारियां भी उतनी ही तेजी से बढ़ रही हैं। नई-नई बीमारियां पैदा हो रही हैं। यही बात धर्म के क्षेत्र में घटित हो सकती है। धर्म का उपदेश भी बहुत बढ़ रहा है और धर्म के गुरु भी बहुत बढ़ रहे हैं। धर्म के क्षेत्र में बीसों भगवान् और अवतार पैदा हो गए हैं। नए-नए अवतार और भगवान् पैदा हो रहे हैं। धर्म के प्रवक्ता भी बढ़ रहे हैं और साथ-साथ उतनी ही तेजी से अनैतिकता भी बढ़ रही है। ऐसा क्यों? इसका क्या कारण है? जब तक मूल समस्या पर ध्यान नहीं जाएगा, समाधान नहीं मिलेगा। जरूरी है मूल समस्या को पकड़ना।

मूल को बदलना आवश्यक

सेठ का एक लड़का काफी व्यसनी हो गया। वह शराब पीता है, जूआ खेलता है, चोरी भी करता है। जितने व्यसन हैं, उन सबमें वह लिप्त है। एक दिन सेठ ने अपने मित्र से कहा, भाई! मैंने बहुत प्रयत्न कर लिया पर वह कोई बात स्वीकार ही नहीं करता। मैं जानता हूं—वह शराब पीता है, जूआ खेलता है। पूछने पर वह इन बातों को अस्वीकार कर देता है। कभी कहीं पकड़ में ही नहीं आता। घर और शरीर—दोनों को बरबाद कर रहा है। अगर तुम समझा सको तो बड़ा उपकार होगा। मित्र सेठ को आश्वस्त कर चला गया।

कुछ दिन बाद सेठ का मित्र उस लड़के के पास बैठा। उससे बात की। बातचीत के प्रसंग में उसने कहा—बोलो भाई! तुम्हारे भीतर कोई बुराई तो नहीं है?

बिलकुल नहीं है।

जूआ तो खेलते ही हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं, बिलकुल नहीं खेलता।

चोरी करते हो ?

नहीं, चोरी भी नहीं करता। मैं सेठ का लड़का हूं, चोरी क्यों करूं ?

शराब पीते हो ?

नहीं, शराब को मैं छूता ही नहीं। मैं जैन कुल में पैदा हुआ हूं। शराब को कैसे छू सकता हूं।

वह सब कुछ अस्वीकार करता चला गया।

मित्र ने पूछा—बताओ ! तुम्हारे भीतर कोई बुराई है क्या ?

लड़के ने कहा—एक बुराई है, मैं झूठ बोलता हूं।

जब तक यह एक बुराई है तब तक वह न तो जूआ खेलता है, न शराब पीता है और करता भी है तो सच नही बोलता। कोई बुराई सिद्ध नहीं हो सकती। वह सबको अस्वीकार करता चला जाएगा। जब तक मूल बुराई पकड़ में नहीं आएगी, समाधान नहीं होगा। मूल बुराई पकड़ में आ गई तो सब आ गया।

मित्र ने कहा—तुम मेरी एक बात मानो। यह संकल्प करो कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा। तुम चाहे शराब पीओ, जूआ खेलो, पर झूठ नहीं बोलोगे।

उसने कहा—अच्छा ! मैं दृढ़ संकल्प करता हूं कि एक माह तक झूठ नहीं बोलूंगा।

सांझ का समय हुआ और वह शराब पीने को जाने लगा। पिता ने पूछ लिया—कहां जा रहे हो ?

उसने कहा—शराब पीने जा रहा हूं।

पिता ने कहा—शराब पीते हो ?

वह शर्मिंदा हुआ और बैठ गया।

दूसरा प्रसंग आया।

पिता ने पूछा—कहां जा रहे हो ?

जूआ खेलने जा रहा हूं।

पिता बोला—जूआ खेलते हो ?

पिता चार-पांच दिन यही प्रश्न पूछता रहा और उसने हर बार सही उत्तर दिया। उस लड़के की आंखें शर्म से भर गईं, सुप्त चेतना जाग गई। उसने सोचा—मैं किस कुल में जन्मा हूं और कितनी बुराइयों में पहुंच गया हूं, फंस गया हूं ?

उसका सारा चरित्र बदल गया। एक झूठ छूटा, सारी बुराइयां छूट गईं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब तक मूल बात पकड़ में नहीं आएगी तब तक अनैतिकता की समस्या, अनैतिक व्यवहार समाप्त नहीं होगा। जब तक अनैतिकता विद्यमान रहेगी, दो नंबर के खाते भी चलेंगे और बुराइयां भी होती रहेंगी।

मूल समस्या है मानसिकता

मूल समस्या है मानसिकता, मन के खेल। जब तक हम समाज को मन के खेल से नहीं उबार पाएंगे तब तक उसे अनैतिकता की समस्या से नहीं उबारा जा सकता। हर आदमी मन का खेल खेल रहा है। मन के परे जाने की बात कोई नहीं सोच रहा है। मन के खेल की समाप्ति तब संभव है जब चंचलता को कम किया जाए। हम मन से परे जाएं। यह एक नया काम है। हमने मन की एक सीमा बना रखी है, एक घेरा बना रखा है। हम मन के प्रकल्पित घेरे में जीते हैं। जब तक इस घेरे और किलेबंदी को नहीं तोड़ा जाएगा, नैतिकता की बात समझ में नहीं आएगी।

नैतिकता की संभावना मन से परे

ध्यान का प्रयोग मन से परे जाने के लिए है। प्रेक्षा का मतलब है देखना। देखना मन का काम नहीं है। जब तक मन की स्थिति में रहेंगे तब तक यह संभव नहीं होगा। देखना हमारे चित्त का काम है, शुद्ध चेतना का काम है। उस चेतना का काम है, जिसमें राग और द्वेष का परिणाम नहीं है। राग-द्वेष सहित चेतना से देखना संभव नहीं होता। वहां मूर्च्छा का साम्राज्य हो सकता है। जिस क्षण चेतना में राग और द्वेष का परिणाम नहीं होता, उस क्षण का नाम है—प्रेक्षा, देखना या दर्शन। हम स्वयं को रोज देखते हैं, शरीर को रोज देखते हैं। कब नहीं देखते? आदमी शीशे के सामने खड़ा होता है और शरीर को देखता है पर वह देखना प्रेक्षा नहीं है। वह रागात्मक देखना है। आदमी कांच के सामने जाकर खड़ा होता है और पूरा पागल नहीं होता है तो आधा पागल तो बन ही जाता है। बच्चा ही नहीं, समझदार आदमी भी कांच के सामने जाकर आधा पागल बन जाता है। कभी हाथ को उठाता है और कभी मुंह को टेढ़ा करता है। वह सोचता है—मैं कैसा लग रहा हूं। इसी नखरे-नखरे में वह आधा पागल बन जाता है। यह रागात्मक परिणाम है। केवल समता, तटस्थता और मध्यस्थता का नाम है प्रेक्षा। जब यह स्थिति आती है तो हम मन के परे चले जाते हैं।

चक्रवर्ती भरत ने भी कांच में अपने आपको देखा था। मनुष्य भी कांच में देखता है। फर्क क्या है? भरत कांच में देखते-देखते केवली बन गए और बहुत सारे लोग कांच में देखते-देखते पागल बन जाते हैं। एक ही स्थिति में यह अंतर क्यों आया? वही व्यक्ति और वही कांच। एक केवली बन जाए और एक पागल बन जाए। अन्तर क्या है? जब तक मन के खेल में आदमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता है, पागल बनता है और मन से परे चला जाता है तो वह शुद्ध चेतना में चला जाता है। उस क्षण में नैतिकता की संभावना की जा सकती है। नैतिकता का विकास तब होता है जब हम मन के खेलों से परे चले जाते हैं।

नैतिकता का आधार

मन को एकाग्र करना और मन को आलंबन देना, एक प्रयोग है। यह प्रारम्भिक विराम है, मध्यवर्ती विराम है। व्यक्ति को यहां अटकना नहीं है। पहले मन पर एकाग्र होना है और किसी आलंबन पर टिकना है। किन्तु बाद में उसे भी छोड़ देना है, निरालंब बनना है। पहले विकल्प और फिर निर्विकल्प। पहले विचार की अवस्था में और फिर निर्विचार की अवस्था तक पहुंचना है। यह शुद्ध चेतना की भूमिका है। वहां पहुंचे बिना परमार्थ की चेतना नहीं जागती। नैतिकता का आधार है परमार्थ चेतना का विकास।

अनैतिकता का आधार है स्वार्थ

जब तक स्वार्थ चेतना प्रबल रहेगी, मन के सारे खेल खेले जाएंगे और अनैतिकता का विकास होता रहेगा। जिस क्षण परमार्थ की चेतना जाग जाएगी। अनैतिकता का आधार हिल जाएगा, उसकी संभावना समाप्त हो जाएगी। जिसमें परमार्थ की चेतना जाग गई, वह अनैतिक हो ही नहीं सकता। जो अनैतिक आचरण और व्यवहार करता है, उसमें परमार्थ की चेतना जागी ही नहीं है। यह एक तर्कशास्त्रीय नियम, व्याप्ति बनाई जा सकती है। तर्कशास्त्र में एक व्याप्ति है—जहां-जहां धुआं होता है वहां-वहां अग्नि होती है। यह एक नियम बन गया। एक नई तर्कशास्त्रीय व्याप्ति बनाई जा सकती है—जहां-जहां स्वार्थ की चेतना है वहां-वहां अनैतिकता है और जहां-जहां परमार्थ की चेतना है वहां-वहां नैतिकता है। नैतिकता तभी संभव है जब हम मन की समस्याओं से परे जाते हैं, चंचलता से परे जाते हैं। बड़ी समस्या है चंचलता की। वर्तमान समाज में जितनी मानसिक चंचलता बढ़ी है, अतीत में रही या नहीं रही, कहा नहीं जा सकता। पदार्थ के विकास के साथ-साथ चंचलता बढ़ती है। तेज गति के साथ-साथ भी चंचलता बढ़ती है। जो गति की तीव्रता आई है, उसने चंचलता को बढ़ावा दिया है, धैर्य का ह्रास किया है। आदमी धैर्य रख ही नहीं सकता, प्रतीक्षा कर ही नहीं सकता। चंचलता बढ़ी है, अधैर्य बढ़ा है, असहिष्णुता बढ़ी है। प्राचीन काल में कहा गया—जिसमें धृति नहीं होती, वह साधना नहीं कर सकता। आज धृति जैसी बात ही नहीं है। आदमी धैर्य रख ही नहीं सकता। आधा घंटा में वह डॉक्टर बदल लेता है, जीवन साथी बदल लेता है। धैर्य नाम की वस्तु ही कहां है? मन की इतनी चंचलता बनी रहे और अनैतिकता की समस्या का समाधान भी हो जाए यह संभव नहीं लगता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंचलता में निहित है अनैतिकता का बीज

नैतिक विकास के लिए मन की चंचलता को कम करना बहुत जरूरी है। यह नहीं कहा जा सकता कि समाज का हर आदमी मन से परे चला जाएगा। साधक के लिए कहा जा सकता है कि वह मन के खेलों को छोड़ देगा और शुद्ध चेतना की भूमिका में चला जाएगा। सामाजिक प्राणी समाज का जीवन जीता है, समुदाय में रहता है और व्यवहार में जीता है। वह व्यवहार की भूमिका पर जीवन की यात्रा चलाता है। वह मन के खेल से परे चला जाए, मनोतीत हो जाए—प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं होगा। मन की जिस मात्रा में चंचलता बढ़ी है। उसे कम किया जा सकता है। जैसे-जैसे चंचलता कम होगी वैसे-वैसे अनैतिकता भी कम होती चली जाएगी। जैसे-जैसे दवा काम करेगी वैसे-वैसे घाव की जलन भी कम होती चली जाएगी। मन में एक जलन पैदा हो गई, दुःख पैदा हो गया और अनैतिकता का स्रोत फूट पड़ा। चंचलता दुःख पैदा करती है और दुःख अनैतिकता को पैदा करता है।

आदमी दुःख को सहन नहीं कर सकता, वह दुःख को मिटाना चाहता है। जैसे-तैसे मिटाता है तो अनैतिकता आती है। यदि चंचलता को कम किया जाएगा तो दुःख की मात्रा कम हो जाएगी। जैसे ही चंचलता कम होती है, दुःख का संवेदन कम हो जाता है। यह सारा प्रमाणित किया जा सकता है, यांत्रिक स्तर पर एक ग्राफ चला कर बताया जा सकता है। जितनी चंचलता उतना दुःख और जितना दुःख उतनी ही अनैतिकता। जितनी-जितनी मन की एकाग्रता उतना-उतना सुख और उतनी-उतनी नैतिकता। यह एक नियम बन सकता है, व्याप्ति बन सकती है। अगर इस नियम के आधार पर हम चिंतन करें तो ध्यान का मूल्य समझ में आएगा। ध्यान का बहुत मूल्य है। केवल मानसिक तनाव को मिटाने के लिए ही नहीं किन्तु मन में जो अनैतिकता की भावना जागती है, उसे कम करने के लिए भी मन की चंचलता को कम करना बहुत आवश्यक है। मैं समझता हूं समाज जिस दिन यह सचाई समझ पाएगा, अनैतिकता की समस्या का समाधान सूत्र हमारे हाथ आ जाएगा और इसका जीवन में प्रयोग किया गया तो नैतिकता की संभावना बहुत बढ़ जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. नैतिकता और संयम

नैतिकता : दो दृष्टिकोण

सारे संसार का अध्ययन करें तो मानव व्यवहार में एकरूपता दिखाई नहीं देती। किसी भूखंड में मानवीय व्यवहार एक प्रकार का है और किसी भूखंड में मानवीय व्यवहार दूसरे प्रकार का है। यह नैतिकता की एक बहुत बड़ी समस्या है। हिन्दुस्तान में एक प्रकार का व्यवहार मिलता है। योरोप और अमेरिका में दूसरे प्रकार का व्यवहार मिलता है। वहां छोटी-छोटी बात के लिए अनैतिक आचरण नहीं होता। मिलावट करना, किसी की चीज उठा लेना, इस प्रकार की अनैतिकता वहां नहीं मिलती। जो क्रय-विक्रय के लिए जाता है वह पूरा दाम चुका देता है। एक दूसरे पर विश्वास होता है, भरोसा होता है। ऐसा लगता है—विदेशी बाजारों में विश्वास ज्यादा चलता है। वर्तमान में भारत की जो स्थिति है, इसमें अविश्वास ज्यादा चल रहा है। कोई किसी पर भरोसा नहीं करता। अगर एकान्त में किसी की चीज पड़ी मिल जाए तो व्यक्ति उसे उठा लेगा। मिलावट भी चलती है और चोरी भी। यह अन्तर क्यों ? क्या कारण है ? क्या यह मानें कि वहां धर्म ज्यादा है, यहां धर्म कम है ? यदि धर्म और नैतिकता का कोई संबंध है तो इस विषय में खोज करनी होगी, अनुसंधान करना होगा।

योरोप और अमेरिका में सत्ता और साम्राज्य स्थापित करने की जितनी भावना प्रतीत होती है उतनी भारत में नहीं है। वहां पूरी मानव जाति के संहार के लिए तैयारियां की हुई हैं। कुछ ही घंटों में पूरी मानव जाति को समाप्त किया जा सकता हैं। हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं है। आज भी भारत का यही निर्णय है—अणुअस्त्रों का निर्माण नहीं करेंगे। इस संदर्भ में देखें तो यहां नैतिकता बहुत अच्छी लग रही है और वहां नैतिकता की कमी प्रतीत हो रही है। बहुत जटिल समस्या है नैतिकता की। पूरे भूखण्ड में मनुष्य का व्यवहार एक जैसा नहीं। अलग-अलग भूखण्डों में अलग-अलग प्रकार के व्यवहार बन गए। इसका कारण क्या है ?

नैतिकता की कसौटी : संयम

नैतिकता के साथ कुछ बातें जुड़ी हुई हैं। उनमें पहली बात है—संयम। संयम के बिना नैतिकता की कल्पना नहीं की जा सकती। अणुव्रत आन्दोलन का घोष है—संयमः खलु जीवनम्—संयम ही जीवन है। हमारी जो नैतिकता की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणशक्ति है, जीवनी-शक्ति है, वह संयम है। जहां यह प्राणशक्ति नहीं है वहां नैतिकता नहीं हो सकती। संयम बहुत कठोर शब्द है। प्रिय नहीं है। आदमी को जितना सुख प्रिय है उतना संयम प्रिय नहीं है। कुछ चीजें प्रिय होती हैं, पर हितकर नहीं होतीं। कुछ चीजें हितकर होती हैं, पर प्रिय नहीं होतीं। संयम भी वैसा ही है। वह हितकर तो है पर प्रिय नहीं है। असंयम जितना प्रिय है उतना हितकार नहीं है। पर संयम बिलकुल प्रिय नहीं है। यहीं नैतिकता उलझ जाती है। यह कहा जा सकता है—नैतिकता के बिना यदि समाज स्वस्थ नहीं रह सकता तो संयम के बिना नैतिकता भी स्वस्थ और सप्राण नहीं बन सकती। संयम होगा तभी नैतिकता की कल्पना की जा सकेगी। उसके अभाव में नैतिकता आकाशकुसुम जैसी बनी रहेगी।

ज्ञान ही धर्म है

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात संयम प्रधान व्यक्ति थे। संयम पर उनका बहुत बल था। उन्होंने धर्म की जो परिभाषा की, वह बड़ी विचित्र थी। उन्होंने कहा—ज्ञान ही धर्म है। ज्ञान से भिन्न कोई धर्म नहीं है। उनके सामने प्रश्न प्रस्तुत हुआ—ज्ञान धर्म कहां है? बहुत सारे लोग जानते हैं पर वैसा करते नहीं हैं। ज्ञान और आचरण की दूरी बनी हुई है। धर्म तो आचरण है। आदमी जानता है पर करता नहीं है। फिर ज्ञान धर्म कैसे हुआ? सुकरात ने कहा—वह ज्ञान-ज्ञान नहीं, जिसका आचरण नहीं है। वह अयथार्थ ज्ञान है, मिथ्या-धारणा है। वह सही ज्ञान नहीं है, भ्रान्ति है। बहुत बार आदमी भ्रान्त ज्ञान करता है। भ्रान्ति में उलझ जाता है। भ्रान्ति में सचाई का पता ही नहीं चलता। वह यथार्थ को पहचान ही नहीं पाता।

एक युवक किसी संघर्ष में उलझ गया, गोली लगी और वह मर गया। घर वालों को सूचना दी गई। लाश को लेकर गांव में पहुंचे। रास्ते में एक आदमी मिला। उसके सारे शरीर को देखकर बोला—बहुत अच्छा हुआ। गोली लगी पर आंख बच गई। अगर आंख पर लग जाती तो बहुत बुरा होता। मर तो गया, पर आंख बच गई। यह अच्छा हुआ। कितना भ्रान्त ज्ञान है!

भ्रान्त ज्ञान होता है अयथार्थ ज्ञान। अगर ज्ञान यथार्थ है तो उसका आचरण होगा। ज्ञान और आचरण को अलग नहीं किया जा सकता।

मोक्ष का साधन क्या?

आगम का एक शब्द है—परिज्ञा। परिज्ञा का अर्थ है जानना पर केवल जानना ही नहीं है। परिज्ञा के दो अर्थ हैं—जानना और छोड़ना। ज्ञ परिज्ञा है जानने वाली परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा है हेय को छोड़ने वाली परिज्ञा, आचरण करने वाली परिज्ञा। दोनों को अलग नहीं किया जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता। यह नहीं हो सकता कि ज्ञ परिज्ञा तो हो पर प्रत्याख्यान परिज्ञा नहीं हो। दोनों संयुक्त होनी चाहिए। अगर सही अर्थ में जान लिया तो फिर आचरण वैसा होगा ही। हमने सही अर्थ में जान लिया कि जहर खाने वाला आदमी मरता है। कोई भी समझदार आदमी जहर नहीं खाता। जहर वही खाता है जिसे मरना होता है। दूसरा कोई भी जहर नहीं खाता। जहां ज्ञान सत्य हो गया, यथार्थ हो गया, वहां ज्ञान और आचरण में दूरी नहीं हो सकती। दोनों एक साथ चलेंगे। एक त्रिपदी या रत्नत्रयी है—सम्यक दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। ये तीन रत्न हैं मोक्ष की साधना के लिए। दर्शन अगर सम्यक् है, ज्ञान सम्यक् है तो फिर आचरण सम्यक् होगा ही। पूछा गया—मोक्ष किससे होता है? सम्यक् दर्शन से होता है या सम्यक् चारित्र से होता है? उत्तर दिया गया—न सम्यक् दर्शन से मोक्ष होता है, न सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है और न सम्यक् चारित्र से मोक्ष होता है। जब तीनों मिल जाते हैं तब मोक्ष होता है। जब ज्ञान और आचरण बंट जाता है, विभक्त हो जाता है तो वह ज्ञान भी सम्यक् नहीं होता और वह आचरण भी सम्यक् नहीं होता।

ज्ञान और आचरण की दूरी मिटे

यदि ज्ञान पूरा सम्यक् हो गया तो फिर आचरण गलत कैसे होगा? आचरण गलत है तो मान लेना चाहिए कि ज्ञान पूरा सम्यक् नहीं हुआ। आचारांग सूत्र में कहा गया—जो समत्वदर्शी या सम्यग्दर्शी है वह पाप नहीं कर सकता और जो पाप करता है वह समत्वदर्शी नहीं हो सकता, सम्यग्दर्शी नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त गहन है पर मनन करने योग्य है। हमारा ज्ञान तभी परिपक्व और यथार्थ ज्ञान माना जाएगा जब ज्ञान और आचरण की दूरी बिलकुल समाप्त हो जाएगी। 'मैं जानता हूं पर करता नहीं हूं,' 'जानता कुछ हूं और करता कुछ हूं,' जब यह दूरी बनी रहती है, जानना भी उलटा हो जाता है और करना भी उलटा हो जाता है। यह दूरी समाप्त होने पर ही सही ज्ञान और सही आचरण संभव है। ऐसा लगता है—सम्यक् दर्शन का विकास कुछ भूखण्डों में एक प्रकार का हुआ है और कुछ भूखण्डों में दूसरे प्रकार का हुआ है।

समस्या है मानवीय प्रकृति की

हिन्दुस्तान में संयम पर बहुत काम हुआ है। उसका बहुत विकास हुआ है, साधना हुई है। भगवान् महावीर का पूरा जीवन-दर्शन संयम का दर्शन है। अहिंसा की परिभाषा है—सब जीवों के प्रति संयम करना। प्रत्येक बात में संयम को महत्त्व दिया गया है। पतंजलि ने यम-नियम पर बहुत महत्त्व दिया। किंतु एक समस्या हमेशा बनी रही। वह समस्या है मानवीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति की और मनोविज्ञान की भाषा में मौलिक मनोवृत्तियों की। मनुष्य में कुछ ऐसे संस्कार, ऐसी मौलिक मनोवृत्तियां हैं जिन्हें इन्सटिक्ट कहा जाता है। वे आदमी को संयम की ओर प्रेरित नहीं करतीं, असंयम की ओर ले जाती हैं।

चरित्र का संबंध मौलिक मनोवृत्तियों से नहीं जोड़ा गया क्योंकि ये मौलिक मनोवृत्तियां आदमी को चरित्र की ओर प्रेरित नहीं करती। भूख, युद्ध की भावना, युयुत्सा, जीने की इच्छा, सेक्स, काम-वृत्ति—ये जितनी मौलिक मनोवृत्तियां हैं, आदमी को संयम की ओर नहीं ले जातीं। इसीलिए आचारशास्त्रियों और नीतिशास्त्रियों ने चरित्र के संबंध में इच्छा पर बहुत बल दिया किंतु मौलिक मनोवृत्तियों को महत्त्व नहीं दिया। उनका मूल्य नहीं माना। मनोविज्ञान के क्षेत्र में मौलिक मनोवृत्तियां बहुत मूल्यवान मानी जाती हैं किंतु चरित्र के क्षेत्र में इन पर कोई विचार नहीं किया गया। क्योंकि ये आदमी को चरित्र की दिशा में प्रेरित नहीं करतीं। हमारे विकास में बाधक हैं ये मौलिक मनोवृत्तियां। मनुष्य में लोभ का संस्कार है, स्वार्थ का संस्कार है और सुख का संस्कार है। लोभ, स्वार्थ और सुख की भावना—ये संयम के लिए बड़ी बाधाएं हैं। इसीलिए संयम प्रधान नैतिकता की बात फलित नहीं होती। प्रयत्न हजारों वर्षों से हो रहे हैं, पर आज भी आदमी का दृष्टिकोण जितना सुखवादी है, उतना संयमवादी नहीं है। और संयमवादी नहीं है इसलिए अनैतिकता की बात चलती है, नैतिकता की बात बहुत मन्द हो जाती है।

प्रतिबंध का बिन्दु

हर आदमी सुख चाहता है, सुविधा चाहता है। मैं बहुत बार सोचता हूं—एक आदमी सुख चाहता है और सुविधा चाहता है, भोग चाहता है। दूसरा भी चाहता है और तीसरा भी चाहता है। हर आदमी चाहता है। सुख के साधन भी चाहता है। यानी सुख चाहने का मतलब सुख के साधन चाहना भी है। सुख के साधन चाहता है तो उनकी प्राप्ति भी चाहता है। सुख की आकांक्षा, साधन को पाने की आकांक्षा मन में है, साधन चाहिए, उनकी प्राप्ति होनी चाहिए। अगर हम केवल इसी बात पर विचार करें कि प्राप्ति के साधन शुद्ध हों तो यह बात चलेगी नहीं। इसे रोका भी नहीं जा सकता, टोका भी नहीं जा सकता। हम यह कहें—तुम साधन-शुद्धि के साथ व्यापार करो। साधन-शुद्धि बरतो। कभी भी संभव नहीं है। इस पर कभी प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। प्रतिबंध कहां लगेगा? इसका बिन्दु कौन-सा है? उसे हम पकड़ें। वह बिन्दु है सुख की आकांक्षा। अगर हमारी सुख की आकांक्षा कम है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधन कम जरूरी होंगे। कम साधन की जरूरत होगी तो प्राप्ति का साधन अपने आप शुद्ध बन जाएगा। सुख की आकांक्षा प्रचुर है तो साधन भी प्रचुर चाहिए। प्राप्ति केवल शुद्ध ढंग से हो, यह संभव लगता नहीं है। यद्यपि हमारा प्रयत्न यही होता है कि प्राप्ति के साधन शुद्ध हों, अर्जन के साधन शुद्ध हों, अनैतिक न हों। हमारे भीतर सुख की आकांक्षा विद्यमान है। सुख चाहिए, एक को चाहिए, दूसरे को चाहिए और तीसरे को चाहिए, सबको चाहिए। यह वृत्ति अपना काम कर रही है और हम प्रतिबंध लगाना चाहें कि तुम साधन शुद्ध रखोगे और जो प्राप्त करना है बिलकुल सही तरीके से प्राप्त करोगे। कब संभव होगा ? भीतर से पानी का वेग आ रहा है। पाल कमजोर है। वह वेग उस पर ऐसा धक्का मारेगा कि पाल टूट जाएगी। जब तक हम मूल बात को नहीं पकड़ेंगे, सुख की आकांक्षा को कम नहीं करेंगे तब तक साधन-शुद्धि की बात का कोई सार्थक परिणाम नहीं आएगा।

कृत्रिम साधनों का अस्वाभाविक प्रयोग घातक

नैतिकता का पहला बिन्दु है संयम। सुख की आकांक्षा का संयम। मन में सुख पाने की जो आकांक्षा है, उसका संयम करो। सुख की अनुभूति तो होती है पर वह बहुत काम की नहीं है। एक आदमी गर्मी के मौसम में वातानुकूलित मकान में जाकर बैठ जाता है और सोचता है—पहले कितने दुःख में था और अब कितने सुख में आ गया। उसे सुख की अनुभूति होती है, अच्छा भी लगता है पर वह बहुत काम का नहीं है। जिस व्यक्ति ने निरंतर वातानुकूलन में रहना पसंद किया है, उसने साथ-साथ बीमारियां भी पाली हैं। वातानुकूलन में शरीर की जो रोग-प्रतिरोधक क्षमता है, वह कम होने लग जाती है। जो व्यक्ति गर्मी और सर्दी को सह सकता है उसमें जितनी रोग-प्रतिरोधक क्षमता होगी, उतनी वातानुकूलित में रहने वाले में नहीं होगी। जो आदमी सर्दी-गर्मी आदि प्राकृतिक आपदाओं को सहन नहीं करता, उसके बचाव के लिए हमेशा कृत्रिम साधनों का प्रयोग करता है, उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। रोग विशेषज्ञों की परिषद् में एक कार्डियोलोजिस्ट ने कहा—जिसमें कृत्रिम खाद दी जाती है, वे चीजें खाना हार्ट के लिए बहुत हानिकारक है। बड़ा अजीब है विज्ञान का जगत्। पहले कृत्रिम खाद का प्रचार किया जाता है। अधिक उपजाओ, खाद का प्रयोग करो। कुछ समय के बाद कहा जाता है—इसे मत खाओ। कृत्रिम खाद से उपजे पदार्थ मत खाओ, हार्ट कमजोर हो जाएगा। किसकी बात मानें, कृत्रिम खाद देने वाली बात मानें या न देने वाली बात को मानें। जब प्रकृति के साथ अतिरिक्त छेड़छाड़ होती है और अधिक कृत्रिम साधनों का अस्वाभाविक प्रयोग होता है, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के लिए हितकर नहीं होता।

यह अधिक सुख की आकांक्षा, हमेशा दुःख से बचने का प्रयत्न, कठिनाई से बचने की अभीप्सा और अधिक सुविधावादी दृष्टिकोण आदमी को ऐसे जाल में फंसा देता है जिससे उसे अधिक कठिनाइयां और परेशानियां भुगतनी पड़ती हैं।

प्राणतत्त्व के ह्रास का कारण

हमें रोग से बचाता है हमारा प्राण-तंत्र। उसे मेडिकल साइंस की भाषा में प्रतिरोधात्मक शक्ति कहते हैं। कृत्रिम संसाधनों से व्यक्ति का प्राण तत्त्व या रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता कमजोर बन जाती है। व्यक्ति अधिक दुःखी बन जाता है। हम मूल बात पर विचार करें कि संयम का सबसे पहला तत्त्व क्या है? कहां संयम करें? सबसे पहले संयम करें सुख की आकांक्षा का। सुख की जो एक प्रबलतम इच्छा है उसको कम करें। केवल सुख ही सुख की बात न करें। वस्तुतः सारी प्रकृति में और हमारे जगत में केवल सुख की बात है ही नहीं। प्रत्येक सुख के साथ दुःख जुड़ा हुआ है।

एक आदमी बहुत खाता है, पेटू है। उसे खाने से सुख मिलता है पर खाने के बाद क्या होता है? क्या सुख ही मिलता है? नहीं, बहुत दुःख मिलता है। रोगी भी बनता है और बड़ा दुःख होता है। सूगर आदि अनेक बीमारियों से घिर जाता है। वह अधिक खाने की आदत को बनाए रखने के लिए बहाना भी खोज लेता है और मार्ग भी खोज लेता है।

मालिक ने रसोइये से कहा—देखो, आज एक समस्या पैदा हो गई है। नौकर ने पूछा—मालिक! क्या समस्या है? मालिक ने कहा—आज मेरी नौकरी छूट गई है और जब तक नई नौकरी न लगे तब तक बड़ी परेशानी है। तुम एक बात का ध्यान रखना। रसोई में ज्यादा खर्च मत करना। बहुत सीधा-साधा भोजन बनाना। घी, दूध का ज्यादा खर्च मत करना। नौकर ने कहा, ठीक है। भोजन का समय आया। उसने मालिक को रूखी रोटियां परोस दी और स्वयं खूब घी और दूध के साथ रोटी खाने लगा। मालिक ने कहा—अरे मूर्ख! मैंने क्या कहा था कि संयम बरतना है और रूखा-सूखा खाना है। नौकर ने कहा—मालिक! नौकरी आपकी छूटी है मेरी नहीं छूटी है।

मूल प्रेरणा है सुख की आकांक्षा

आदमी तर्क खोज लेता है। बड़े बहाने होते हैं। क्योंकि भीतर में जो आकांक्षा बैठी है उसे पूरा किए बिना काम नहीं चलता। हमारे सामने एक जटिल प्रश्न है। हम नैतिकता की बहुत चर्चा करते हैं और उसका बहुत विकास चाहते हैं। हर आदमी यह सोचता है कि भ्रष्टाचार मिटना चाहिए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैतिकता मिटनी चाहिए। इतना भ्रष्टाचार और इतनी अनैतिकता! जहां कहीं भी जाओ, बड़ी समस्या और बड़ी कठिनाई का अनुभव होता है और उसको मिटाने के लिए बहुत सारे प्रयत्न भी हो रहे हैं। किंतु समस्या वहां की वहां उलझी हुई है और कारण भी बहुत साफ है। हमारी प्रकृति है—हमारे जो सामने आता है हम उसी पर प्रहार कर देते हैं। हम इस बात पर बल देते हैं कि भाई नैतिक रहो, शुद्ध रहो। हम इस बात पर ध्यान दें कि व्यवहार को कौन अशुद्ध बना रहा है। यह प्रेरणा कहां से आ रही है? जब तक उस प्रेरणा पर विचार नहीं करेंगे तब तक समाधान नहीं मिलेगा। वह प्रेरणा आ रही है सुख की आकांक्षा में से। सुख की आकांक्षा और स्वार्थ अनैतिकता की मूल प्रेरणाएं हैं।

संयम के बिना नैतिकता नहीं

आदमी के मन में एक प्रेरणा जाग गई कि मुझे प्रसिद्ध होना है। भीतर में एक आकांक्षा है प्रसिद्धि की। वह उपाय करेगा कि मैं प्रसिद्ध बनूं। उपाय किया और प्रसिद्धि नहीं हुई तो फिर भीतर से प्रेरणा आएगी कि जैसे-तैसे प्रसिद्ध बनो।

हम देखें—हमारे भीतर में क्या-क्या प्रेरणाएं छिपी हुई हैं। असंयम की प्रेरणा, सुख की प्रेरणा, प्रसिद्धि की प्रेरणा—ये सारी छिपी हुई प्रेरणाएं हैं। ये जब तक कम नहीं होतीं, इनका संयम नहीं होता तब तक साधनों को कम करने की बात और साधनों को शुद्ध ढंग से पाने की बात, व्यवहार शुद्धि या नैतिकता की बात बहुत कमजोर बन जाती है। इसलिए हमें सबसे ज्यादा ध्यान देना है मूल समस्या पर और मूल स्रोत पर, जहां से ये सारी बीमारियां फूट कर आ रही है। वह स्रोत है सुख की आकांक्षा।

समाधान की भाषा

नैतिकता के क्षेत्र में अनेक पश्चिमी दार्शनिकों ने सुखवादी नैतिकता का भी विचार किया है। किंतु भारतीय साधना पद्धति के संदर्भ में जिस बात पर अधिक बल दिया गया, वे हमारे बहुत परिचित शब्द हैं—संयम, यम और नियम। यदि इन तीनों पर हम ध्यान दें तो नैतिकता की बात कुछ सुलझ सकती है। जब तक इन पर हमारा गहरा चिंतन नहीं होगा, असंयम भी चलता रहेगा, अनैतिकता भी चलती रहेगी और नैतिकता के लिए घोषणाएं भी होती रहेंगी, पछतावा भी होता रहेगा और भारतीय समाज कितना रसातल तक चला गया है, इसके अनुताप का स्वर भी होता रहेगा। किंतु कोई परिणाम आ सकेगा ऐसा मुझे नहीं लगता। इसीलिए हमें मूल बीमारी को पकड़ना है और मूल स्रोत तक पहुंचना है। वहां पहुंचकर ही हम समाधान की भाषा में बोल सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. नैतिकता और व्यवहार

सामाजिक जीवन जीने वाला व्यक्ति अकेला नहीं जीता, दूसरों के साथ जीता है। वह दूसरों के साथ प्रतिदिन व्यवहार करता है। सबसे अधिक प्रसंग आता है व्यवहार का। आदमी के व्यवहार का मूल्यांकन करते समय यह प्रश्न सामने आता है कि किस व्यवहार को अच्छा मानें और किसे बुरा मानें? किस व्यवहार को शुभ मानें और किसको अशुभ मानें? किस व्यवहार को सत् और पुण्य मानें और किसको असत् और पाप मानें?

सुख का आधार

भारतीय चिंतन में व्यवहार की चर्चा पुण्य-पाप, सत्-असत् के आधार पर की गई है। पश्चिमी आचार-शास्त्र में व्यवहार की चर्चा शुभ और अशुभ के आधार पर हुई है। मूल प्रश्न एक ही है कि अच्छे और बुरे व्यवहार की कसौटी क्या है? क्या हम व्यक्ति की इच्छा को कसौटी मानें या कोई ऐसा मानदंड है जो सार्वभौम कसौटी बन सके? इस कसौटी के प्रश्न पर अनेक शाखाओं ने चिंतन किया है। अनेक मनोवैज्ञानिक और नीतिशास्त्रीय कसौटियां हैं। उनमें एक कसौटी है सुखवाद। आचारशास्त्र में इसको दो भागों में विभक्त किया गया—मनोवैज्ञानिक सुखवाद और नीतिशास्त्रीय सुखवाद। यह महत्त्वपूर्ण कसौटी मानी गई है। मनोवैज्ञानिक सुखवाद का मूल प्रतिपाद्य यह है कि जिस आचरण से व्यक्ति को सुख मिले, जो सुखद आचरण है, वह नैतिक आचरण है। जिस आचरण से दुःख की अनुभूति हो, दुःख मिले, जो दुःखद हो, वह अनैतिक है। स्वभाव से ही सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुःख नहीं चाहते। इस स्वाभाविकता को मनोविज्ञान ने सुख का आधार माना।

आचारांग सूत्र का वाक्यांश है—"सुहसाया दुहपडिकूला"—सभी सुख चाहते हैं, दुःख किसी को प्रिय नहीं है। सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है। प्रत्येक प्राणी अनुकूल वेदना चाहता है, प्रतिकूल वेदना कोई नहीं चाहता। यह एक स्वभाव है। इस स्वभाव को आचार की, नैतिकता की और व्यवहार की कसौटी बना लिया गया है। इसके आधार पर जो सुखद है, अनुकूल है वह नैतिकता है और जो दुःखद है, प्रतिकूल है वह अनैतिकता है।

प्रारम्भिक निष्कर्ष में यह बात बहुत अच्छी लगती है कि वही व्यक्ति नैतिक है जो सुख पहुंचाता है। दुःख देने वाला कभी नैतिक नहीं हो सकता। किन्तु विमर्श करने पर यह कसौटी ठीक नहीं बैठती। यदि हम यह मान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेते हैं कि जो सुखद है, जो सुख देने वाला है, जिससे सुख होता है, वह नैतिक है तो अनेक उलझनें पैदा हो जाती हैं। उससे समाज की व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। शराबी को शराब पीने में जैसी सुख की अनुभूति होती है वैसी और किसी बात में नहीं होती।

क्या हम मानलें कि शराब सुखद है, सुख देती है इसलिए शराब पीने का व्यवहार नैतिक है? यदि इसे नैतिक व्यवहार मान लेते हैं तो फिर अनैतिक कर्म कोई बचेगा ही नहीं।

एक नहीं है सुख की परिभाषा

सुख की परिभाषा एक नहीं है, अनेक हैं। यह भिन्न-भिन्न रुचियों और इच्छाओं पर आधारित है। इसे एक घेरे में बांधा नहीं जा सकता। हजार व्यक्तियों की सुखानुभूति के हजार प्रकार हो सकते हैं। किसी को क्रोध करने में सुख की अनुभूति होती है तो किसी को पत्नी को पीटने में सुख मिलता है। किसी को दूसरों को छेड़ने में आनन्द और सुख मिलता है तो किसी को गाली देने में, चेलेंज देने में सुख की अनुभूति होती है।

खलील जिब्रान ने एक सुंदर कथा लिखी है। एक आदमी जा रहा था। उसने एक खेत में "हडप्पा" (घास की पुरुषाकृति) देखा। वह उसके पास गया, पूछा, अरे! तुम रात-दिन यहां खड़े रहते हो, क्या थक नहीं जाते? क्या परेशान नहीं होते? हडप्पा बोला—'थकान का अनुभव ही नहीं होता, क्योंकि मुझे पशु-पक्षियों को डराने में बड़ा मजा आता है, सुख मिलता है।' उस आदमी ने कहा—अरे! दूसरों को डराने में मुझे भी आनंद आता है। हडप्पा बोला—लगता है, तुम भी मेरी तरह बनावटी आदमी हो।

सुख की अनुभूति के अनेक निमित्त हैं। किसी को डराने में, किसी को पीटने में, किसी को छेड़ने में, किसी को हंसने में, किसी को रोने में सुख का आस्वाद आता है। यदि इस सुख की अनुभूति के आधार पर नैतिक और अनैतिक व्यवहार की व्याख्या करें, उसे सार्वभौम कसौटी मान लें तो नैतिकता और अनैतिकता के विभाग की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। फिर जो भी करें, जैसा भी करें, जिससे सुख मिलता है वह नैतिकता है। बुरे-भले का विभाग मिट जाएगा। बुरा काम करने वाला भी कहेगा, तुम कौन होते हो मुझे इस काम से रोकने वाले, यह नैतिक काम है। मुझे इससे सुख मिलता है। फिर कोई काम बुरा नहीं होगा। सभी आदमी सुख की दुहाई देकर कुछ भी करते हुए नहीं हिचकिचायेंगे। इस सुख के आधार पर कोई कर्म बुरा नहीं रहा।

दुःख : जागृति का सूत्र

दुःख से आदमी घबराता है। दुःख कोई बुरी बात नहीं है। वह नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतना को जगाने के लिए आता है। नया संकट आता है, आदमी दुःखी बन जाता है और उस दुःख के कारण उसमें नई जागृति आती है। अनेक भक्त-साधकों के प्रार्थना के स्वर हैं—भगवान्! यदि आप मुझे वर देना चाहें तो मेरी यह मनोकामना पूरी करें कि मुझे दुःख आता रहे। कुंती ने भगवान् से प्रार्थना की—मुझे दुःख मिले। पूछा गया, क्यों? उसने कहा—दुःख आता है तो आपकी स्मृति होती है। सुख में आपकी विस्मृति हो जाती है। यह दोहा भी इसी का प्रतीक है—

"दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय॥"

यह अनुभूति का स्वर है। दुःख में सारे भगवान् याद आ जाते हैं। जब सुख आता है तब भक्त उन भगवानों को भुला देता है, भूल जाता है। इस दृष्टि से दुःख बुरा नहीं होता।

पहाड़ पर चढ़ना कठिन होता है, पर ऊपर जाने के पश्चात् सुख की जो अनुभूति होती है, वह नीचे खड़े व्यक्ति को नहीं होती। चढ़ते समय कष्ट होता है, दुःख होता है पर शिखर का स्पर्श करते ही वह भुला दिया जाता है।

स्थायी होता है दुःख से प्राप्त ज्ञान

कुछ लोग कहते हैं—जैन मुनि बहुत कष्ट सहते हैं, दुःख झेलते हैं। ऐसे कष्टमय या दुःखमय जीवन से क्या होना जाना है? जीवन में सुख होना चाहिए। यह एक यथार्थ है कि जिस व्यक्ति ने सुख से जो पाया, वह थोड़ा-सा दुःख आने पर चला जाएगा। एक आचार्य ने लिखा है—**सुहेण भावितं णाणं, दुहे जादे विणस्सति।**

आचार्य कुंदकुंद और उत्तरवर्ती आचार्यों ने इस गाथा का अनुसरण किया है। वे कहते हैं—सुख से भावित ज्ञान दुःख आने पर समाप्त हो जाता है। दुःख से प्राप्त ज्ञान, दुःख से भावित ज्ञान दुःख आने पर नष्ट नहीं होता। हमारी यह जनभाषा है कि सीधी पूंजी किसी को हस्तगत होती है तो वह खतरा पैदा करती है। वह बहुत सताती है। आज जो अनैतिकता की समस्या है उसका एक कारण यह भी है। बाप का धन बेटे को मिल जाता है। यह वास्तव में एक समस्या है। साम्यवादी शासन प्रणाली में स्वामित्व की सीमा की गई और उत्तराधिकार की बात समाप्त की गई कि बाप का धन बेटे को नहीं मिलेगा। यह बात एक सीमा तक उचित है और अनैतिकता के लिए अवरोधक है।

दो भ्रांतियां भारतीय जीवन में

दो भ्रांतियां भारतीय जीवन में चल रही हैं। एक है सात पीढ़ी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंता करना और दूसरी है बपौती पर स्वयं का अधिकार होना। जो व्यक्ति सात पीढ़ी को सुखी बनाने की कल्पना से चलता है वह अनैतिक व्यवहार क्यों नहीं करेगा ? जब व्यक्ति अपने जीवन की चिंता करता है कि मुझे ५०, ६०, ९० वर्ष तक जीना है, उस जीवन को कैसे जीऊं, जिससे शांति बनी रहे, इस चिंतन के परिप्रेक्ष्य में दूसरे प्रकार का व्यवहार और आचरण होगा। जो बेटे-पोते को सुखी बनाने की चिंता में जीता है, उसका व्यवहार भिन्न होगा, आचरण भिन्न होगा।

सीधा धन मिलना भी समस्या पैदा करता है। व्यक्ति को आलसी और विलासी बनाता है। जिस व्यक्ति ने स्वयं धन नहीं कमाया, पसीना नहीं बहाया, पुरुषार्थ नहीं किया, बाप-दादों की कमाई जिसे सीधी मिल गई, वह यदि बुराइयों से बचे तो विलक्षण बात है और न बचे तो स्वाभाविक बात है, क्योंकि वह धन उसे प्रमाद से मिला है इसलिए उसे प्रमत्त बनाएगा ही। उसे यह अनुभव ही नहीं है कि पैसा कैसे कमाया जाता है इसीलिए वह पैसे को पानी की तरह बहाने में नहीं हिचकता। यह प्रवृत्ति उसे बुराइयों में ढकेलती है। वह उस समय सोच नहीं पाता।

जरूरी है सुखवादी चिन्तन का बदलना

इन समस्याओं के संदर्भ में जब हम नैतिकता की बात करते हैं तो सुखवादी और सुविधावादी चिंतन को भी बदलना जरूरी होता है। सीधा मिला हुआ या सुख से मिला हुआ धन पग-पग पर खतरा उपस्थित करता है। जो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के द्वारा कष्ट सहकर कमाता है, उसका धन दुःख पड़ने पर भी नष्ट नहीं होता और सुख से प्राप्त धन शीघ्र खत्म हो जाता है। इसलिए यह अनुभव वाणी है कि सुख से भावित ज्ञान या सुख से भावित प्राप्ति दुःख आने पर चली जाएगी। दुःख से भावित ज्ञान या प्राप्ति दुःख-काल में जाती नहीं, साथ देती है। जो सैनिक सदा आराम-तलबी का जीवन बिताते हैं, वे युद्ध की वेला में विजयी नहीं बन सकते। जिन सैनिकों ने कष्ट सहा है, कष्ट से अपने आपको तपाया है, अपने आपको कष्टों में खपाया है, वे विकट स्थिति में भी विजय पा लेते हैं।

जर्मनी ने अफ्रीका पर आक्रमण किया। सैनिक लड़खड़ा गए, क्योंकि वे वहां की गर्मी को बर्दास्त नही कर सके। वे ठंडे मुल्क के वासी थे। उन सैनिकों को उस गर्मी में रखा गया, उस गर्मी से अभ्यस्त किया गया और फिर सफलता मिल गई।

सुविधा से मूर्च्छा में वृद्धि

एक संन्यासी, तपस्वी, साधक या मुनि को कष्ट सहने पड़ते हैं, दुःख सहने पड़ते हैं, कठोर जीवन जीना होता है, अभाव का जीवन जीना होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तथ्य है। जब तक ऐसा जीवन नहीं जिया जाता जब तक मूर्च्छा-भंग नहीं होती और मूर्च्छा-भंग के बिना सफलता नहीं मिलती। मूर्च्छा को तोड़ने के लिए कठोर जीवन जीना एक अनिवार्यता है। सुविधा मूर्च्छा को पुष्ट करती है, उसे बढ़ाती है। जिस व्यक्ति ने सुविधा का जीवन का जिया है, उसकी मूर्च्छा बहुत सघन हो जाती है।

सुविधा दो प्रकार की होती है—शारीरिक सुविधा और मानसिक सुविधा। ये दोनों मूर्च्छा को बढ़ाती हैं। इस सघन मूर्च्छा को तोड़ना फिर कठिन हो जाता है। जब तक कष्ट और दुःख को सहने की क्षमता और प्रतिकूल परिस्थिति को झेलने का साहस नहीं आता तब तक मूर्च्छा-भंग नहीं हो सकता।

इस समीक्षा के आधार पर यह कसौटी ठीक नहीं बैठती कि जो सुखद है वह नैतिक है और जो दुःखद है वह अनैतिक है। हमारे ऐसे अनेक व्यवहार हैं, जो दुःख देने वाले होकर भी नैतिक हैं और बहुत सारे ऐसे व्यवहार भी हैं जो सुखद होने पर भी नैतिक नहीं हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक सुखवाद की कसौटी उचित नहीं लगती। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, यह स्वाभाविकता है किंतु यह कसौटी नहीं बन सकती नैतिकता की।

इच्छा एक बाधा है

एक बार एक विद्वान ने तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु द्वारा मान्य अहिंसा की समीक्षा करते हुए लिखा—'भगवान महावीर ने कहा है कि सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता इसलिए सबको सुख दो और आचार्य भिक्षु कहते हैं कि सुख देना धर्म नहीं है।' मैंने लिखा, भगवान के कथन का तात्पर्य ठीक नहीं समझा गया। जीव सुख चाहते हैं, दुःख नहीं चाहते, यह स्वाभाविकता का निरूपण है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सुख दो, दुःख मत दो। भगवान ने केवल परिस्थिति का निरूपण किया है, मानसिकता का निरूपण किया है। किंतु प्रत्येक प्राणी की सुख पाने और दुःख न पाने की इच्छा निम्नस्तरीय इच्छा है। उच्चस्तरीय विकास होने पर यह इच्छा नहीं होती, समाप्त हो जाती है। इच्छा का इतना परिष्कार हो जाता है कि मोक्ष की इच्छा भी समाप्त हो जाती है। साधना की उच्च भूमिका पर पहुंचा हुआ साधक इच्छा-मुक्त हो जाता है। उसमें मोक्ष की इच्छा भी शेष नहीं रहती। वास्तव में मोक्ष की प्राप्ति तभी होती है जब यह इच्छा भी समाप्त हो जाती है। मोक्ष की इच्छा भी एक बाधा है। इच्छा करना बाधा है। जो व्यक्ति स्वयं में लीन होता है, अपने आप में होता है, उसमें इच्छा की बात समाप्त हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस व्यक्ति में सुख की भावना भी समाप्त हो जाती है। सामान्य आदमी कहता है, मैं धर्म करूंगा तो मुझे स्वर्ग मिलेगा। एक भाई ने कहा, महाराज ! मैं साठ वर्ष का हो रहा हूं। मुझे ऐसा कोई गुर बता दें जिससे नरक न मिले, स्वर्ग मिले।

यह आदमी की शाश्वत इच्छा है कि वह नरक नहीं चाहता, स्वर्ग चाहता है। नरक का अर्थ है दुःख। स्वर्ग का अर्थ है सुख। यह इच्छा निरंतर बनी रहती है। किन्तु जिस व्यक्ति ने नैतिकता और अध्यात्म को समझा है, चेतना के परिष्कार को समझा है, वह स्वर्ग की इच्छा को भी छोड़ देता है। वह न नरक से घबराता है और न स्वर्ग के लिए लालायित रहता है। उसमें एक नई चेतना जाग जाती है।

क्या है नैतिकता की कसौटी ?

प्रश्न होता है कि नैतिकता की कसौटी क्या होगी ? हम किस व्यवहार को अच्छा मानें ? सुख या दुःख के आधार पर किसी व्यवहार को अच्छा या बुरा न मानें तो फिर और उपाय ही क्या है ? सत्-असत्, भला-बुरा, शुभ-अशुभ की कसौटी क्या होगी ?

इस विषय में दो चिंतन प्रस्तुत होते हैं। पहला चिंतन तो यह है कि जिस देश और काल में जिस कर्म या व्यवहार को समाज के द्वारा या बड़े जन-समूह के द्वारा वांछनीय मान लिया गया, वह नैतिक है और जो व्यवहार अवांछनीय माना गया, वह अनैतिक है। यह लौकिक स्वीकृति है। यह नितांत व्यावहारिक कसौटी है, सार्वभौम कसौटी नहीं है। इसे यथार्थ नहीं कहा जा सकता। चार-पांच हजार वर्षों के इतिहास में नैतिकता की अनेक परिभाषाएं हुई है और वे परस्पर बहुत टकराती हैं। वे बदलती रहती हैं, एक रूप नहीं रहतीं। एक देश और काल में एक कर्म को नैतिक माना गया है और वही कर्म दूसरे देश-काल में अनैतिक मान लिया गया, यह सारा व्यवहार के धरातल पर होता है। इसलिए ये सारी व्यावहारिक कसौटियां हैं।

नैतिकता की वास्तविक कसौटी

हम नैतिकता की वास्तविक कसौटी की चर्चा करें जो सार्वभौम है, देशातीत और कालातीत है। कसौटी है—जे निज्जिण्णे से सुहे। यह वास्तविक कसौटी है। जिस आचरण के द्वारा बंधे हुए संस्कार क्षीण होते हैं, निर्जीर्ण होते हैं वह आचरण है नैतिक। जिस आचरण से संस्कार बंधते हैं, सघन होते हैं, वह है अनैतिक। जो निर्जरा है वह सुख है और जो बंध है वह दुःख है। सुख और दुःख की यह वास्तविकता ही नैतिकता की कसौटी बन सकती है, किंतु सुख और दुःख की स्वीकृति में बहुत अन्तर आ गया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्युपगम में अन्तर आ गया। सुख और दुःख मान लिया गया वैयक्तिक इच्छा के अनुसार या सामूहिक इच्छा के आधार पर।

इच्छा आधारित सुख और दुःख नैतिकता या अनैतिकता की वास्तविक कसौटी नहीं बन सकता। जो सुख कर्म-विलय से और दुःख कर्म-बंध से होता है वह नैतिकता-अनैतिकता का आधार बनता है। निर्जरण सुख है, बंधन दुःख है।

प्रवृत्ति संयत हो

प्रवृत्ति के तीन विभाग हैं—सत् प्रवृत्ति, असत् प्रवृत्ति और निवृत्ति या अप्रवृत्ति। विवेक कैसे हो कि अमुक प्रवृत्ति सत् है और अमुक प्रवृत्ति असत् है। दो आदमी बात कर रहे हैं। तीसरा व्यक्ति इनमें से एक को कहता है, तुमने गलत कहा है। तुमने भाषा समिति का ध्यान नहीं रखा। दूसरे को कहता है, तुमने ठीक कहा। तुमने भाषा समिति का ध्यान रखा। एक को बेठीक और एक को ठीक कहने का आधार क्या रहा?

एक बार आचार्य ने शिष्य की परीक्षा लेने के लिए कहा—जाओ, आम ले आओ। शिष्य को यह आदेश विचित्र-सा लगा, क्योंकि जैन मुनि सीधा आम नहीं खाते। उसने कहा—गुरुदेव! यह कैसा आदेश? मुनि आम नहीं खा सकते। गुरु ने कहा—बैठ जाओ। उन्होंने दूसरे शिष्य से कहा—जाओ, आम ले आओ। वह बोला—गुरुदेव! कौन सा लाऊं, आचार का या केरी का। गुरु बोले—तुम भी बैठ जाओ। तुम विनीत हो और पहला शिष्य अविनीत है। इस कथन का आधार यह था कि पहले शिष्य ने भाषा की असंयत प्रवृत्ति की और दूसरे ने संयत प्रवृत्ति। पहले शिष्य ने कहा—गुरुदेव। आप ऐसे गलत आदेश देते हैं। यह अविश्वास की भाषा है, असंयत भाषा-प्रयोग है। दूसरे शिष्य ने आदेश सुनकर पूछा—गुरुदेव! कौन सा आम लाऊं। वह जानता था, गुरु अन्यथा आदेश कभी नहीं देते। उनका अभिप्राय सापेक्ष है।

निवृत्ति से अनुस्यूत प्रवृत्ति नैतिक

एक नियम बना कि जिस प्रवृत्ति के साथ गुप्ति होती है, वह प्रवृत्ति सम्यक् है, वह व्यवहार सत् है। जिस प्रवृत्ति के पीछे गुप्ति नहीं होती, वह व्यवहार असत् है। गुप्ति का अर्थ है—संयम, निवृत्ति। हमारी जिस प्रवृत्ति के साथ मन, वाणी और शरीर की गुप्ति होती है, वह प्रवृत्ति सम्यक् होती है, वह व्यवहार और आचरण नैतिक बन जाता है। जिस प्रवृत्ति के पीछे गुप्ति नहीं होती, असंयम होता है, वह मन, वाणी और काया का व्यवहार अनैतिक बन जाता है, असत् बन जाता है। यह वास्तविक कसौटी है। निवृत्ति से अनुस्यूत या अनुप्राणित प्रवृत्ति नैतिक होती है और निवृत्ति से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शून्य प्रवृत्ति अनैतिक होती है।

यही शुभ-अशुभ, सत्-असत्, अच्छे-बुरे व्यवहार की कसौटी बनती है। यह सार्वभौम है, व्यापक है, देशातीत और कालातीत है। इसमें न व्यक्ति का भेद है, न देश और काल का भेद है, न किसी धर्म और संप्रदाय का भेद है। यदि इस कसौटी के आधार पर हम व्यवहार की समस्या को सुलझाएं, व्यवहार का मूल्यांकन करें तो नैतिकता की धारणा को स्पष्ट करने में बड़ी सुविधा होती है।

ध्यान का प्रयोजन है संस्कारों की शुद्धि करना, चित्त की शुद्धि करना। जैसे-जैसे चित्त की शुद्धि होगी, बात सुलझती जाएगी। जब चित्त की शुद्धि नहीं होती, हम छोटी बातों में अटक जाते हैं।

एक व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा—तुम्हारा नौकर तो बड़ा अच्छा है। बताओ, वह रसोई कैसी बनाता है? उसने कहा—जैसा वेतन देता हूं वैसी रसोई बनाता है। वह बोला, यह कैसी बात? वेतन और रसोई का यह कैसा सम्बन्ध? उसने कहा, तुम नहीं समझे। मैं न तो उसे पूरा वेतन देता हूं और न समय पर देता हूं। इसलिए वह रसोई भी न पूरी बनाता है और न समय पर बनाता है।

जब हम कोई छोटी बात करते हैं तो उससे कोई बड़ी बात नहीं निकाली जा सकती।

दृष्टिकोण व्यापक बने

यदि हम व्यापक दृष्टिकोण से चिंतन करें तो नैतिकता की हमारी यह कसौटी व्यवहार के मूल्यांकन में बहुत सहयोगी होगी। यह सुचिंतित और सुपरीक्षित भी होगी। इसके आधार पर सारे व्यवहार की समस्या को सुलझाया जा सकेगा। ध्यान का उद्देश्य भी यही है। यदि उसका उद्देश्य कोई छोटा-मोटा होता तो वही उलझनें पैदा हो जातीं। यदि उद्देश्य होता कि इच्छा पूरी हो, यह हो, वह हो तो फिर अधूरे वेतन वाली बात का परिणाम ही आता। हमारा उद्देश्य है कि बंधन टूटे, संस्कार क्षीण हों, चित्त की निर्मलता घटित हो। कई बार ध्यान जाता है कि आदमी व्यावहारिक बातों में क्यों उलझ जाता है। वह जहां कहीं जाता है, मांग ही मांग करता है। धर्मगुरु के पास भी मांग रख देता है। मैं कहता हूं—अरे, भले आदमी! एक स्थान तो ऐसा रखो कि जहां तुम मांगों से अतीत हो जाओ। स्वामी विवेकानन्द ने बहुत बड़ा एक काम किया। ध्यान करने का एक बड़ा हॉल था। वहां परमहंस का चित्र टंगा हुआ था। विवेकानन्द ने उसे उतरवा दिया। लोगों ने कहा—परमहंस आपके गुरु हैं। उनका चित्र उतरवा दिया? विवेकानन्द बोले—एक स्थान तो ऐसा हो जो अद्वैत हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वत्र मांग की बात नहीं होनी चाहिए। धार्मिक क्षेत्र में भी यदि यह मांग होती है तो फिर धर्म-स्थल और बाजार में अंतर ही क्या रहेगा ?

यदि ध्यान की बात इस उद्देश्य के साथ समझ में आए तो ध्यान नया प्रकाश और नई दिशा देने वाला होगा। ध्यान को दर्द मिटाने, बीमारी मिटाने तक ही सीमित न करें। उसके बड़े उद्देश्य को ध्यान में रखें। ध्यान का संकल्प याद करें—'मैं चित्तशुद्धि के लिए ध्यान का प्रयोग कर रहा हूं'। यह आदर्श, लक्ष्य और अनुभव सचमुच ही नई दिशा का उद्घाटन करने वाला होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. सत्य और मानसिक शांति

एक भाई ने पूछा, विश्व-शांति कैसे हो सकती है ? मैंने कहा, तुम्हारा मन तो शांत है ? वह बोला, मेरा मन शांत नहीं है। मैंने कहा, विश्व शांति की बात करने से पूर्व अपने मन को शांत करने की बात सोचो। विश्व-शांति की बात बहुत बड़ी बात है। यह तथ्य है कि विश्व में अशांति उन लोगों ने पैदा की है या कर रखी है, जिनका स्वयं का मन अशांत है। जिस व्यक्ति का मन शांत होता है, वह विश्व में अशांति पैदा नहीं कर सकता। जितने लोग विश्व-शांति के प्रतिकूल चल रहे हैं और विश्व में अशांति पैदा कर रहे हैं, उनका मन शांत और संतुलित नहीं है। यदि मन की शांति घटित होती है तो विश्व-शांति के लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यदि मानसिक शांति नहीं है और विश्व-शांति का प्रयत्न चलता है तो वह सफल नहीं हो सकता।

प्रश्न है शांति का

प्रश्न है मन की शांति कैसे संभव है ? अशांति के अनेक कारण हैं। उनमें बड़ा कारण है असत्य। व्यक्ति में सत्य-निष्ठा नहीं है। वह सत्य को जानता नहीं है, इसलिए अशांत है। जो सचाई को जान लेता है, उसके मन में अशांति पैदा नहीं होती। यदि कभी होती है तो भी क्षणभर के लिए। वह अधिक टिकती नहीं। जैसे पहाड़ पर वर्षा हुआ पानी ऊपर अधिक समय तक नहीं ठहरता, नीचे आ जाता है, वैसे ही परिस्थिति के चक्र में अशांति की बात कभी-कभी आ जाती है, किंतु जिस व्यक्ति का मन सत्य से जुड़ा हुआ है, जिसके मन में सत्य के प्रति गहरी आस्था है, वहां अशांति टिक नहीं पाती। आती है और चली जाती है।

मानसिक अशान्ति का कारण

आदमी परिस्थिति और मनःस्थिति — दोनों के बीच जीता है। बाहर के जगत् में परिस्थिति का सामना करता है और भीतर के जगत् में मनःस्थिति का। अनुकूल परिस्थिति में आदमी ज्यों-त्यों संतुलन रख लेता है, पर प्रतिकूल परिस्थिति में वह विचलित हो जाता है, संतुलन खो देता है, घुटने टेक देता है। यह सारा मनःस्थिति के कारण होता है। यह भी संभव है कि विपरीत परिस्थिति में भी मनःस्थिति शांत, स्वस्थ और संतुलित रह जाए। अत्यन्त विषम परिस्थिति में भी मन शांत और स्वस्थ रह सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रलयंकारी हवाओं के झोंकों से पर्वत कभी प्रकंपित नहीं होता, वह सदा अविचल रहता है। मन को भी पर्वत की भांति अडोल बनाया जा सकता है। उसे इतना गहरा और ऊंचा उठाया जा सकता है कि वह प्रकंपित न हो। यह तभी संभव है जब व्यक्ति की आस्था सत्य के साथ जुड़ जाए। जब सत्य की आस्था नहीं होती है तब प्रतिकूल परिस्थिति को सहना अत्यन्त कठिन काम हो जाता है।

मानसिक अशांति का एक कारण है—प्रतिकूल परिस्थिति को न सह सकना।

सचाई को जाने

साधक ध्यान के द्वारा सचाइयों को जानना चाहता है। वह कुछ सचाइयों को जानता भी है और कुछ सचाइयों को नहीं भी जानता। जो अज्ञात हैं उन सचाइयों को जानने के लिए साधक ध्यान-शिविरों में आते हैं। जब वे सचाइयां अभ्यास के द्वारा साक्षात् होती हैं, साधक में विपरीत परिस्थिति में भी स्वस्थ, संतुलित और प्रसन्न रहने की क्षमता जाग जाती है।

अनेक सचाइयां हैं। पहली सचाई है—मैं अकेला हूं। आदमी इसे नहीं जानता। वह जानता है—मेरा परिवार, मेरी जाति, मेरा समाज, मेरा राष्ट्र, मेरा संप्रदाय। वह समूह, समाज और संप्रदाय की सचाई से परिचित है। वह भीड से परिचित है। "मैं अकेला हूं" इस सचाई मे वह परिचित नहीं है। इसीलिए मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं, विपरीत परिस्थितियां आती हैं और मन का संतुलन बिगड़ जाता है।

सचाई के दो कोण

किसी ने कुछ कहा—पति ने पत्नी से कहा, पत्नी ने पति से कहा; पिता ने पुत्र को या पुत्र ने पिता को कुछ कहा। कोई किसी की बात नही सुनता। मन पर चोट होती है कि पति ने मेरी बात नहीं मानी, पत्नी ने मेरा कहना नहीं माना, बेटे ने मेरी सलाह नहीं मानी। बड़ा कष्ट होता है। परिस्थिति और वातावरण विपरीत बन जाता है। मन असंतुलित और अशांत हो जाता है। मानसिक शांति भंग हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि आदमी ने सचाई के एक पहलू को तो जान लिया, पर दूसरे पहलू को नहीं जाना। सिक्के का एक पहलू सामने है, दूसरा नहीं है। वह एक सचाई से खूब परिचित है कि मेरा जीवन सामुदायिक है किंतु वह इस सचाई को नजरअंदाज कर देता है कि मेरा अपना अकेले का स्वतंत्र जीवन भी है। मेरा ही नहीं, सबका है। वह नहीं जानता—मैं वस्तुतः अकेला हूं, अकेला था और अकेला रहूंगा। मैं अकेला आया हूं और अकेला ही संसार से चला जाऊंगा। सुख का संवेदन भी अकेले को होता है और दुःख का संवेदन भी अकेले को होता है। अकेला होना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बड़ी सचाई है। एक ओर समाज है तो एक ओर व्यक्ति अकेला है। एक ओर भीड़ है तो एक ओर अकेला है।

प्रसन्नता का सूत्र

जब तक हम अकेलेपन की सचाई को नहीं जानेंगे तब तक विपरीत परिस्थितियां पैदा होती रहेंगी और वे मानसिक शांति को भंग करती रहेंगी। जो व्यक्ति इस सचाई को जान लेता है कि मैं अकेला हूं और इसका प्रयोग करता है तो उसको कोई बात या घटना सताएगी नहीं। यानी समाज में, समूह में या घर-परिवार में कोई नहीं पूछता है तो वह सोचेगा 'मैं तो अकेला हूं'। वह अपने अकेलेपन की सचाई में डूब जाएगा और न पूछने वाली बात से वह सताया नहीं जाएगा। उसके मन की शांति कभी भंग नहीं होगी। उसका मन स्वस्थ और संतुलित रहेगा। अकेलेपन की अनुभूति प्रसन्न रहने का बड़ा सूत्र है। जिस व्यक्ति ने इस सचाई को पकड़ा है, वह सामाजिक परिस्थितियों में जीते हुए भी प्रसन्न और स्वस्थ जीवन जी सकता है।

कोई त्राण नहीं है

दूसरी सचाई है—मैं अत्राण हूं। हमने जीवन में अनेक शरण मान रखें हैं। आदमी सोचता है, जब कठिन परिस्थिति आएगी, मेरा मित्र मेरा सहयोग करेगा। मुझे पिता या माता उबारेगी। पत्नी या पुत्र मेरा सहयोग करेंगे। आदमी इस प्रकार अनेकविध शरण मान लेता है। किंतु स्थिति ऐसी आती है कि कोई शरण नहीं बनता।

आचार्य श्री उदयपुर में थे। एक बूढ़ा व्यक्ति आकर अपनी दुःख-गाथा सुनाने लगा। उसने कहा, मेरे तीन लड़के हैं। उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है। मेरा घर छूट गया। मेरी सारी संपत्ति छूट गई। कोई सहारा नहीं है। बूढ़ा हूं, बीमार हूं। सेवा की जरूरत है, पर कोई सेवा करने वाला नहीं है। लड़की के घर पर रहता हूं। वही भोजन देती है।

उस वृद्ध व्यक्ति की करुण कहानी सुनकर पत्थर-दिल आदमी भी पिघल जाता है। यह अत्राण की प्रतिकूल परिस्थिति है। यदि वह इस सचाई को समझ जाता कि अत्राण होना स्वाभाविक है, त्राण आरोपित है तो दुःखी नहीं बनता। हमने लड़के में, पिता-माता में तथा अन्यान्य व्यक्तियों में त्राण माना है। यह वास्तविक नहीं है, केवल आरोपणमात्र है।

व्यावहारिक सचाई : वास्तविक सचाई

अत्राण व्यक्ति यह भी सोचता है कि मेरी अपार संपत्ति त्राण बनेगी। मैंने जिन-जिन लोगों की सहायता की है, जिन्हें दुःख से उबारा है, वे तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम से कम मेरे त्राण बनेंगे, मेरी सेवा करेंगे, मेरा सहयोग करेंगे। किंतु बात उलटी होती है। उस स्थिति में परिवार के लोग भी पास में नहीं फटकते। दूसरे भी सोचते हैं, पास में जाएंगे तो सहयोग करना होगा, फंस जाएंगे। सभी किनारा कसते हैं। ऐसी स्थिति में अत्राण व्यक्ति के मन का संतुलन बिगड़ जाता है और वह अपने आपको अत्यन्त दुःखी अनुभव करता है। यदि वह "मैं अत्राण हूं" इस सचाई को हृदयंगम कर लेता है और इसे नम्बर एक की सचाई मानकर, अमुक मेरा सहयोग करेंगे, इसे नम्बर दो की सचाई मानता है तो वह इस दुःखद स्थिति के पार चला जाता है। अत्राण की अनुभूति है वास्तविक सचाई और आरोपित त्राण की अनुभूति है व्यावहारिक सचाई। जब हम वास्तविक सचाई को मानकर चलते हैं तो कोई कष्ट नहीं रहता। यदि बुढ़ापे में लड़का सेवा नहीं करता है तो भले ही न करे। कष्ट का संवेदन नहीं होगा। अन्यथा बुढ़ापे के दुःख से भी सेवा न करने का दुःख भारी हो जाएगा, संवेदन तीव्र होने लग जाएगा। दोहरा कष्ट भोगना पड़ेगा। मानसिक कष्ट बुढ़ापे में शारीरिक कष्ट से भी भारी हो जाता है। जिसको त्राण मान रखा है, वही यदि अत्राण बन जाता है, तब बहुत मानसिक कष्ट होता है।

सुधार का प्रश्न ही कहां

आदमी रास्ते पर चल रहा था। पीछे से एक कार तेजी से आ रही थी। उसमें डाक्टर बैठा था। उसे अस्पताल जाने में देरी हो रही थी। कार की गति तीव्र थी। पथिक उसकी चपेट में आया और घायल होकर रास्ते पर गिर पड़ा। कार आगे बढ़ गई। लोग एकत्रित हुए। वे डाक्टर को लाने की बात कर रहे थे। घायल व्यक्ति बोला, आप नहीं जानते। मुझे घायल करने वाला डाक्टर ही तो था। जो दूसरों की हालात सुधारता है, वही यदि हालात बिगाड़ दे तो फिर सुधार का प्रश्न ही कहां उठता है।

बहुत बड़ा प्रश्न है मानसिक दुःख के संवेदन का, संताप का। दुःख का अनुभव तीव्रता से तब होता है जब आदमी अशक्त हो जाता है, बूढ़ा हो जाता है, जिसका वैभव या धन छिन जाता है, जिसे अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति आकर घेर लेती है। ऐसी स्थिति में आदमी को कटु अनुभव होता है और तब उसे प्रतीत होने लगता है कि त्राण या सहारा कोई है ही नहीं।

दोहरी मूर्खता

आचारांग सूत्र में दोहरी मूर्खता को समझाते हुए कहा गया है— आदमी की एक मूर्खता तो यह है कि वह हिंसा करता है और दूसरी मूर्खता यह है कि वह हिंसा को हिंसा नहीं मानता। यह दोहरी मूर्खता है। बुढ़ापे में सेवा का न होना एक दुःख है और 'मेरी कोई सेवा नहीं करता' यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक संवेदन होना, दूसरा दुःख है। यह दोहरा दुःख उसे भोगना पड़ता है, जिसने इस सचाई को जीना प्रारंभ नहीं किया है कि संसार में कोई किसी का त्राण नहीं है, शरण नहीं है। सर्वत्र अत्राण और अशरण ही अशरण है।

शरण कौन ?

जैन परंपरा में चार शरणों की बात स्वीकृत है—

अरहंते सरणं पवज्जामि—मैं अर्हत् की शरण में जाता हूं।

सिद्धे सरणं पवज्जामि—मैं सिद्ध की शरण में जाता हूं।

साहू सरणं पवज्जामि—मैं साधु की शरण में जाता हूं।

केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि—मैं धर्म की शरण में जाता हूं।

अर्हत् यानी वीतरागता की शरण, सिद्ध अर्थात् मुक्तात्मा की शरण, साधु अर्थात् साधना की शरण और धर्म अर्थात् सत्य की शरण। वास्तव में ये चार ही शरण हैं, दूसरा कोई शरण बन नहीं सकता। इसमें न लड़के के शरण की बात है, न धन-वैभव के शरण की बात है और न पिता या पति के शरण की बात है। इसमें केवल वे शरण बने हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है। एक शब्द में कहा जा सकता है—शरण है आकिंचन्य की। यह एक सचाई है—जिनके पास बहुत है, वे शरण नहीं दे सकते। जब विपरीत परिस्थिति आती है तब सब मुंह मोड़ लेते हैं। उस समय शरण वे ही बन सकते हैं जो अकिंचन हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है।

त्राण देती है शरण चतुष्टयी

आम्रपाली एक गणिका थी। वह रूप-सौन्दर्य की मूर्ति थी। उसको पाने के लिए वैशाली के राजा, महाराजा, सामंत, सेठ—सभी लालायित रहते थे। एक बार महात्मा बुद्ध वहां आए। उन्हें आम्रपाली के पास जाने के लिए कहा गया। बुद्ध बोले—अभी नहीं, जब जरूरत होगी तब अवश्य जाऊंगा। काल बीता। आम्रपाली के शरीर पर बुढ़ापा उतरने लगा। रूप-सौन्दर्य पुरझा गया। बीमार हो गई। कोई पास में नहीं आ रहा है। सभी ने उसको छिटका दिया।

बुद्ध उस नगरी में आए। आम्रपाली की अवस्था ज्ञात हुई। वे उसके पास गए। आम्रपाली बोली—भंते ! बहुत विलंब से आए। उस समय आप आते तो मेरे रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाते। आज वैसी स्थिति नहीं है। बुद्ध बोले—देवी ! वह मेरे लिए असमय था तुम्हारे पास आने का। उचित समय यही है, क्योंकि जब कोई नहीं होता है तब साधु-संत ही शरण होते हैं। आज तुझे मेरी आवश्यकता है, धर्म की जरूरत है। ऐसी स्थिति में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् ही शरण होते हैं, सिद्ध ही शरण होते हैं, साधु ही शरण होते हैं और धर्म ही शरण होता है। जब शेष सारे माने हुए शरण अकिंचित्कर हो जाते हैं तब यह शरण चतुष्टयी ही त्राण देती है, शरण बनती है।

व्यावहारिक पहलू को अन्तिम न माने

व्यवहार का जो पहलू है, वह एक सचाई है, व्यावहारिक सचाई है। हम उसे ही यथार्थ या अंतिम न मान लें। जो वास्तविक सचाई है उससे भी परिचित हों। हम सहयोग, त्राण, शरण की बातों में जी रहे है, व्यावहारिक त्राणों में जी रहे हैं किन्तु इसकी निरंतर स्मृति बनाए रखें कि मैं वास्तव में अत्राण हूं। यह दूसरी सचाई है। जो व्यक्ति इसको जान लेता है, इसका प्रयोग करता है, वह अनेक कठिनाइयों से बच जाता है।

एक व्यक्ति को मैंने देखा। जब वह स्वस्थ था तब उसके चारों ओर दसों-बीसों लोग मंडराते थे, भीड़ लगी रहती थी। जब वह बीमार हो गया, शक्ति क्षीण हो गई, लोगों की भीड़ कम हो गई। कोई पास में जाता ही नहीं। इसका उसे तीव्र संवेदन होता। वह सोचता—वह भी एक दिन था जब सैकड़ों व्यक्तियों की भीड़ मेरे द्वार पर लगी रहती थी और आज कोई नहीं पूछता। मैंने उससे कहा—यदि तुम इस संवेदन में जीओगे तो जीवन कष्टदायी बन जाएगा, भारी बन जाएगा। एक तो बीमारी का कष्ट और दूसरा एकाकीपन का कष्ट। दोनों से दिमाग इतना भारी रहेगा कि तुम जी नहीं सकोगे। उसने पूछा—इसका समाधान क्या है? मैंने कहा, इस सचाई का अनुभव करो कि मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है। साथ ही साथ धर्म और अर्हत् की शरण लो। उसने वैसा ही किया और उसका सारा मानसिक कष्ट समाप्त हो गया। वह अपना जीवन पूर्ण आनन्द के साथ जीने लगा, उस अवस्था में भी पूर्ण सुख का संवेदन करने लगा।

संबंध सत्य और मानसिक शान्ति में

मृत्यु और बीमारी से कोई नहीं बचा सकता। डाक्टर भी तब तक सहयोग दे सकते हैं, जब तक हमारी प्राणशक्ति सक्रिय है। जब प्राणशक्ति चुक जाती है तब डाक्टर भी कुछ नहीं कर सकते। जब रेसिस्टेन्ट पॉवर समाप्त हो जाता है, डाक्टर या औषधि कुछ नहीं कर सकती। उस स्थिति में व्यक्ति अपने आपको बहुत असहाय अनुभव करता है। कुछ अवसर हैं, क्षण हैं, जहां व्यक्ति स्वयं को अकेला अनुभव करता है। 'मैं त्राण हूं' इस वास्तविक सचाई का जिस व्यक्ति को अनुभव हो जाता है, वह शरीरगत बीमारी या प्रतिकूल स्थिति का कष्ट तो भोगेगा पर मानसिक कष्ट नहीं भोगेगा।

जब तक इन सचाइयों को नहीं जाना जाता, मानसिक शांति रह नहीं सकती, टिक नहीं सकती। सत्य का और मानसिक शांति का बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहरा संबंध है। जिसने इस सत्य को जान लिया, उसने मानसिक शांति को अक्षुण्ण बना लिया। जो असत्य के सहारे जीता है, उसकी मानसिक शांति बार-बार विचलित होती रहती है।

सत्य को जिएं

तीसरी सचाई है—मेरा कुछ भी नहीं है। आदमी मानता है—सब कुछ मेरा है पर वास्तव में उसका कुछ भी नहीं है। व्यावहारिक सचाई है कि सब कुछ मेरा है और वास्तविक सचाई है कि मेरा कुछ भी नहीं है। व्यावहारिक सचाई के आधार पर व्यक्ति कहता है—धन मेरा है, परिवार मेरा है, घर मेरा है। इस सचाई को नकारा नहीं जा सकता। यदि धन उसका नहीं होता तो वह परिवार का सहयोग कैसे कर पाता ? यदि घर उसका नहीं होता तो वह सीधा उसमें कैसे घुस पाता ? यह व्यावहारिक सचाई है, वास्तविक सचाई नहीं है। हम व्यावहारिक सचाई से पूर्णरूप से परिचित हैं पर वास्तविक सचाई से परिचित नहीं हैं। आदमी वास्तविक सचाई को जानता है, पर उससे परिचित नहीं है। जानना एक बात है और परिचित होना दूसरी बात है। परिचित होने के लिए उसके अति निकट जाना होता है, उसको जीना होता है। उसकी उपासना करनी होती है। उपासना का अर्थ है—निकट जाकर बैठना। सचाई का सम्पर्क होना एक बात है और उसके निकट बैठना, उससे परिचित होना दूसरी बात है। आदमी जब बाजार से गुजरता है तब अनेक वस्तुओं के साथ सम्पर्क होता है पर परिचय नहीं होता। सचाई का परिचय तभी होता है जब उसका अभ्यास होता है, अन्यथा संपर्क मात्र होता है, परिचय नहीं होता।

जब तक सत्य भोगा नहीं जाता, वह जाना हुआ सत्य होता है। जब सत्य जिया जाता है तब वह भोगा हुआ सत्य कहा जाता है। जब तक सत्य जिया या भोगा नहीं जाता तब तक वह सचाई अपनी सचाई नहीं बनती, अपने काम की नहीं होती। "मेरा कुछ भी नहीं" यह बहुत बड़ी सचाई है।

हम अकिंचन हैं

महान् सिकन्दर को इस सचाई का अनुभव जीवन के अन्तिम क्षणों में हुआ। उसने आदेश दिया—जब मेरी अर्थी निकाली जाए तब दोनों हाथ बाहर रहें, खुले रहें। लोगों ने पूछा—क्यों ? उसने कहा, लोग यह जान सकें कि सिकन्दर ने बहुत बटोरा है, पर जाते समय हाथ खाली हैं, अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा रहा है।

वास्तव में हम अकिंचन हैं। अकिंचन अवस्था में यहां से हमें प्रस्थान करना है।

किंचन होना भी एक सचाई है तो "मैं अकिंचन हूं" इसकी निरंतर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति या अनुभूति होना भी एक सचाई है। एक व्यावहारिक सचाई है और दूसरी वास्तविक।

संयोग से जुड़ा है वियोग

चौथी सचाई है—अनित्यता। सारे संयोग अनित्य हैं, इसे आदमी नहीं जानता या जानता हुआ भी नहीं पहचानता। धन का संयोग हुआ। आदमी उसे शाश्वत मानकर चलता है। वह उस धन की सुरक्षा के लिए क्या-क्या नहीं करता। जब धन चला जाता है या क्षीण हो जाता है तब आदमी की रोटी हराम हो जाती है, सारे सुख लुप्त हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि उसने इस संयोग को अनित्य नहीं माना। अनित्यता को समझा नहीं। संयोग वास्तव में संयोग ही होता है। प्रिय आदमी चला जाता है तो आदमी रोने लग जाता है। वस्तु खो जाती है तो मन उदास हो जाता है। यह सारा इसीलिए होता है कि आदमी ने संयोग के स्वरूप को समझा नहीं। उसने एक पहलू को पकड़ा पर उसका जो दूसरा पहलू है—वियोग, उसे नजरअंदाज कर डाला। प्रत्येक संयोग अनित्य है। जिसका संयोग होता है उसका वियोग निश्चित है। संयोग के साथ वियोग लगा रहता है। इन दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता। इस सचाई को न पकड़ सकने के कारण आदमी बेहाल हो जाता है, बेभान हो जाता है।

वास्तविक सचाई से जुड़ें

हम इन सचाइयों के व्यावहारिक पहलू से परिचित हैं, उसे पकड़ रखा है और उनके वास्तविक पहलू को विस्मृत कर चुके हैं। ध्यान के अभ्यास के द्वारा हम इन सचाइयों के वास्तविक स्वरूप को जीना सीखें, उनका अनुभव करें। यदि ऐसा नहीं होता है तो केवल एकाग्रता के द्वारा हमारे दुःख कम नहीं होंगे। उस ध्यान और एकाग्रता के द्वारा मानसिक कष्ट और संताप दूर होगा, जिसके साथ इन सचाइयों की अनुभूति होती चली जाएगी।

संभव है आदत में बदलाव

पांचवीं सचाई है—आदत बदली जा सकती है। इसका व्यावहारिक पहलू है—आदत बदलती नहीं। जो आदत बन गई, वह नहीं बदल सकती। यह एक की नहीं, प्रायः सबकी धारणा है। यह भी सचाई का एक पहलू है पर इसका दूसरा पहलू यह है कि आदत बदली जा सकती है। यह सचाई ध्यान के द्वारा प्रगट होती है। संस्कारों को बदला जा सकता है, यह ध्यान के द्वारा प्राप्त होने वाली सचाई है।

यदि हम इन सभी सचाइयों के वास्तविक पहलू का अनुभव कर सकें तो मानसिक तनाव, संताप और दुःखों को कम करने में हम सफल हो सकते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। ध्यान करने वाला यदि इन सचाइयों का अनुभव नहीं करता है तो फिर दैनंदिन जीवन में वह कुछ भी लाभान्वित नहीं हो सकता। उसके लिए ध्यान करना भी एक मूर्च्छा बन जाएगा।

मूर्च्छा का घेरा टूटे

सेठ के घर में डाकू घुस गए। सेठ अभी तक सोया नहीं था, जागृत था। डाकू ने सेठ के सामने जाकर कहा—सेठ साहब! हम डाकू हैं। आपका घर लूटने आए हैं। अब आप निर्णय करें कि आपको प्राणों की रक्षा करनी है या धन की रक्षा करनी है? यदि तिजोरी की चाबियां हमें सौंप देते हैं तो आपके प्राणों की रक्षा हो सकेगी। अन्यथा कठिनाई होगी। बोलो, आप क्या बचाना चाहते हैं—धन या प्राण? सेठ बोला—प्राण ले लो। धन तो मैंने बुढ़ापे के लिए बचा रखा है।

कितना विपर्यास! कितनी बड़ी भ्रान्ति! प्राण ही नहीं रहेंगे तो बुढ़ापा किसे आएगा? कौन धन का उपभोग करेगा? प्रत्येक आदमी इसी भ्रान्ति में जी रहा है। यह भ्रान्ति पाली जा रही है, पुष्ट की जा रही है। ध्यान के द्वारा ऐसी भ्रान्तियों को तोड़ना है और वास्तविक सचाइयों को जीना है। इन सचाइयों का निरन्तर अभ्यास ही हमें दुःखों से उबार सकता है। केवल सचाइयों का ज्ञान उबार नहीं सकता। जानना केवल जानना रह जाता है। जब तक वह अभ्यास में नहीं उतरता, तब तक कुछ नहीं बनता।

जो व्यक्ति इन सचाइयों से सर्वात्मना परिचित हो जाता है वह विपरीत परिस्थिति में भी अपनी मनःस्थिति को अविचलित रख सकता है। जब तक इन सचाइयों का साक्षात्कार नहीं होता तब तक कोई भी आदमी विपरीत परिस्थिति में चलित हुए बिना नहीं रह सकता। यह ध्रुव सत्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. ध्यान और अलौकिक चेतना

ध्यान के संबंध में दो चेतनाओं का विमर्श आवश्यक होता है। एक है लौकिक चेतना और दूसरी है अलौकिक चेतना। ध्यान के द्वारा आलौकिक चेतना का विकास होता है। जो व्यक्ति अपने भीतर नहीं झांकता, उसकी चेतना लौकिक होती है। जिस व्यक्ति ने भीतर देखना शुरू कर दिया, उसमें अलौकिक चेतना का जागरण प्रारम्भ हो जाता है।

लौकिक चेतना का स्वरूप

प्रश्न होगा—क्या है लौकिक चेतना और क्या है अलौकिक चेतना? ध्यान के प्रसंग में इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि जो प्रतिक्रियात्मक चेतना है, वह है लौकिक चेतना और जो प्रतिक्रिया मुक्त या क्रियात्मक चेतना है, वह है अलौकिक चेतना। प्रतिक्रियात्मक चेतना वाला व्यक्ति प्रवाहपाती होता है। वह प्रवाह के पीछे-पीछे चलता है।

आदमी बाजार से गुजरता है। मिठाई की दूकान पर मिठाइयां देख कर ललचा जाता है। मुंह से लार टपकने लग जाती है। आईसक्रीम देखते ही जी मचल उठता है। यह सारा प्रतिक्रियात्मक चेतना का खेल है। साड़ी या गहनों की दुकान देखते ही स्त्री का मन ललचा जाता है। जब-जब सुन्दर पदार्थ सामने आता है, तत्काल उसे हस्तगत करने की भावना जाग उठती है। उन्हें पाने की लालसा तीव्र हो जाती है। यह सारी रागात्मक प्रतिक्रिया है। विरोधी के सामने आते ही आंखें लाल हो जाती हैं, भौंहें तन जाती हैं। सारी आकृति बदल जाती है। किसी ने कुछ कटु वचन कहे, गाली दी तो उसके प्रति तनाव बढ़ जाएगा, द्वेष उभर आएगा। यह द्वेषात्मक प्रतिक्रिया है।

ये दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं जीवन में होती हैं। लौकिक चेतना का अर्थ ही है प्रतिक्रिया करना, प्रतिक्रिया का जीवन जीना।

व्यवहार है प्रतिक्रियात्मक

एक दिन में आदमी पचास-सौ बार प्रतिक्रियाएं कर लेता है। उसका सूत्र ही बन जाता है—"शठे शाठ्यं समाचरेत्"—जैसे को तैसा। आदमी में भाव बनते हैं, बदलते हैं, फिर बनते हैं। फिर बदलते हैं। एक स्थिति आती है और आदमी हंसने लग जाता है, दूसरी स्थिति आती है और रोने लग जाता है। एक स्थिति में आदमी क्रोध से लाल-पीला हो जाता है, दूसरी स्थिति में वह प्रेम पूर्ण व्यवहार करता है। यह सारा व्यवहार अहेतुक नहीं होता। इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न व्यवहारों के भाव हमारे भीतर बने हुए हैं। एक त्रिपदी है—व्यवहार, व्यवहार की पृष्ठभूमि में भाव और भाव के पीछे लौकिक चेतना। यह एक चक्र है। अमुक प्रकार की वस्तु सामने आए तो अमुक भाव और अमुक भाव जागेगा तो अमुक प्रकार का प्रतिक्रियात्मक व्यवहार होगा।

एक व्यक्ति शांत बैठा था। पांच-चार मित्र आए। एक व्यक्ति आगे बढ़ा और तेज स्वर में बोला, कैसे बेवकूफ हो? हाथ पर हाथ रख कर आलसी होकर बैठे हो, क्या यह समय है शांत बैठने का? श्रम करो। मुफ्त का खाते हो। इतना सुनते ही उसकी प्रसन्नता काफूर हो गई। वह गरमा गया। उसने कहने वाले का गला पकड़ लिया। वह व्यक्ति बोला—भाई साहब! आप गलत समझ गए। मेरा कहने का अभिप्राय दूसरा था। क्या मैं कभी आपको ऐसा कह सकता हूं?" वह शांत हो गया।

यह सारा प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है।

लौकिक चेतना का परिणाम

तीन-चार मित्र घूमने निकले। एक मित्र भोला था। उसको छकाने की दृष्टि से एक मित्र बोला—अरे यार! लगता है बगीचे के पास खड़ी गाय तुमको बुला रही है। भोले मित्र ने अपने मित्र का आशय भांप लिया। उसके मन में प्रतिक्रिया हुई। वह गाय के पास गया और अपना एक कान गाय के मुंह के पास कर, दो चार मिनट वहीं रह, वापस आ गया। मित्र ने पूछा—तुम तो गाय से बात कर रहे थे। बताओ, गाय ने तुम्हें क्या कहा? वह बोला—गाय बड़ी समझदार है। उसने बड़ी सीख दी है। उसने कहा—अरे भाई! तुम तो भोले आदमी दीख रहे हो, उन गधों के साथ क्यों घूम रहे हो?

प्रतिक्रिया मुक्त चेतना है अलौकिक चेतना

यह सारा प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है। सारा जीवन इसी व्यवहार से भरा पड़ा है। यह लौकिक चेतना का परिणाम है। इसका तात्पर्य है—सामने जो भी आए, उसी में बह जाना, उसे स्वीकार कर लेना।

अलौकिक चेतना का अर्थ है—प्रतिक्रियामुक्त चेतना। यह लोकोत्तर चेतना है। इसका जागरण होने पर प्रतिक्रिया नहीं होती।

निदर्शन अलौकिक चेतना के

चंडकौशिक सर्प भगवान महावीर को डस रहा है। भगवान् शांत और स्थिर खड़े हैं। प्रश्न होता है कि क्या यह संभव है कि एक व्यक्ति कष्ट दे रहा है और दूसरा शांत खड़ा रहे? महावीर ने इसे सम्भव कर दिखाया।

महात्मा बुद्ध का शिष्य देवदत्त बुद्ध को कष्ट दे रहा है। वह पत्थर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ में लेकर बुद्ध के दांत तोड़ने की तैयारी में है। महात्मा बुद्ध शांत और स्थिर खड़े हैं।

महाराष्ट्र के संत एकनाथ गोदावरी में स्नान कर आ रहे हैं और एक व्यक्ति उन पर थूक देता है। फिर वे लौट कर पुनः स्नान करते हैं और आते समय पुनः वही व्यक्ति थूक देता है। ऐसा एक-दो बार नहीं, बीस बार होता है। एकनाथ वही शांतभाव बनाए हुए हैं।

यह सारा परिणाम है प्रतिक्रिया मुक्त चेतना का, अलौकिक चेतना का। साधना के इतिहास में हजारों ऐसी घटनाएं हैं। साधु-संन्यासी ही नहीं, कुछेक गृहस्थ भी ऐसे हुए हैं, जिनमें प्रतिक्रियामुक्त अलौकिक चेतना का जागरण हुआ था।

श्रीमद् राजचन्द्र जवाहरात का व्यापार करते थे। एक बार एक व्यक्ति से सौदा तय किया। रुक्का लिखकर दे दिया। बाजार तेज हुआ। वह व्यक्ति घबरा गया। पचास हजार का नुकसान। श्रीमद् राजचंद्र ने उसकी स्थिति देखी। उनका मन करुणा से भर गया। उन्होंने उस व्यापारी से रुक्का मांगा। पहले तो वह डरा कि रुक्का हाथ में लेकर मेरे पर केस करेंगे आदि-आदि। उसने श्रीमद् को रुक्का दिया। श्रीमद् ने रुक्का लेकर कहा—मित्र! श्रीमद् दूध पी सकता है खून नहीं। तुम्हारा और हमारा सौदा रद्द। मुझे पचास हजार का नुकसान हो रहा है, वह सहनीय है।" यह कहते हुए श्रीमद् ने रुक्का फाड़ डाला।

ऐसा व्यवहार लौकिक चेतना में संभव नहीं है। लौकिक चेतना वाला व्यक्ति अल्प लाभ के लिए भी दूसरे को निचोड़ने में कसर नहीं रखता।

रत्न भी अशुभ होता है

बीदासर के एक श्रावक थे। उनका बेटा मर गया। इस आकस्मिक मृत्यु से सब हड़बड़ा गए। कारण ज्ञात नहीं हुआ। सेठ उदासी से समय बिता रहे थे। एक दिन एक मित्र आया। उसने सेठ के पुत्र की आकस्मिक मृत्यु का कारण जानना चाहा। सेठ ने कहा—कारण ज्ञात नहीं है। पर बेटा मर गया, यह सत्य है। उस व्यक्ति की दृष्टि सेठ की अंगुली में पहनी हुई अंगूठी पर पड़ी। वह हीरे की अंगूठी थी। मित्र ने कहा—सेठजी! अंगूठी का यह हीरा अशुभ है। इसी के कारण आपको अनेक कठिनाइयां सहन करनी पड़ रही हैं। इसे आप उतार दें। सेठ को बात जंची। उन्होंने अपने आदमी को अंगूठी देते हुए कहा—जाओ, इसे कुएं में डाल आओ। मित्र ने कहा—सेठजी! कुएं में क्यों डलवा रहे हैं इसे बेच दीजिए। यह कीमती हीरा है। खरीदने वाले को तो कुछ भी पता नहीं चलेगा। सेठ ने कहा—मित्र! मैं अपने पुत्र का वियोग सह रहा हूं। किसी दूसरे व्यक्ति को इस कष्ट में डालना नहीं चाहता। अंगूठी कुएं में डलवा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लौकिक चेतना में ऐसा नहीं होता। यह साधारण चेतना का कार्य नहीं है। जब आदमी में अलौकिक चेतना जागती है तो ऐसी बातें घटित होती हैं, आदमी में इतने ऊंचे विचार आते हैं।

रत्नों के शुभ, अशुभ होने का विवेचन प्राचीन साहित्य में उपलब्ध है। रत्नों को धारण करना शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। वे इष्ट-साधक भी हैं और अनिष्ट-साधक भी हैं। कलकत्ता के एक विद्वान् भट्टाचार्य ने इसी विषय की एक प्रामाणिक पुस्तक लिखी है। उसका शीर्षक है "जेम्स"। उसमें इष्ट-अनिष्ट परिणाम घटित करने वाले विभिन्न रत्नों का घटना सहित उल्लेख है।

विराग है अलौकिक

आचार्य हेमचंद्र ने भगवान् महावीर की स्तुति में लिखा—

विषयेषु विरागस्ते, चिरं सहचरेष्वपि।
योगे सात्म्यमदृष्टेऽपि, स्वामिन्निदमलौकिकम्॥

भगवान्! इन्द्रियों के विषय, जो आपके परिचित साथी थे, उनसे आप विरक्त हो गए, उनके प्रति आपके मन में विराग जाग गया और साधना या योग, जो आपके घर में नए-नए आए हैं, उनके प्रति आपका राग हो गया, अनुराग हो गया। यह अलौकिकता है आपकी। उनके साथ इतना तादात्म्य हो गया कि आप और वे दो नहीं, एक हो गए। यह आपका अलौकिक रूप है।

दो तत्व हैं। एक है राग और दूसरा है विराग। राग लौकिक चेतना है और विराग अलौकिक चेतना है। राग स्वाभाविक लगता है। पदार्थ के प्रति राग होना कोई आश्चर्य नहीं है। यह हर व्यक्ति में होता है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें पदार्थ के प्रति राग न हो, विषयों के प्रति अनुरक्ति न हो। किन्तु विराग होना, विरक्ति होना वास्तव में आश्चर्यकारी घटना है।

विराग स्वाभाविक नहीं है

धनाढ्य पिता का पुत्र था जम्बूकुमार। उससे कहा गया—तुम्हारी शादी करेंगे। वह बोला—मुझे शादी नहीं करनी है। यह है विराग। माता-पिता का आग्रह प्रबल था। उसके सामने जंबूकुमार को झुकना पड़ा। उसने शादी की स्वीकृति देते हुए कहा—मुझे अन्ततः मुनि बनना है। शादी हुई। प्रथम रात्रि में ही जम्बूकुमार दीक्षित होने की बात कहते हैं। पत्नियां उन्हें सुखोपभोग में फंसाने का प्रयत्न करती हैं। जम्बूकुमार अपने निश्चय पर अडिग रहे। यह है विराग।

राग होना स्वाभाविक है। अन्तर्मुखी हुए बिना विराग नहीं आता। आन्तरिक चेतना के जागने पर ही इसका जागरण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है गुणात्मक परिवर्तन

त्याग स्वाभाविक नहीं है, भोग स्वाभाविक है। पदार्थ का भोग स्वाभाविक लगता है पर पदार्थ का त्याग स्वाभाविक नहीं लगता। पदार्थ का त्याग अलौकिक चेतना का परिणाम है।

ध्यान के द्वारा हम विराग और त्याग की चेतना को विकसित करने का प्रयास करते हैं। यदि ध्यान के द्वारा विराग और त्याग की चेतना नहीं जागती है तो मानना चाहिए कि सही अर्थ में ध्यान नहीं हो रहा है। जो निरंतर ध्यान करते हैं या ध्यान का अभ्यास करते हैं उनमें त्याग और विराग का विकास होना चाहिए। यह कभी संभव नहीं है कि कोई भी व्यक्ति छलांग मारकर वीतराग बन जाए। पर जो निरंतर ध्यान करते हैं, उनमें यदि यह गुणात्मक परिवर्तन नहीं आता है तो मानना चाहिए कि ध्यान के स्थान पर कुछ और ही हो रहा है। उनमें धर्म ध्यान और शुक्लध्यान न होकर आर्त्त ध्यान और रौद्र ध्यान हो रहा है। अन्यथा भिन्न प्रकार की चेतना, प्रतिक्रियामुक्त चेतना जागनी चाहिए।

मानवीय मूल्य

प्राचीन काल की बात है। आर्य जीवक आयुर्वेद के प्राणाचार्य थे। वे आयुर्वेद के पुरस्कर्ता और प्रकाण्ड विद्वान थे। एक बार घूमने निकले। एक पुष्प-वाटिका में उनकी आंखें एक फूल पर अटक गईं। वे उसे एकटक निहारते रहे। फूल अजीब सा था। उन्होंने सोचा—इस फूल के गुण-धर्म जानने चाहिए। फूल को पाना चाहते थे, पर पाएं कैसे? पुष्पवाटिका का स्वामी वहां नहीं था। किसकी आज्ञा से ले फूल? शिष्य साथ में था। उसने कहा—आप आज्ञा दें। मैं फूल को तोड़कर ला दूं। आचार्य जीवक बोले—नहीं, बिना आज्ञा लेना चोरी है। शिष्य बोला—आर्य! आपको तो राजाज्ञा प्राप्त है कि आप कहीं से फूल या वनस्पति तोड़ सकते हैं। आचार्य जीवक बोले—वत्स! यह ठीक बात है कि यह फूल पुष्प-वाटिका के स्वामी के किसी काम का नहीं है। राजाज्ञा की बात भी उचित है, पर वत्स! चोरी से फूल तुड़वा लेता हूं तो इसका अर्थ होगा, मानवीय मूल्यों का हनन।

अलौकिक चेतना के परिणाम

जब अलौकिक चेतना जागती है तब सारे मानवीय मूल्य बदल जाते हैं। लौकिक चेतना में राग का महत्वपूर्ण स्थान है। राग का तात्पर्य है पदार्थ में सुख की खोज। अलौकिक चेतना का जागरण होते ही राग का स्थान विराग ले लेता है। विराग का तात्पर्य है—अपने भीतर सुख की खोज।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लौकिक चेतना में भोग सम्मत है। भोग का अर्थ है—इन्द्रिय के स्तर पर जीना। अलौकिक चेतना को जीने वाला इन्द्रिय संवेदनों से ऊपर उठकर जीता है। उसके लिए त्याग एक जीवन-मूल्य बन जाता है।

लौकिक चेतना में क्रोध की आवश्यकता को नहीं नकारा गया। प्रशासन के लिए अथवा कर्मचारियों से काम लेने के लिए क्रोध एक आवश्यक तत्त्व है। अलौकिक चेतना में प्रशासन की अवधारणा बदल जाती है। क्रोध के स्थान पर क्षमा आसीन हो जाती है।

लौकिक चेतना में प्रतिक्रिया भी सम्मत है। प्रतिक्रिया न करने वाला दब्बू या कायर माना जाता है। अलौकिक चेतना में जानने और देखने की क्षमता बढ़ जाती है। जो जानता-देखता है, वह घटना को भोगता नहीं। उसे न भोगना ही सहिष्णुता है।

अलौकिक चेतना : संतुलन का सूत्र

लौकिक चेतना में प्रवृत्ति की बहुलता है। उससे एक असंतुलन पैदा हो गया है। प्रवृत्ति और तनाव—इन दोनों में निकट का संबंध है। अलौकिक चेतना जागती है, प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन बन जाता है। प्रवृत्ति के क्षण में अनुकंपी (सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) नाड़ी संस्थान सक्रिय हो जाता है। जप के द्वारा परानुकंपी (पेरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) नाड़ी संस्थान को सक्रिय बनाकर दोनों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है

लौकिक चेतना में राग और द्वेष के लिए अवकाश है इसलिए उसे पक्षपात से मुक्त नहीं देखा जा सकता। अलौकिक चेतना में समता का विकास होता है। तटस्थता उसकी सहज निष्पत्ति है।

लौकिक चेतना में मनुष्य बाहर की ओर फैलता जाता है। बाहर की ओर फैलने का अर्थ है—बंधते जाना। जो मनुष्य जितना बाहर की ओर जाता है, उतना ही अपने को समस्या से घिरा हुआ पाता है। अलौकिक चेतना का विकास अपने आपको देखने का विकास है। यह उपाय है समस्या से मुक्त होने का।

दोनों का योग जरूरी है

लौकिक चेतना के बिना जीवन यात्रा नहीं चलती, इसलिए उसे छोड़ देने की बात नहीं कही जा सकती। अलौकिक चेतना के बिना शान्तिपूर्ण और आनन्दपूर्ण जीवन नहीं जीया जा सकता इसलिए उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जरूरी है—लौकिक चेतना के साथ अलौकिक चेतना का योग। उसके लिए जरूरी है अपनी प्रेक्षा, अपने आप को देखने का अभ्यास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. नये जीवन का निर्माण

हमारी इस दुनिया का नियम है कि कुछ बनता है और कुछ नष्ट होता है। प्रकृति के जगत् में बहुत सारे पदार्थ बनते हैं और नष्ट होते हैं। मनुष्य जगत् में भी यही हो रहा है। कितने लोग आते हैं और कितने लोग चले जाते हैं। यह एक प्रवाह है। होना और मिटना चलता रहता है। जीवन भी एक प्रवाह है। जीवन की धारा निरंतर बहती रहती है। जो है वह वैसा ही रहे, यह कभी संभव नहीं हैं। जो है उसमें बदलाव आता है। बदलने का नाम है—नव-निर्माण।

जीवन के नव-निर्माण की प्रक्रिया का पहला सूत्र होगा-अपना बोध। इसका अर्थ है अपने आपको जानना और अपने आपको पहचानना। यह कोई अत्युक्ति नहीं है कि दुनिया की बहुत सारी बातों को जानने वाला आदमी अपने आपसे बिलकुल अनजान है। दूसरों को पहचानने वाला अपने को नहीं पहचान पा रहा है। अपने भीतर क्या है, उसे पता नहीं है। बाहर की दुनिया में सुख भी है दुःख भी है, अच्छा भी है बुरा भी है, प्रिय भी है अप्रिय भी है। ज्ञान है, सामर्थ्य है, सारी बातें हैं। क्या ये अपने भीतर नहीं हैं? जितनी चीजें बाहर हैं, उतनी चीजें अपने भीतर हैं। भीतर का संसार बाहर के संसार से छोटा नहीं है। भीतर में सुख भी है, दुःख भी है, शांति भी है, अशांति भी है। शक्ति भी है और दुर्बलता भी है। सारी बातें अपने भीतर हैं, किंतु हम भीतर की बातों से बिलकुल अनजान हैं। बाहर में शांति है इसका हमें अहसास होता है किंतु भीतर में शांति है इसका पता हमें नही चलता।

बाहर की दुनिया को जानने के नियम अलग हैं, भीतर की दुनिया को जानने के नियम अलग हैं। जब तक हम नियमों को नहीं जान लेते तब तक भीतर को नहीं जान सकते। किसी भी वस्तु को जानने से पहले उसके नियमों को जानना जरूरी है। बहुत बार नियमों की जानकारी के अभाव में आदमी गलत व्यवहार कर लेता है।

नियम को जाने

एक ग्रामीण आदमी शहर में सिनेमा देखने चला गया। सिनेमा हॉल में जाते ही सारे दरवाजे बंद हो गये, सारी बत्तियां बुझा दी गयीं। यह देखकर ग्रामीण आदमी चिल्लाने लगा—बेवकूफ ही बेवकूफ हैं। यहां सिनेमा कहां दिखायेंगे? क्या अन्धेरे में दिखायेंगे? बिजली तो पहले ही बुझा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी जब नियम को नहीं जानता तो उसका व्यवहार बहुत गलत हो जाता है।

बाहर की दुनिया को जानने का नियम है आंख खोलकर देखना और भीतर की दुनिया को जानने का नियम है आंख मूंदकर देखना। आंख खुली रखकर देखेंगे तो बाहर ही बाहर दिखेगा। बाहर की दुनिया का नियम है शांति में जीना। खट-पट का जीवन कोलाहल का जीवन है। बड़े-बड़े शहरों का जीवन ऐसा ही होता है। कोलाहल के कारण लगता है कि कोई बड़ा शहर है। यदि शांति हो जाये, कोलाहल न हो तो ऐसा लगता है कि शहर कहां है? अलग-अलग नियम होते हैं।

आवाज क्यों नहीं

एक महिला का मकान बन रहा था। जब मकान बन रहा था तो वहां काफी आवाजें हो रही थीं। जब काम चलता है, ईंटें घड़ी जाती हैं, छंटाई भी होती है। टक-टक की आवाज भी होती है। मकान बन गया और रंग-रोगन का काम शुरू हुआ। रंगाई, लिपाई, पुताई शुरू हुई तो खट-पट की आवाज बंद हो गई। महिला भीतर बैठी बोली—सब निकम्मे आदमी हैं, कोई काम ही नहीं करता, जी चुरा रहे हैं काम से। उन्होंने कहा—हम तो काम कर रहे हैं। वह बोली, कहां कर रहे हो काम? पहले काम करते थे तब खट-खट की आवाज आती थी। आजकल तो कोई आवाज ही नहीं आती है।

ईंटों के काम का नियम अलग होता है, रंगाई-पुताई का नियम अलग होता है।

स्वयं को जानने का उपाय

अपने आपको जानने का नियम अलग है। वहां अशांति की जरूरत नहीं है। हलचल से स्वयं को नहीं जाना जा सकता। बिलकुल शांत वातावरण। शिथिलीकरण। कायोत्सर्ग की मुद्रा। शरीर को ढीला छोड़ देना। प्रवृत्तियों को बंद कर देना, इन्द्रियों का संयम कर लेना, न आंख से देखने का प्रयत्न, न कान से सुनने का प्रयत्न। सुनाई देता रहे पर प्रयत्न न रहे। न कुछ चखने का प्रयत्न, न कुछ छूने का प्रयत्न, इन्द्रियों का कोई प्रयत्न नहीं। इन्द्रियों का अप्रयत्न, शरीर का भी अप्रयत्न, मन का अप्रयत्न और शरीर का शिथिलीकरण, कायोत्सर्ग। यानी प्रयत्न से अप्रयत्न की दिशा में प्रस्थान। जब प्रयत्न चलता है तो हम बाहर की दुनिया को जानते हैं। जब अप्रयत्न घटित होता है तो अपने आपको हम जानते हैं।

यदि कोई प्रयत्न के द्वारा, प्रवृत्ति के द्वारा हलचल के द्वारा अपने आपको जानना चाहे तो शायद जान नहीं सकेगा। इसके लिए काया की गुप्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन की गुप्ति और मन की गुप्ति करनी होती है। मन, वचन और काया—तीनों का संयम करना होता है। श्वास को भी शांत करना होता है। श्वास भी तेज रहेगा तो अपने आपको नहीं जाना जा सकेगा।

परिणाम स्वयं की खोज का

श्वास का और हमारे भाव-संस्थान का बहुत घनिष्ठ संबंध है। भाव में उत्तेजना आई, आवेश आया, श्वास छोटा बन जाएगा, संख्या बढ़ जाएगी। आवेश शांत हुआ, श्वास की संख्या घट जाएगी। श्वास और आंतरिक व्यक्तित्व का बहुत गहरा संबंध है। श्वास शांत और मंद, शरीर कायोत्सर्ग की मुद्रा में, वाणी का संयम और मन एकाग्र, किसी चैतन्य केन्द्र पर टिका हुआ—यह स्थिति बनती है तब अपने आपको जानने का अवसर मिलता है। उस क्षण में यह अनुभव होता है कि मैं क्या हूं और मेरे भीतर क्या है। इस स्थिति में आनन्द का अनुभव होता है, शांति का अनुभव होता है, पदार्थ-विहीन सुख का अनुभव होता है और आदमी अपने अस्तित्व को, अपने भीतर जो सम्पदा है उसको समझ सकता है, उसका अनुभव कर सकता है। उस अवस्था में बुरे विचार आते हैं तो वह समझ सकता है कि भीतर अभी तक कचरा भरा हुआ है। अच्छे विचार आते हैं तो समझ सकता है कि अच्छाइयां भी भरी हुई हैं। कभी दुःख का अनुभव होता है तो वह समझ सकता है कि भीतर में अभी प्रचुर संचय है मैंने दुःखों का बहुत अर्जन किया था, अभी दुःख क्षीण नहीं हुए हैं। कभी सुख का अनुभव होता है तो वह समझ सकता कि मैंने कुछ अच्छा भी किया है। वह विपाक में आ रहा है, प्रगट हो रहा है। अपना जो कृत है, और उसका जो विपाक उसे वह जान लेता है। यह है अपनी पहचान। जब अपनी पहचान और अपना ज्ञान होता है तो नये निर्माण का मौका मिलता है। व्यक्ति अपने आपका नया निर्माण कर सकता है और वह सोच सकता है कि जो अशुभ है, जो अनिष्ट है, जो बुरा है, उसे मैं न करूं। जो मैं करता हूं, वह भीतर संचित रहता है और उसका विपाक मुझे भुगतना पड़ता है। उस दिशा में न जाऊं। मैं उस दिशा में जाऊं जहां यह अशांति नहीं है, दुःख नहीं है, अनिष्ट नहीं है, बुरा नहीं है।

जागृति सम्यग् दर्शन की

अपनी पहचान का अर्थ है—एक नये संकल्प का जागना। जब अपनी पहचान होती है तब मिथ्यादर्शन टूटता है और सम्यग् दर्शन बनता है। सम्यग् दर्शन बनते ही जीवन की सारी यात्रा बदल जाती है। यात्रा का पथ बदल जाता है।।

मनुष्य को जीवन की यात्रा में दो तत्त्वों का सामना करना होता है। एक है काम और दूसरा है अर्थ। अपनी पहचान से काम और अर्थ के प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् दर्शन हो जाता है।

हमारे भीतर न जाने कितनी कामनाएं हैं। मनुष्य के भीतर, हर प्राणी के भीतर विभिन्न मौलिक मनोवृत्तियां हैं, कामनाएं हैं। उन कामनाओं का सामना करना होता है। जब कामना की तरंगे जागती हैं, आदमी कुछ नहीं कर पाता। जब वह इनके अधीन हो जाता है तब जीवन बहुत गड़बड़ा जाता है। हमारे भीतर कामनाओं का एक संसार है। पूरा समुद्र लहरा रहा है।

अर्थ : अभाव और प्रभाव

दूसरा तत्त्व है अर्थ का। जीवन की यात्रा चलाने के लिए अर्थ की जरूरत है। अर्थ का जगत् बड़ा है। अर्थ के बारे में हमारा दृष्टिकोण सही नहीं है। पूरे समाज का अध्ययन करें तो दो स्थितियां हमारे सामने आती हैं। एक स्थिति है अर्थ का अभाव। दूसरी स्थिति है—अर्थ का प्रभाव।

समाज का बहुत बड़ा ऐसा वर्ग है जहां अर्थ का अभाव है और समाज का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है, जहां अर्थ का प्रभाव है। दोनों स्थितियां अच्छी नहीं हैं। जीवन यात्रा के लिए अर्थ का अभाव होना भी अच्छा नहीं है और अर्थ का प्रभाव होना भी अच्छा नहीं है। दोनों अच्छे नहीं हैं। जहां अर्थ का अभाव होता है, गरीबी होती है। जीवन का चलना मुश्किल होता है और आदमी बहुत दुःख से दिन गुजारता है। अर्थ का प्रभाव होता है, वहां अति विलासिता, अति कामुकता, प्रदर्शन—ये सारी घटनाएं होती हैं।

आज भी बहुत सारी बीमारियां शारीरिक नहीं, मानसिक बीमारियां हैं। ये सब अर्थ के प्रभाव के कारण होती हैं।

परिणाम अर्थ के प्रभाव का

आज के संसार की सबसे कठिन समस्या यह है कि सर्वत्र अर्थ का प्रभाव है। सुविधावाद उसी से उपजा है। अर्थ का इतना प्रभाव हो गया कि व्यक्ति बिलकुल सुविधावादी बन गया। वह सुविधा में जीना चाहता है। मैं नहीं समझता कि फ्रीज कोई जरूरी है। पर फ्रीज आज हर घर की अनिवार्य आवश्यकता बन गया। आज फ्रीज के बिना काम ही नहीं चलता। यह अर्थ का प्रभाव है मन पर। हमारे भोजन का नियम है—ऐसी वस्तु खानी चाहिए जो शरीर के तापमान के बराबर हो। शरीर के तापमान से ज्यादा ठंडा खाना भी हानिकारक है और ज्यादा गरम खाना भी हानिकारक है। जितना शरीर का तापमान है, उसी तापमान की वस्तु खाने-पीने की होती है। पर आज अत्यंत ठंडे के बिना तो काम ही नहीं चलता। एक भाई बता रहा था—आजकल के भोजों में भोजन के पश्चात् आइस्क्रीम दी जाती है और सारे लोग बड़े चाव से उसे खाते हैं। भोज में आइस्क्रीम न हो तो वह कैसा भोज ? मैं नहीं समझ पाया, यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजन का कौनसा नियम है । भोजन किया, अंत में आईस्क्रीम खाई, इसका अर्थ है—किया-कराया चौपट कर दिया। यह अग्नि को मंद बनाने का प्रयत्न है और जाने-अनजाने में बीमारी को निमंत्रण देने का प्रयत्न है। अभी-अभी मैंने पढ़ा था कि फ्रीज में रखी हुई चीजें खाना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। उसमें रखे हुए भोजन की प्रकृति बदल जाती है। उसका मूल तत्त्व नष्ट हो जाता है।

वर्तमान मानस

आजकल मकान, आफिस और कार भी एयर कंडीशन चाहिए। 'वातानुकूलित'—यह बड़प्पन का एक चिन्ह बन गया, कसौटी बन गई। जिसका मकान एयर कंडीशन है, कार भी एयर कंडीशन है, वह बड़ा आदमी है। यह है अर्थ का प्रभाव।

जब मन पर अर्थ का प्रभाव हो जाता है, आदमी अच्छे-बुरे का भेद भूल जाता है, लाभ और हानि को भुला देता है। अत्यधिक ठंडा या गरम भोजन करने से प्रकृति को सहन करने की हमारी क्षमता नष्ट हो जाती है, शरीर निकम्मा बन जाता है। सर्दी को सहना, गर्मी को सहना—जब सभी तरह की हमारी शक्ति होती है तो हमारी रोग-प्रतिरोधक शक्ति, रेसिस्टेन्ट पावर भी मजबूत रहता है। हम कुछ भी सहन नही करते हैं तो हमारी रोग-निरोधक क्षमत भी कमजोर हो जाती है, प्रतिरोधक प्रणाली भी कमजोर बन जाती है।

जीवन का नियम

एक व्यक्ति बगीचे में गया। हवा तेज चल रही थी। छोटे-छोटे पौधे हिल रहे थे। उसने माली से पूछा—ये गिर जायेंगे, इन्हें रस्सी से बांध क्यों नहीं देते ? माली बोला—बाबूजी ! इन्हें बांधना अच्छा नहीं है। बांधने से इनकी जड़ें कमजोर रह जाएंगी। फिर ये बड़े होकर जल्दी गिर जायेंगे।

जीवन का एक नियम है—कठिनाइयों को झेलना, प्रकृति की सारी बातों को झेलना, सर्दी, गर्मी, ताप—इनको झेलते हुए एकदम मजबूत बन जाना। आज का आदमी सोचता है—कुछ सहना ही नहीं है। कष्ट नहीं सहना है। एक छोटे बच्चे को हम कपड़ों से इतना बांध देते हैं कि शरीर को जैसे कोई आंच ही न आने पाए। धीरे-धीरे उसकी सहन-शक्ति चुक जाती है और फिर वह जीवन में कष्टों से अधीर हो जाता है। आज अर्थ का प्रभाव इतना मन पर जम गया कि आदमी सोचता है, जितना आराम जीवन में भोगा जा सके, भोग लेना चाहिए। पता नहीं आगे क्या होगा, आगे मर कर कहां जाएंगे। जितना भोगना है, इसी जीवन में भोग लें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाजिक दृष्टिकोण

यह अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। मन पर अर्थ के प्रभाव के कारण आदमी का जीवन आराम-तलब और सुविधावादी बन गया। क्यों ? यह समझ में नहीं आ रहा है। अगर पूरे जीवन के क्रम का विश्लेषण करें तो ऐसा लगता है कि इस आर्थिक प्रभाव के कारण आदमी शारीरिक, मानसिक आदि अनेक प्रकार की यातनाएं भोग रहा है।

प्रो० ग्लेन डी पेज, डा० दरशनसिंह आदि कई लोग शिविरस्थल की सफाई कर रहे थे, कागज उठा रहे थे। समणियों ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं ? यह काम तो छोटे आदमी का है, बड़े आदमी का नहीं है। छोटा आदमी काम करे, मजदूर काम करे, कर्मचारी काम करे, नौकर काम करे तो ठीक बात है। बड़ा आदमी ऐसे कैसे करे ? समणियों के मन पर अर्थ का प्रभाव नहीं है, पर मान्यताओं का तो थोड़ा बहुत असर होता ही है। मान्यता ही आज मूल्य बन गये हैं। समाज में ऐसा चिंतन व्याप्त है कि सफाई का काम करने वाला, झाड़ू देने वाला आदमी छोटा होता है। बड़ा वह होता है जो गद्दे के सहारे बैठा रहे और कुछ भी काम नहीं करे।

अर्थ का सम्यग् दर्शन

एक सेठ बहुत बीमार था। उसने एक प्राकृतिक चिकित्सक को दिखाया। चिकित्सक ने परामर्श दिया—सेठ साहब ! घूमा करो। दो-चार मील घूमा करो। सेठ ने कहा, घूमने तो जाता था, जाता भी हूं, पर यह मुसीबत हो गई कि पैट्रोल बहुत कम मिलता है। घूमने जाऊंगा तो मोटर में बैठकर ही जाऊंगा।

एक भिखारी ने भगवान से प्रार्थना की—मुझे लाख रुपया मिल जाए। किसी ने पूछा—अरे ! लाख रुपये मिल जायेंगे तो बोलो, क्या करोगे ? उसने कहा—मोटर में बैठकर भीख मांगने जाऊंगा। मनोदशा ऐसी बन जाती है। भीख के लिए भी मोटर चाहिए।

जब अर्थ का प्रभाव मन पर हो जाता है तो जीवन का नया निर्माण नहीं हो सकता, इसलिए अर्थ और काम के प्रति हमारा सम्यग् दर्शन, सम्यग् दृष्टिकोण होना चाहिए। अर्थ के प्रति सम्यग् दर्शन का अर्थ है – समाज में या व्यक्ति में न अर्थ का अभाव होगा और न अर्थ का प्रभाव होगा। दोनों वांछनीय नहीं हैं। किन्तु अर्थ की मात्र उपयोगिता होगा। यह अर्थ का सम्यक् दर्शन है।

दृष्टिकोण धर्म के प्रति

भारतीय चिंतन में चार पुरुषार्थ बतलाये गए हैं। इन में पहले दो हैं—काम और अर्थ, अगले दो हैं धर्म और मोक्ष। जीवन के निर्माण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा सूत्र है—धर्म और मोक्ष के प्रति सम्यक् दर्शन जागे। धर्म के प्रति भी हमारा दृष्टिकोण सम्यक् होना चाहिए और मोक्ष के प्रति भी हमारा दृष्टिकोण सम्यक् होना चाहिये।

आज कुछ ऐसा लगता है, अर्थ का प्रभाव धर्म को छू गया। अर्थ वाले जो लोग हैं वे धर्म भी अर्थ के द्वारा ही करना चाहते हैं। बहुत कमाया और थोड़ा सा दान-पुण्य कर दिया और स्वर्ग के लिए सीट रिजर्व हो गई। चाहे जैसे-तैसे कमाये, बुरे साधनों से कमाये, दूसरे का गला काटकर कमाये पर थोड़ा सा दानकर समझते हैं बस, सब कुछ हो गया। कभी-कभी उनसे कहा जाता है—तुम गलत ढंग से कमाते हो और थोड़ा सा दान देकर अपने आपको धार्मिक मान लेते हो। तब उनका उत्तर होता है—कोरे कमाते ही नहीं हैं, देते भी हैं। वे देने में अटक जाते हैं। देने को धर्म मान लिया जाता है।

भ्रान्त अवधारणा

आचार्य भिक्षु ने इस बात पर बहुत गहराई से चिंतन किया। उन्होंने कहा—धन से धर्म नहीं होता। यह जो माना जाता है कि धन खर्च करो, धर्म हो जाएगा, यह उतना ही गलत है जितना कि मिट्टी खाओ और प्यास बुझ जाएगी। कोई सम्बन्ध ही नहीं है। धर्म केवल आत्मा की शुद्धि है, विचारों और भावों की शुद्धि है। अपनी आंतरिक पवित्रता है। धर्म का धन से कोई संबंध नहीं है। अगर धन से धर्म खरीदा जायेगा तो धनवान लोग स्वर्ग में ही जाएंगे। गरीबों के लिए नरक तैयार है। वे वहीं जाएंगे। यह एक गलत दृष्टिकोण स्वीकृत हो गया। आज अनैतिकता को पोषण देने में यह सिद्धांत भी काम कर रहा है। धनी सोचते हैं, अगर हम बुराई से कमाते हैं तो धर्मशाला भी तो हम बनाते हैं, प्याऊ भी बनाते हैं और हास्पिटल भी बनाते हैं। आखिर करता कौन है? एक गलत दृष्टिकोण बन गया कि जैसे-तैसे गलत साधनों से कमाओ और थोड़ा-सा दान देकर यह मान लो कि सिद्धि हो गई और नरक टल गया, स्वर्ग तैयार है। धर्म के साथ जहां त्याग और तपस्या का दृष्टिकोण जुड़ा हुआ था, वह गौण हो गया, दान और पुण्य का दृष्टिकोण मुख्य बन गया। यह एक भ्रान्ति बन गई।

अर्थ और काम का समीकरण

धर्म क्या है? धर्म का सम्यक् दर्शन क्या है? आचार्य भिक्षु ने धर्म की एक छोटी सी परिभाषा दी—त्याग धर्म और भोग अधर्म। जितना-जितना त्याग उतना-उतना धर्म और जितना-जितना भोग उतना-उतना अधर्म। धर्म का मतलब है—अर्थ और काम का समीकरण। अर्थ और काम की सीमा करना। इतने से ज्यादा अर्थ का उपयोग मैं नहीं करूंगा। इसका नाम है धर्म। मैं गलत तरीके से अर्थ का अर्जन नहीं करूंगा, इसका नाम है धर्म।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं अर्थ का प्रदर्शन नहीं करूंगा, इसका नाम है धर्म। अर्थ की सीमा करना, अर्थ का त्याग करना, इसका नाम है धर्म। इच्छा का परिमाण करना, अर्थ का परिमाण करना, हिंसा का परिमाण करना, सीमा करना, इसका नाम है धर्म।

दूसरा है कामना का सीमाकरण। कामनाएं बहुत जागती हैं। कामना को सीमित कर देना। जो भी कामना आएगी, मैं उसे क्रियान्वित नहीं करूंगा। कामनाएं बहुत जागती हैं—यह करूं, वह करूं, यह हो जाए, वह हो जाए। कामना में तो आदमी बह जाता है। उनका सीमाकरण कर देना। इससे अधिक जो कामना आएगी उसे क्रियान्वित नहीं करूंगा, यह है धर्म। कामना का सीमाकरण और अर्थ का सीमाकरण—इसका मतलब है धर्म। धर्म की बिलकुल सीधी परिभाषा है।

बहुत कठिन है त्यागना

संप्रदाय ने धर्म को बहुत उलझा दिया। यह बहुत सीधी भाषा है—जितना त्याग सको, जितना पदार्थ-निरपेक्ष रह सको उतना धर्म है। बाकी अधर्म है, तुम्हारी लौकिकता है। पदार्थ का भोग करना, यह लौकिक बात है और पदार्थ का त्याग करना, यह अलौकिक बात है। धर्म हमारी वह चेतना है जिसमें पदार्थ को त्यागने की क्षमता जाग सके। बड़ी कठिन बात है पदार्थ को त्यागने की। भोगने की बात तो हर आदमी में जाग आती है।

एक छोटा बच्चा था। पास में मां बैठी थी। बच्चा रो रहा था। मां ने पांच रुपए का नोट दिखाया और बच्चे को दे दिया। बच्चे ने रोना बंद कर दिया। पांच-सात मिनट बाद मां ने बच्चे से कहा कि लाओ, दे दो, कहीं गुम हो जाएगा। बच्चे ने मुट्ठी बन्द करली। मां ने जी तोड़ प्रयत्न कर लिया, पर मुट्ठी नहीं खुली। वह वापस नहीं देना चाहता था। छोटा बच्चा भी रुपये के लिए मुट्ठी बंद करना जानता है, खोलना नहीं जानता। बड़ों की तो बात ही क्या है?

ऐसा लगता है कि भोग हमारी कोई मौलिक मनोवृत्ति है और वह हमारी चेतना में समाया हुआ है। भोग का बहुत गहरा संस्कार बन गया। किन्तु त्याग का हमारा संस्कार नहीं है। यदि त्याग की चेतना जाग जाए तो मैं अलौकिक बात मानता हूं और यह अलौकिक चेतना ही धर्म है। त्याग की चेतना का जाग जाना ही धर्म है।

मोक्ष का नया अर्थ

चौथा पुरुषार्थ है—मोक्ष। कौनसा मोक्ष? क्या मरने के बाद मिलने वाला मोक्ष? हमने मान रखा है आदमी मरने के बाद ही स्वर्ग में जाएगा, मरने के बाद ही नरक में जाएगा, मरेगा तब मोक्ष में जाएगा। धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जीते जी होता है तो मोक्ष भी जीते जी ही होता है। अगर वर्तमान काल में मोक्ष नहीं होता है तो मरने के बाद कभी नहीं होगा। वर्तमान जीवन में मोक्ष घटित होता है तो हम सोच सकते हैं कि कि मरने के बाद भी मोक्ष होगा। जो आदमी वर्तमान में नरक का जीवन नहीं जीता वह मरने के बाद नरक में नहीं जाता। जो आदमी वर्तमान में स्वर्ग का जीवन नहीं जीता वह मरने के बाद स्वर्ग में नहीं जाएगा। और जो आदमी वर्तमान में मोक्ष का जीवन नहीं जीता वह मरने के बाद भी मोक्ष में नहीं जाएगा।

यह मोक्ष अपने निर्माण का सबसे बड़ा सूत्र है। अकेलेपन के अनुभव का नाम है मोक्ष। मैं अकेला हूं, मेरी आत्मा अकेली है, यह वास्तविक सचाई है। मैं अकेला आया हूं, और अकेला जाना है, अकेले को सुख दुःख भोगना है। वास्तव में मैं अकेला हूं। जितने पदार्थ हैं, वे वास्तव में मेरे नहीं हैं। परिवार वास्तव में मेरा नहीं है। मैंने अपने इर्द-गिर्द इतने जाल बुने हैं मकड़ी की तरह, पर वह आखिर जाल ही है। मेरा अपना कोई नहीं है। इस प्रकार पदार्थ से अपनी पृथकता का, अलगाव का अनुभव करना—इसी का नाम है मोक्ष।

व्यक्ति की मनःस्थिति

एक साहूकार का लड़का ससुराल की ओर चला। वह बहुत ही पेटू था। भूख भी बहुत लगती थी। घरवालों ने एक बर्तन में कुछ लड्डू डाल दिये और कहा—जब आवश्यकता हो तब लड्डू निकाल कर खा लेना। वह चला गया। भोला आदमी था। साथ में एक शिक्षा यह भी दी कि देखो, दूसरों के सामने ज्यादा मत खाना। दूसरे यह समझेंगे कि कितना भूखमरा आदमी है। कैसा दामाद मिला कि दिन भर खाता ही जाता है, रुकता ही नहीं। उनके सामने थोड़ा-थोड़ा और कम ही खाना। एकान्त में जाकर ये लड्डू खा लेना। दोनों काम बन जाएंगे। ससुराल गया। भोजन करने बैठा। दूसरों के सामने दो रोटियां खाईं। उन्होंने कहा—इतना ही? इतने से क्या होगा? उसने कहा, मैं बड़े घर का हूं, ऐसा वैसा नहीं हूं जो दिन भर खाता ही रहूं। उसने पूरा प्रदर्शन कर दिया। वह खाने का बहुत आदी था और थोडी ही देर में भूखा हो गया। दिन भर भूख को सहा। रात होते ही चूहे कुलबुलाने लगे। ज्योंही अंधेरा थोड़ा सा हुआ बर्तन को खोला और हाथ डाला, लड्डू को उठाया। बर्तन का मुंह संकड़ा था। लड्डू को पकड़ लिया, पर बंद मुट्ठी हाथ बाहर नहीं निकला। हाथ में लड्डू और बर्तन का मुंह संकड़ा। अब लड्डू को तो वह छोड़े नहीं और ऐसे हाथ बाहर आए नहीं। थोड़ी देर जोर लगाया किन्तु काम नहीं बना। उसने सोचा, बर्तन में भूत बैठा है, उसने मुझे पकड़ लिया है। वह चिल्लाया—अरे! आओ, आओ, मुझे किसी ने पकड़ लिया है। भोला आदमी था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरवाले आए और पूछा कि क्यों चिल्ला रहे हो ? उसने कहा—देखो, किसी ने मेरा हाथ पकड़ लिया है। लोगों ने देखा कि यह तो बड़ा मूर्ख आदमी है। उन्होंने कहा—लड्डू को छोड़ो। उसने कहा—कैसे छोड़ दूं। यदि छोड़ दूं तो खाऊंगा क्या ?

मोक्ष : बंधातीत अवस्था

ऐसा लगता है कि आदमी भी इसी प्रकार भूत को पकड़े हुए है। मुट्ठी को वह खोलना नहीं चाहता और ऐसे हाथ बाहर नहीं आ रहा है। इतना बंधन हो गया हमारा पदार्थ के साथ, इतना जकड़ लिया गया कि बंधन छूट नहीं रहा है। बंधन है पदार्थ के साथ, क्योंकि पदार्थ के बिना काम नहीं चलता, पदार्थ के साथ संबंध भी रखना होगा, परिवार के बिना भी काम नहीं चलेगा, परिवार के साथ संबंध जरूरी है, सब कुछ जरूरी है, सबसे बंधा हुआ हूं और घिरा हुआ हूं। पर आखिर अकेला हूं। बंधन के बीच, परिवार के बीच और पदार्थ के बीच रह कर भी अपनी अंतिम सचाई, अपने अकेलेपन का अनुभव करें, इसका नाम है—मोक्ष। यह है बंधनातीत अवस्था।

मैं गुलाम का गुलाम नहीं हूं

डायेगिनिज का गुलाम चला गया। मित्रों ने सोचा, गुलाम चला गया और अब रोटी बनाने की दिक्कत होगी, चलो गुलाम को खोज लाएं। उस समय दार्शनिक ने, उस संत ने मार्मिक उत्तर दिया। उसने कहा, मैं नहीं जाऊंगा। गुलाम को मेरी जरूरत नहीं है। अगर उसे जरूरत होती तो वह नहीं जाता। मैं गुलाम को खोजने जाऊं, इसका अर्थ है—मैं उसका गुलाम बनूं, गुलाम का भी गुलाम बनूं, यह नहीं हो सकता।

मनोरचना बदले

आदमी पदार्थ से इतना बंध जाता है कि बस, पदार्थ की खोज में ही लगा रहता है। हजार रुपए आपके गुम हो गए, क्योंकि उन्हें आपकी जरूरत नहीं है, पर आपको उनकी जरूरत है, क्योंकि उनके बिना काम नहीं चलता। चेतना की ऐसी रचना बंधनकारक मनोरचना। मनोरचना ऐसी हो—पदार्थ जो आया, काम में लिया, भोगा और फिर चला गया तो चला गया, रहा तो रहा और चला गया तो चला गया। आना-जाना कुछ भी नहीं। इस प्रकार की मनोरचना मोक्ष की मनोरचना है।

जीवन निर्माण के तीन सूत्रों में सबसे पहला सूत्र है—अपना बोध, अपनी जानकारी। दूसरा सूत्र है—काम और अर्थ के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण और तीसरा सूत्र है—मोक्ष के प्रति सम्यक् दर्शन। इन तीन सूत्रों का अगर अनुशीलन और चिंतन किया जाए तो जीवन का नया निर्माण संभव बन पाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युवाचार्य महाप्रज्ञ की महत्वपूर्ण रचनाएं

१ तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो।
२. मैं मेरा मन: मेरी शांति (हिन्दी, अंग्रेजी)
३. चेतना का ऊर्ध्वारोहण (हिन्दी, गुजराती, बंगला)
४ महावीर की साधना का रहस्य।
५. मन के जीते जीत (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला)
६. किसने कहा मन चंचल है (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)
७. जैन योग।
८. एसो पच णमोक्कारो (हिन्दी, गुजराती)।
९. आभामण्डल (हिन्दी, गुजराती, बंगला)।
१०. अप्पाणं शरणं गच्छामि।
११. अनेकान्त है तीसरा नेत्र (हिन्दी, गुजराती)।
१२. एकला चलो रे।
१३. मन का कायाकल्प।
१४. सबोधि (हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी)।
१५. मैं कुछ होना चाहता हूँ।
१६. जीवन विज्ञान (शिक्षा का नया आयाम) (हिन्दी, अंग्रेजी, बगला)।
१७. जीवन विज्ञान स्वस्थ समाज रचना का सकल्प।
१८. कैसे सोचें ?
१९. आहार और अध्यात्म।
२०. प्रेक्षाध्यान आधार और स्वरूप (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, बगला)।
२१. प्रेक्षाध्यान श्वास प्रेक्षा (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)।
२२. प्रेक्षाध्यान शरीर प्रेक्षा (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)।
२३. श्रमण महावीर (हिन्दी, अंग्रेजी)।
२४. घट-घट दीप जले।
२५. मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि।
२६. मैं हूँ अपने भाग्य का निर्माता।
२७. अवचेतन मन से सम्पर्क।
२८. उत्तरदायी कौन ?
२९. जीवन की पोथी।
३०. सोया मन जग जाये।
३१. प्रस्तुति।
३२. महाप्रज्ञ से साक्षात्कार।
३३. प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग (अंग्रेजी, तमिल, गुजराती)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org